क्रांतिकारी बारहठ केसरीसिंह
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

[प्रथम ख--]

संपादक

डा० देवीलाल पालीवाल

डा० ब्रजमोहन जावलिया

फतहसिंह 'मानव'



राजस्थान साहित्य अकादमी

उदयपुर

□ प्रथम संस्करण 1984 ई

□ मूल्य पचास रुपये मात्र

□ प्रकाशक राजस्थान साहित्य अकादमी,
हिरनमगरी, सेक्टर 4
उदयपुर–313 001 (राज)

□ मुद्रक पालीवाल प्रिन्टर्स
उदयपुर-313 001 (राज)

Krantikari Barhat Kaisrisingh : Vyaktitva Avam Kratitva Vol 1

Rs 50/ Only

Edited by

Dr D L Paliwal, Dr B M Jawalia Fateh Singh 'Manav

क्रांतिकारी बारहठ केसरीसिंह

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

[प्रथम खड]

प्रकाशकीय

भारत के क्रांतिकारी जनतंत्रीय आंदोलन के इतिहास में स्वर्गीय ठाकुर केसरीसिंह बारहठ का उल्लेखनीय स्थान है। ठाकुर केसरीसिंह बारहठ की देशभक्ति अनुकरणीय व अनुपम थी। उनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य देश की स्वाधीनता के लिए कार्य करना था। वे धर्म प्रचार, समाज-सुधार, शिक्षा-प्रसार और जातीय संगठन के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना व देश भक्ति की भावनाओं के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयत्नरत थे। उन्होंने आंग्ल साम्राज्यवाद का जीवन भर प्रखर विरोध किया और अपना जीवन राष्ट्र को समर्पित कर दिया।

बारहठजी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न थे। वे उत्कृष्ट कोटि के बुद्धिजीवी, विचारक, लेखक और कवि थे। साथ ही अद्भुत वक्ता, प्रचारक और संगठक थे। वे बहुभाषाविद् और अनेक विषयों के ज्ञाता व प्रकाण्ड पंडित थे। संस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश, डिंगल, पिंगल, ब्रज, बंगला, मराठी गुजराती, हिंदी आदि भाषाओं के विद्वान तथा भूगोल, ज्योतिष संगीत, धर्म, दर्शन, इतिहास के ज्ञाता थे। श्री बारहठजी की शैली मार्मिक, प्रभावोत्पादक, सरल व प्रांजल थी और लेखों में भावगर्भीय विचारों की परिपक्वता मिलती है। ठाकुर साहब के प्रत्येक शब्द में विदेशी सत्ता के प्रति क्रांति की हुंकार है। सरल, सुबोध व सशक्त वीररस की अधिकांश काव्य रचनाएं स्वधर्म व राष्ट्रीय भावना की परिचायक हैं।

अकादमी ने ठाकुर केसरीसिंह बारहठ के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रकाशन का महत्वपूर्ण निर्णय लिया और यथानिर्णय इसका प्रथम खंड प्रस्तुत है। ग्रंथ प्रकाशन में न चाहते हुए भी परिस्थितिवश विलम्ब हुआ, इसका खेद है। इस ग्रंथ के संकलन-सम्पादन हेतु सम्पादक त्रय-डा देवीलाल पालीवाल, डा ब्रजमोहन जावलिया एवं श्री फतहसिंह "मानव" को हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित है।

आशा है सुधिजन इस प्रकाशन का स्वागत करेंगे।

उदयपुर
12 नवम्बर, 1984

लक्ष्मीनारायण नन्दवाना
सचिव
राजस्थान साहित्य अकादमी
उदयपुर

क्रम

निवेदन 5

भूमिका 9

□ हिन्दी काव्य

ईश-भक्ति-पद 55

कवित्त 59

शक्ति-वन्दना 61

घनाक्षरी 62

नीति के दोहे 64

प्रेम की अतरगता 69

आत्मकथा 70

आत्मवेदन 71

सूखे वन की प्रार्थना 73

हरिगीतिका 73

ब्रिटिश गवनमन्ट की कूटनीति के प्रति 74

कुसुमाजलि 76

राष्ट्रधम 83

भारत दुदशा 83

दोहा 84

हजारीबाग जैल म वग-साहित्य की याचना 85

उद्बोधन-नारी समाज का 86

लाला लाजपतराय 86

राज-धम 88

राजा-भत्सना 88

राजा का वक्तव्य 89

कोटा महाराव उम्मेदसिंहजी के प्रति 90

क्षत्रि धम 92

आत्मस्मृति 92

इनको कौन रोक सकता है ? 93

जयपुर प्रजामडल के दमन पर 94

महाराजा मान उतने दोषी नहीं हैं क्योंकि— 96

शिकार म रजपूती 97

राजपूत जाति पर मरसिया 98

चारण वही है 99

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र 100

प माधवप्रसाद मिश्र भिवानी के प्रति 101

प गौरीशकर ओझा क प्रति 101

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के प्रति 102

तालाब की पाल 103

लारी 103

इटली एबीसीनिया युद्ध 104

निदय जमनी 105

श्रद्धा सुमन 106

प्राणों की गूज 108

श्री भोपालदान जी आढा के प्रति 110

अमर शहीद श्री गणशशकर विद्यार्थी 111

राव गोपालसिंह खरवा के प्रति 112

महाराव उम्मेदसिंहजी कोटा के प्रति 113

□ राजस्थानी काव्य

गीत ब्रजनाथ रा 117

भगवती श्री करणीजी रा 118

उद्बोधन 120
सौराष्ट्री शाह (सिंधु राग म) 122
मेवाड़ के महाराजकुमार भोपालसिंह एवं महा. फतहसिंह के प्रति 125
हाय मेवाड़ 128
चाबुक स्पर्श 130
इतिहास रसिक राजपूतों के प्रति 135
राजा-प्रजा-संवाद 136
राजपूतांणी 143
नारी—गौरव 146
राष्ट्र-धर्म 148
राजस्थान के विभिन्न प्रदेशों की विशेषताएं 148
ऊं यों ही चित्तौड़ 150
क्षात्र-धर्म 152
राजपूतों की वर्तमान दशा 155
हस्तिप की अनावश्यकता 156
स्वधर्म 158
विविध परमात्मा के प्रति 160
राष्ट्रवर राव गोपालसिंहजी खरवा के प्रति 161
गांधीजी के प्रति 161
मु छमु डा की एकादशी 162
प्रासंगिक 164

□ पत्र व्यवहार

सौ. चन्द्रमणि के नाम पत्र 167
जामाता ईश्वरदान आशिया के नाम 168
पुत्र रणजीतसिंह के नाम 170
जामाता के नाम 172
जामाता के नाम 174
मि. मार्श बन के नाम पत्र 176
कुंवर मावारसिंह के नाम पत्र 178
सर मावारसिंह दीवान, कोटा के नाम गोपनीय पत्र 180
श्री शालिग्राम व्यास के नाम पत्र 184
महाराज साहब श्री ...सिंह जोधपुर के नाम पत्र 187
श्री वी. जे. पटेल के नाम पत्र 191
महाराजा सर गंगासिंहजी बीकानेर के नाम 193
पुत्र रणजीतसिंह के नाम 195
जामाता फतहसिंह के नाम 199
सीतामऊ महाराजकुमार रघुवीरसिंहजी के नाम 203
बाबू भनुप्रहनारायणसिंह के नाम 206
बाबू कृष्णसिंह के नाम 207
श्री शिवसिंह चोयल के नाम 208
श्री नारायण चौधरी, सेवाग्राम आश्रम के नाम 214
श्री अर्जुनलाल सेठी के पत्र ठाकुर केसरीसिंह के नाम 221
गांधीजी का पत्र 224
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का पत्र 225
हजारीबाग सेन्ट्रल जेल के भू. पू. वार्डर का पत्र 226
पं. माखनलाल चतुर्वेदी का पत्र 227
श्री रमणीक ए. महता का पत्र 228
महाराजकुमार रघुवीरसिंह का पत्र 229

□ जीवनी

कविराजा श्यामलदासजी 234

निवेदन

उन्नीसवी शती का उत्तरार्द्ध, वस्तुत राजनीतिक चेतना के विस्तार का समय रहा है। समय के साथ साथ अंग्रेजो के पाव इस देश म दृढता क साथ जमते गये लेकिन साथ ही उतनी ही सकल्प शक्ति के साथ राष्ट्रीयता की भावना भी जड पकडती गई। राजस्थान की देशी रियासतो मे इस नई चेतना के अभ्युदय मे धार्मिक पुनर्जागरण का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। स्वामी दयानद सरस्वती, विवेकानद, साधु निश्चलदास सन्यासी आत्माराम, स्वामी गोविन्द गिरि प्रभृति सतो ने धार्मिक एव सामाजिक सुधार की दिशा मे बडा योग दिया। सन् १८६२ ई० से १८८२ ई० तक स्वामी दयानद न अजमेर, भरतपुर, बनेडा, चित्तौडगढ धौलपुर, करौली जयपुर, जोधपुर, मसूदा रायपुर और उदयपुर की यात्रा कर अपने उपदेशो से धार्मिक सकीर्णता से मुक्त होने का माग दिखाया। 'सत्यार्थ प्रकाश' का द्वितीय खड तो उन्होने उदयपुर म ही लिख कर समाप्त किया था। उन्होने ही सवप्रथम स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया जो बाद मे राष्ट्रीय आन्दोलन की आधारशिला बना। विवेकानद ने राजस्थान की तरुण पीढी को बडी गहराई तक प्रभावित किया। स्वामी गोविन्द गिरि न सिरोही, डूगरपुर और बासवाडा के आदिवासी क्षेत्रो म, साधु निश्चलदास और आत्माराम ने हाडोती क्षेत्र म जो धम-सुधार का आन्दोलन चलाया उसका भी व्यापक प्रभाव पडा। राजस्थान की अतश्चेतना को प्रबुद्ध करन म इन साधु-सतो और समाज-सुधारको का बडा योगदान रहा और परवर्ती युग म, राजनीतिक जागरण की बेला मे, इनके प्रेरित उपदेशो ने बडी सहायता की।

राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने, अधिकारो की लडाई का समथन करन तथा स्वतत्रता की भावना को बलवती प्रेरणा देने मे राजस्थान क कवियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राजस्थान की काव्य परम्परा को समझने के लिए जन आन्दोलन की पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है क्योकि स्वतत्रता की पृष्ठभूमि मे ही यहा काव्य सृजन व विकास सम्भव हो रहा है। इन कवियो के काव्य म चाहे ऊची कलात्मकता क दशन न होते हो पर यह सत्य है कि उन्होने सामन्ती शोषण से पीडित जनता को जगाया और एक नई दृष्टि दी। इसी जन आन्दोलन न जागृति का नया विहान दिया। इन जन कवियो न जन साधारण के मन म अपूव साहस तथा आत्मबल का सचार किया। विजयसिंह पथिक, केसरीसिंह बारहठ जयनारायण व्यास, हरिभाऊ उपाध्याय माणिक्यलाल वर्मा गणेशीलाल उस्ताद, गोकुलभाई भट्ट, हीरालाल शास्त्री, बाला बादल सुमनेश जोशी प्रभृति अनेक कवि-कायकर्ताओ न जनता का नेतृत्व दने के साथ साथ जन-

को उत्तेजित कर जूझते रहने की बलवती प्रेरणा दी और सशक्त जनकाव्य का सृजन किया। इन कवियों की वाणी ने तत्कालीन परिवेश मे ज्योतिस्तम्भ का काम किया और राजस्थान की कोटि-कोटि जन की पीडा एवं आक्रोश को मुखरित कर, जुल्मों के सिंहासन को जबदस्त चुनौती दी।

केसरीसिंह बारहठ शाहपुरा के निवासी थे। उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह ने इनकी कविता पर मुग्ध होकर जागीर मे कई ग्राम दिये थे। बाद मे कोटा चले आये। केसरीसिंह की शिक्षा संस्कृत तथा हिन्दी मे हुई। इसके अतिरिक्त इन्हे काव्य साहित्य ज्योतिष, न्याय, वेदांत आदि का भी ज्ञान था। आपने अपने पिता तथा महामहोपाध्याय श्यामलदास से शिक्षा प्राप्त की।

केसरीसिंह का क्रांतिकारियों से निकट का संबध रहा है। हार्डिज बम काड से सबधित जोरावरसिंह बारहठ इनके अनुज थे और शचीन्द्र सान्याल के साथी तथा मृत्यु दड भोगने वाले प्रतापसिंह इनके पुत्र थे। इन्हे अनेक बार बंदी बनाया गया और यातनाये दी गई। वे जीवन के प्रारम्भ मे विप्लववादियो के प्रबल समर्थक, सम्य मार्गदर्शक और नेता थे। उनकी योजना थी कि तत्कालीन राजपूताना के राजघरानो को स्वतंत्रता के प्रति प्रेरित कर अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह का वातावरण बनाया जाय। उन्हें काव्य-सृजन का अवकाश बहुत कम मिला लेकिन देश-गौरव आत्माभिमान और परंपराओ के प्रति सम्मान के भाव, उनके अनेक छंदो मे व्यक्त हुए है। उन्होने विविध विषयो पर लेखनी चलाई, लेकिन मूल स्वर राष्ट्रीयता का ही रहा। उनके 'चेतावनी के चूंगट्या' तो ऐतिहासिक ख्याति अर्जित कर चुके है।

राजस्थान साहित्य अकादमी ने क्रांतिकारी स्व० केसरीसिंह बारहठ के सम्पूर्ण साहित्य के प्रकाशन का निर्णय वर्षों पूर्व किया था। विद्वान सपादको ने इसकी सामग्री का सकलन एवं सपादन मे पर्याप्त श्रम किया है। जब मैंने अकादमी के अध्यक्ष पद का दायित्व सम्हाला तब मुझे बताया गया कि क्रांतिकारी बारहठ केसरीसिंह 'व्यक्तित्व' और कृतित्व शीर्षक ग्रन्थ अभी तक प्रकाशन की प्रतीक्षा मे है। सपादित सम्पूर्ण ग्रन्थ को यदि एक साथ प्रकाशित किया जाता तो उस पर कम से कम एक लाख रुपया व्यय होता जो अकादमी की आर्थिक क्षमता के बाहर की बात थी। ऐसी स्थिति मे अकादमी की सचालिका सभा ने निर्णय दिया कि सपादित ग्रन्थ का अधिकृत व्यक्ति से समीक्षा करवा ली जाय और यदि उचित समझा जाय तो अनावश्यक अंश हटा दिया जाय। डा० पद्मजा ने समीक्षा के दायित्व को लिया और अत मे यह निर्णय किया गया कि पूरे ग्रन्थ को एक साथ छापना सभव नही है अत इसे दो खडो मे प्रकाशित

दिया जाय। प्रथम खंड में केसरीसिंह बारहठ कृत काव्य, उनके द्वारा लिखे गये महत्वपूर्ण पत्र, उनको लिखे गये महत्वपूर्ण पत्र, तथा उनके द्वारा लिखित कविराजा श्यामलदास की जीवनी को सम्मिलित किया गया है, शेष सामग्री द्वितीय खंड में प्रकाशित की जायगी। राजस्थान सरकार ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये विशेष अनुदान किया, जिसके लिये अकादमी राज्य सरकार के प्रति कृतज्ञ है।

प्रथम खंड भी बहुत विलंब से प्रकाशित हो रहा है इसका हमें खेद है। कुछ परिस्थितियां ही ऐसी बनती रहीं कि न चाहते हुए भी विलम्ब होता गया। इसका दूसरा खंड कब तक प्रकाशित होगा यह निश्चित रूप से कहने की स्थिति में इस समय अकादमी नहीं है लेकिन उसे प्रकाशित करने का संकल्पित है। यह संकल्प शीघ्र ही पूरा हो, इसके लिए हम प्रयत्नशील हैं।

प्रकाश आतुर
अध्यक्ष
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

दीपावली, ८४





क्रांतिकारी केसरीसिंह बारहठ

भूमिका

ठाकुर केसरीसिंह बारहठ राजस्थान के एक सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी, देशभक्त समाज-सुधारक, विचारक और लेखक हो गये हैं। भारतीय स्वातन्त्र्य-संघर्ष में उन्होंने और उनके परिजनों ने त्याग, तपस्या और बलिदान का जो अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है, उसके कारण वे और उनका परिवार भारतीय इतिहास मे चिरस्मरणीय हैं। लगभग साढे तीन सौ वर्ष पूर्व इसी भूमि पर महाराणा प्रताप, उनके परिवार और सगी साथियो ने स्वतन्त्रता और स्वाभिमान की रक्षा के लिए स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपना सुख, वैभव, अमन और चैन सभी अर्पित कर दिये थे। ठाकुर केसरीसिंह बारहठ भी उसी मार्ग के राही निकले। देश को अंग्रेजी दासता की बेडियो से मुक्त कराने की दृष्टि से चल रहे क्रान्तिकारी आन्दोलन में केसरीसिंह न केवल शरीक हुए, अपितु उनके भ्राता जोरावरसिंह पुत्र प्रतापसिंह, जामाता ईश्वरदान आशिया तथा अन्य परिजनो ने उसमे सक्रिय रूप से भाग लिया। प्रतापसिंह शहीद हो गया, जोरावरसिंह आजीवन फरारी अवस्था में जीवन और मौत के साथ आँख मिचौनी खेलता हुआ दर-दर भटकता रहा, उनकी पैतृक जागीर एवं सम्पूर्ण सम्पति जब्त करली गई और उनकी पत्नी तथा परिवार को असहाय छोड दिया गया किन्तु उन्होंने सब कुछ सहा और उफ् तक नहीं की। सभी प्रकार के प्रलोभनो को ठुकराते हुए अदम्य ठाकुर केसरीसिंह और उनके परिजन अपने मार्ग पर चलते रहे और कभी विचलित नही हुए।

केसरीसिंह का जन्म सम्वत् 1929 मार्गशीर्ष कृष्णा 6, तदनुसार 21 नवम्बर, 1872 ई को राजपूताना की मेवाड राज्यान्तर्गत शाहपुरा रियासत की अपनी पैतृक जागीर के गाव देवपुरा मे हुआ। वे चारण जाति के इतिहास प्रसिद्ध सोदा बारहठ वंश मे उत्पन्न हुए थे। मेवाड के अन्तर्गत शाहपुरा राज्य म ठाकुर केसरीसिंह के पूर्व पुरुषो की जागीर स्थित थी। इस परिवार को

शाहपुरा राज्य के प्रथम श्रेणी के उमराव सरदारों का सम्मान इज्जत मिली हुई थी। केसरीसिंह बारहठ के पिता कृष्णसिंह ने अपनी कुशलता, बुद्धि-वैभव तथा क्षमता के कारण राजपूताना की समस्त रियासतों में सम्मान प्राप्त किया तथा तत्कालीन राजपूताना एवं मध्यभारत में प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ माने गये।

ठाकुर कृष्णसिंह के तीन पुत्र हुए- केसरीसिंह, किशोरसिंह और जोरावर सिंह। ठाकुर कृष्णसिंह स्वयं विचारों से स्वाभिमानी और देशभक्त थे। वे आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती के पट्ट शिष्यों में थे। वे न केवल विदेशी दासता के विरोधी थे अपितु राजा-महाराजाओं के चरित्र, व्यवहार एवं विचारों में जो हीनता उत्पन्न हो गई थी उससे वे बहुत त्रस्त थे।[1] यह स्वाभाविक था कि उनके इन विचारों का प्रभाव उनकी संतान पर पड़ता।

केसरीसिंह के जन्म के एक मास बाद ही उनकी जन्मदात्री का देहान्त हो गया और वे मां के स्नेह और लालन-पालन से वंचित हो गये। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम काल तक भारत के अधिकांश देशी राज्यों में शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता था। अधिकांश नरेश स्वयं अशिक्षित होते थे और सामान्य जन को शिक्षित करने के राजा के कर्त्तव्य का उन्हें भान नहीं था। समकालीन नरेशों में मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह (1874-1884 ई) उन प्रगतिशील राजाओं में से थे जिन्होंने अपने राज्य में थोड़ा बहुत शिक्षा-प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। महाराणा सज्जनसिंह की इस उदार नीति के फलस्वरूप उनके अमात्य तथा विश्वासपात्र सलाहकार और

(1) ठाकुर कृष्णसिंह साहित्य एवं इतिहास के मर्मज्ञ और विद्वान् लेखक थे। उनके द्वारा लिखित राजपूताने के तत्कालीन इतिहास से सम्बन्धित लगभग 1000 पृष्ठों का एक वृहद् ग्रन्थ 'बारहठ कृष्णसिंह का जीवन चरित्र और राजपूताना का अपूर्व इतिहास' अभी तक अप्रकाशित है। इस ग्रन्थ में तत्कालीन राजनैतिक स्थितियों का खुला और वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इन्होंने महाकवि सूर्यमल मिश्रण की सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य रचना "वंश भास्कर" की हिन्दी में "उदधि-मथिनी" टीका भी की थी। उन्होंने एक वृहद् 'डिंगल शब्द-कोश' की रचना भी की।

"वीर विनोद" इतिहास ग्रन्थ के सुप्रसिद्ध लेखक कविराज श्यामलदास[1] के प्रयत्नो से वि स 1937 (1880 ई) म उदयपुर मे चारण जाति के बच्चो की पढाई के लिये चारण पाठशाला और चारण छात्रावास की स्थापना की गई।[2] ठाकुर कृष्णसिंह स्वय भी महाराणा सज्जनसिंह के विश्वासपात्र तथा कविराजा श्यामलदास के सहयोगी रहे। चारण पाठशाला की स्थापना होते ही बालक केसरीसिंह आठ वर्ष की आयु म शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने पिता के पास उदयपुर आ गया, जहा पडित गोपीनाथ शास्त्री के सान्निध्य मे उसका विद्याध्ययन प्रारम्भ हुआ। बाद मे उनके दो अन्य भ्राता किशोरसिंह और जोरावरसिंह भी चारण पाठशाला मे अध्ययनार्थ उदयपुर आ गये।

केसरीसिंह वि स 1946 के अन्त तक चारण पाठशाला मे पढे। वि स 1947 मे केसरीसिंह का विवाह कोटा राज्यान्तर्गत कोटडी ठिकाने मे कविराजा देवीदानजी की बहिन सुश्री माणिक कुवर से हो गया और उसके तत्काल बाद वि स 1948 (1891 ई) म महाराणा फतहसिंह की सेवा मे राज्य-कार्य करने लगे। विवाह के लगभग तीन वर्ष उपरान्त वि स 1950 (25 मई 1893 ई) म उदयपुर म कविराजा श्यामलदास की हवेली म, जहाँ ठाकुर कृष्णसिंह रहते थे माणिक्य कुवर की कोख से देश का नाम उज्ज्वल करने वाले वीर पुत्र प्रताप का जन्म हुआ।

केसरीसिंह अपने पिता और कविराजा श्यामलदास के मार्ग-दर्शन में मेवाड राज्य की सेवा मे काम करने लगे। कविराजा श्यामलदास ने महाराणा सज्जनसिंह के देहावसान के बाद धीरे धीरे शासन काय से हाथ खीच लिया था इसलिये महाराणा फतहसिंह ठाकुर कृष्णसिंह और उनके पुत्र केसरीसिंह को अपना विश्वासपात्र रखकर इनके द्वारा सभी गोपनीय एव महत्वपूर्ण काय करवाते थे। किंतु आतरिक षडयत्र और अग्रेज सरकार के साथ उठने वाले विवादो से निपटने के लिये महाराणा को प्रधान मत्री पद पर नियुक्त करने के लिये

---

[1] ठाकुर कृष्णसिंह कविराजा श्यामलदास के भानजे थे और उनके परम विश्वासपात्रो म थे।

[2] इसी भाँति राजपूत जागीरदारो के बच्चों की शिक्षा के लिये उदयपुर में नोबल्स स्कूल खोला गया जिसको बाद में बढाकर कॉलेज का रूप दिया गया जो और जो महाराणा भूपाल नोबल्स कॉलेज के नाम से कहलाया।

अंग्रेजी भाषा में विद्वान किसी चतुर और राजनीति-पटु तथा कूटनीति प्रवीण व्यक्ति की आवश्यकता हुई । केसरीसिंह को यह कार्य सम्पादित करने का दायित्व दिया गया । पिता और पुत्र के स्वाभिमानी एवं देशभक्तिपूर्ण विचारों के मुताबिक उनका ध्यान माण्डवी[कच्छ] के राजनीति-दक्ष एवं देशभक्त श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा बार-एट-ला की ओर गया जो महाराणा फतहसिंह के राज्यकाल के प्रारम्भ में कविराजा श्यामलदास की सलाह पर पहिले भी मेवाड़ की शासन परिषद महद्राज सभा के सदस्य नियुक्त होकर कार्य कर चुके थे । ठाकुर कृष्णसिंह की भांति श्यामजी कृष्ण वर्मा भी महर्षि दयानन्द के पट्ट शिष्य थे । वे तब तक रतलाम राज्य के दीवान भी रह चुके थे । इस समय तक श्यामजी कृष्ण वर्मा ब्रिटिश दासता विरोधी स्वातन्त्र्य भावनाओं से ओतप्रोत हो चुके थे । संभवतः उन्होंने स्वतन्त्रता संघर्ष के लिये इतिहास-प्रसिद्ध मेवाड़ राज्य को अपना आगामी कार्य-क्षेत्र बनाने की बात सोची हो । इसलिये जब केसरीसिंह उनको बुलाने अजमेर गये तो वे सितम्बर 1893 ई. में उदयपुर आ गये किन्तु शीघ्र ही उनका मन उचट गया । पिछड़े एवं सामन्ती बन्धनों से जकड़े मेवाड़ राज्य में रहकर अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध कुछ कर पाना उन्होंने असम्भव पाया और वह शाहपुरा रियासत और अंग्रेज सरकार से संबंधित तथा कतिपय आन्तरिक विवादों को महाराणा के पक्ष में निपटा कर वापस लौट गये ।[1]

श्यामजी कृष्ण वर्मा की मेवाड़ में प्रधानमंत्री के तौर पर नियुक्ति से महाराणा और अंग्रेजों के सम्बन्धों पर विपरीत प्रभाव पड़ा । श्यामजी के उग्र विचारों के सम्बन्ध में अंग्रेज सरकार को जानकारी थी । महाराणा फतहसिंह स्वयं स्वाभिमानी वंश-गौरव के रक्षक, स्वतन्त्रता-प्रिय एवं मेवाड़ राज्य के आन्तरिक मामलों में अंग्रेज सरकार के हस्तक्षेप के विरोधी थे । जिससे अंग्रेज सरकार के अधिकारी प्रारम्भ से ही उनसे क्षुब्ध थे और उनको राज्यगद्दी से हटाने के लिये षडयन्त्र कर रहे थे । श्यामजी कृष्ण वर्मा जैसे व्यक्ति को उदयपुर बुलाना उनको सरकार विरोधी षडयन्त्र लगा । स्वाभाविक रूप से ठाकुर कृष्णसिंह का भी महाराणा का विश्वासपात्र बनकर मेवाड़ में काम करना अंग्रेज

[1] 1897 ई. में श्यामजी कृष्ण वर्मा भारत छोड़कर यूरोप चले गये और लन्दन तथा पेरिस में रहकर उन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिये क्रांतिकारियों को संगठित करने तथा सशस्त्र संघर्ष की तैयारी के लिये कार्य किया ।

सरकार को अखरने लगा और अंग्रेज सरकार महाराणा पर अधिकाधिक दबाव डालने लगी जिससे ठाकुर कृष्णसिंह का महाराणा की सेवा में कार्य करना कठिन होता गया। उधर महाराणा फतहसिंह स्वाभिमानी और स्वतन्त्रता-प्रिय होते हुए भी सामाजिक, राजनैतिक विचारों की दृष्टि से महाराणा सज्जनसिंह के विपरीत पुरातनवादी संकीर्ण एवं सुधार-विरोधी शासक थे। इसलिये श्यामलदास जैसा विश्वसनीय एवं योग्य व्यक्ति भी कुण्ठाग्रस्त होकर निष्क्रिय हो गया था। कृष्णसिंह भी प्रायः महाराणा के कठोर एवं हठी प्रकृति के सम्मुख स्वयं को असहाय पाते थे। ब्रिटिश सरकार श्यामजी कृष्ण वर्मा के समान ही कृष्ण सिंहजी को भी महाराणा के सलाहकार के रूप में नहीं देखना चाहती थी। अतः पोलिटिकल एजेंट कर्नल माइल्स के निर्देश पर उन्हें उदयपुर महाराणा की सेवा से 1893 ई. में निकाल दिया गया। कुछ समय बाद कुंवर केसरीसिंह भी कोटा चले गये।

उदयपुर महाराणा की सेवा में रहते हुए युवक केसरीसिंह की बुद्धि, ज्ञान और कार्यक्षमता का पर्याप्त विकास हो चुका था। जब कोटा राज्य के शासक महाराव उम्मेदसिंह ने उनके गुणों की प्रशंसा सुनी तो महाराव ने केसरीसिंह को 1900 ई. में कोटा बुला लिया और 60 रुपये मासिक पर नियुक्ति देकर उनको सम्मानीय दरबारी बनाया। केसरीसिंह ने उसके बाद कोटा को अपना स्थायी निवास बना लिया। 1902 ई. में उनको ब्रिटिश भारत में विभिन्न जातियों, पेशों आदि के सम्बन्ध में सूचनाएं एकत्रित करने का विशेष कार्य देकर सुपरिन्टेन्डेंट एथनोग्राफी के पद पर नियुक्त किया गया जो कार्य वे 1907 ई. तक करते रहे।

कोटा आगमन के पश्चात् केसरीसिंह के विचार और कार्यक्षेत्र एक निश्चित स्वरूप एवं दिशा ग्रहण करने लगे। उस समय उनकी आयु 28 वर्ष हो चुकी थी। अपने पिता के स्वाभिमानी एवं स्वतंत्र विचारों से प्रभावित केसरीसिंह उदयपुर में राजनैतिक, प्रशासनिक कार्य करते हुए विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों एवं विचार धाराओं के सम्पर्क में आये। जिज्ञासु प्रकृति के केसरीसिंह ब्रिटिश दासता के नीचे कराहते हुए भारतीय समाज की पतितावस्था स्पष्टतः देखने लगे। भारत के प्राचीन राष्ट्रीय गौरव पर गर्व करने वाले केसरीसिंह अंग्रेज शासन के जुए के नीचे छटपटाने लगे। राजपूतों, चारणों तथा भारत की अन्य लड़ाकू-जातियों की शौर्य एवं बलिदान की परम्पराओं पर गर्व करने वाले केसरीसिंह उनमें जाग्रति, एकता और संघर्ष का शंखनाद फूंकने के लिये तिल-

मिलाने लगे। उन्होंने अंग्रेज सरकार की शक्ति की सीमा एवं कमजोरियां तथा उसकी कूटनीति के तौर-तरीकों को भलीभांति समझ लिया था। उनको विश्वास हो गया था कि यदि राजपूताने की सैनिक राजपूत, चारण आदि जातियाँ एक बार अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठालें तो राजपूताने में ब्रिटिश शासन का अंत हो जाएगा और यदि एक बार राजपूताने से उसके पैर उखड़े तो अंततः भारत से ब्रिटिश शासन का अन्त हो जाएगा।

1900 ई. से 1914 ई. के बीच का समय केसरीसिंह बारहठ के जीवन का निर्णायक काल था। वे प्रारम्भ में धर्म सुधार, जाति सुधार और शिक्षा-सुधार की ओर प्रवृत्त हुए। इस महाभियान में उन्हें चारों ओर बालू के टीले ही टीले मिले, हरियाली कहीं नहीं। जब वे घोर निराशा एवं विद्रोहजनक प्रतिक्रिया के बीच थपेड़ें खाने लगे तो उनका सम्पर्क अर्जुनलाल सेठी और राव गोपालसिंह खरवा से हुआ। उनके द्वारा रासबिहारी बोस और शचीन्द्रनाथ सान्याल के गुप्त क्रांतिकारी दल के साथ सम्बन्ध स्थापित हुआ और केसरीसिंह सशस्त्र क्रांतिकारी विद्रोह के लिये राजपूताना में शस्त्रास्त्र एकत्रित करने साधन जुटाने, लडाकू सैनिक जातियों एवं ब्रिटिश फौजों में ब्रिटिश विरोधी विद्रोह के विचारों के प्रसार में लग गये।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है केसरीसिंह के प्रारम्भिक जीवन पर अपने पिता कृष्णसिंह[1] तथा उनके मामा कविराजा श्यामलदास के विचारों और जीवन व्यवहार का भारी प्रभाव पड़ा था। अठारह उन्नीस वर्ष की आयु से ही वह जातीय और सामाजिक सुधारों में उत्साहपूर्वक भाग लेने लग थे। वे इतिहास के प्रखर विद्यार्थी थे और भारतीय इतिहास में क्षत्रिय जाति की भूमिका के सम्बन्ध में उनकी अगाध आस्था और विश्वास था। उनको विश्वास था कि यदि क्षत्रिय जाति के लोग सामाजिक पतनावस्था के गर्त में निकाल लिये जायें और उन्हें अपने जातीय गौरव और राष्ट्रीय दायित्व के प्रति जाग्रत कर दिया जाये तो देश का इतिहास बदल सकता है। इसलिये उन्होंने सामाजिक कुरीतियों, कुप्रथाओं एवं रूढियों के विरुद्ध जाग्रति एवं संगठन का कार्य प्रारम्भ किया।

अब तक केसरीसिंह को संस्कृत के उद्भट विद्वान और शास्त्रों के ज्ञाता के रूप में सर्वत्र मान्यता मिल चुकी थी। राजनीति, क्षात्रधर्म, समाज सुधार शिक्षा प्रसार आदि विषयों के सम्बन्ध में उनके लेख पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होने

1] 1907 ई. में ठाकुर कृष्णसिंह का जोधपुर में देहान्त हुआ।

लगे थे। उनकी काव्य-प्रतिभा भी प्रस्फुटित हो चुकी थी। राजस्थानी तथा ब्रज भाषा में वे सुन्दर काव्य रचना करने लगे। उनकी कविताओं के भी अधिकांश विषय जाति, समाज और राष्ट्र का उद्धार होते थे। इस भाँति बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में केसरीसिंह राजपूताने में एक प्रभावशाली व्यक्तित्व के रूप में उभर चुके थे और राजपूताने के अधिकांश राजा महाराजा, जागीरदार, क्षत्रिय एवं जन-सामान्य उनको सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

सन् 1903 ई० में एक ऐसा अवसर उपस्थित हुआ जब केसरीसिंह ने अंग्रेज सरकार की गुलामी के विरुद्ध अपने विचार प्रकट किये। अंग्रेज सरकार अपना प्रभुत्व और आधिपत्य दर्शाने के लिये समय समय पर दरबार लगाया करती थी, जिसमें देश भर के राजाओं महाराजाओं, नवाबों आदि को शामिल होकर अपनी स्वामिभक्ति अनिवार्य रूपेण प्रकट करनी पड़ती थी। प्रत्येक राजा को उनमें शामिल होने के लिये बाध्य किया जाता था। 1903 ई० में भारत के वायसराय लार्ड कर्जन ने सम्राट एडवर्ड सप्तम् के राज्यारोहण के उपलक्ष्य में दिल्ली दरबार आयोजित किया तो राजपूताना के राजाओं को भी आमंत्रित किया गया। स्वाभिमानी और देशभक्त लोग इस दासता प्रदर्शन में शरीक होने के विरुद्ध थे, किन्तु वे इतने अशक्त और असहाय थे कि नाम-मात्र का विरोध भी नहीं कर सकते थे। किन्तु मेवाड़ में हलचल हुई। महाराणा फतहसिंह ने मेवाड़ की स्वतंत्र परम्पराओं तथा 1818 ई० की मेवाड़ एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी के मध्य हुई संधि के आधार पर दिल्ली दरबार में शरीक होने से इन्कार कर दिया। इस समय जबकि देश में विशेष रूप से बंगाल में ब्रिटिश सरकार को हटाने एवं स्वदेशी शासन कायम करने की भावनायें प्रबल हो रही थी, महाराणा के दिल्ली दरबार में शामिल नहीं होने से ब्रिटिश सरकार की प्रतिष्ठा का भारी धक्का लगता और कानूनी एवं नैतिक दृष्टि से ब्रिटिश शासन की स्थिति कमजोर होती तथा ब्रिटिश विरोधी शक्तियों को प्रबल प्रोत्साहन मिलता। इस पर ब्रिटिश सरकार ने महाराणा पर हर प्रकार का दबाव डाला और गद्दी से हटा देने तक की धमकी दी। कुछ शर्तों पर जब महाराणा दिल्ली दरबार में शामिल होने के लिये दिल्ली रवाना हुए तो केसरीसिंह ने "चेतावणी रा चूंगट्या" शीर्षक से मार्मिक भाषा में तेरह सोरठे लिखकर महाराणा को भेजे, जिनके द्वारा उन्होंने महाराणा को अपने कुल गौरव तथा स्वाभिमान एवं स्वतंत्रता की रक्षा के लिये महाराणा प्रताप द्वारा सर्वस्व त्याग एवं बलिदान की परम्परा का भान कराया। महाराणा फतहसिंह दिल्ली जाकर बीमार हो गये और दरबार में शरीक नहीं हुए। ब्रिटिश सरकार की यह भारी अवज्ञा थी किन्तु वह खून का घूंट पीकर रह गई। केसरीसिंह द्वारा महाराणा को भेजे गये कुछ सोरठे यहां उद्धृत किये जा रहे हैं—

पग पग भम्या पहाड़, धरा छांड राख्यो धरम
(ईसू) महाराणा'र मवाड़, हिरद बसिया हि द रै ।।
घण घलिया घमसाण (तोई) राण सदा रहिया निडर,
पेखता फरमाण, हलचल किम फतमल हुवै ।।
सिर झुकिया सहसाह, सिंहासण जिण सामने ।
रलणो पगतराह, फावै किम तोनें फता ।।
देखेला हिंदवाण, निज सूरज दिस नेह सू ।
पण 'तारा' परमाण, निरख निसासा न्हाखसी ।।
मान मोद सीसोद, राजनीति बल राखणो ।
(ई) गवर्मेंट री गोद, फल मीठा दीठा फता ।।(¹)

1911 में दिल्ली दरबार मे भी महाराणा फतहसिंह शाही जुलूस और दरबार म शरीक नहीं हुए थे। निमेज कत्ल केस के दौरान हुई अभियुक्तो की गवाही से पता चलता है कि उस समय भी केसरीसिंह बारहठ तथा खरवा ठाकुर राव गोपालसिंह ने यह प्रयत्न किया था कि महाराणा दरबार म शामिल न हो। अभियुक्त सोमदत्त उर्फ विवेकानन्द लहरी ने अपने बयान म कहा है कि मवाड के सरदारो की ओर से महाराणा के नाम का एक गुमनाम पत्र तैयार किया गया जिसकी शुद्ध प्रतिलिपि मेरे द्वारा कराई गई। पत्र म लिखा गया कि महाराणा सूर्यवंशी हैं उन्होंने कभी मुगलो के आगे सिर नहीं झुकाया। महाराणा को फिरंगी के स मुख झुकने के बनिस्पत आत्महत्या कर लेना उचित होगा। ठाकुर गोपालसिंह के कहने पर लहरी ने यह पत्र अजमेर डाक से रवाना किया था।

केसरीसिंह ने क्षत्रियो मे जाग्रति का शंख फूकने की दृष्टि स समाज-सुधार और शिक्षा प्रचार के काय को माध्यम बनाया। क्षत्रिय समाज म व्याप्त तमाम प्रकार की सामाजिक बुराइयों एवं कुप्रथाओ-जैसे बहु विवाह टीका प्रथा, बाल विवाह दास प्रथा, शादी और गमी पर अपव्यय आदि के विरुद्ध उन्होंने प्रचार और संगठन सबधी काय किया। इस काय के लिये "वाल्टर कृत राजपूत

[1] चेतावणी रा चूंगट्या लिखने से पूर्व केसरीसिंह ने कोटा महाराव के माध्यम से लार्ड कर्जन को "कुसुमांजलि" शीर्षक पद्यबद्ध पुस्तिका प्रकाशनार्थ भेंट की थी जो प्रत्यक्षतया ब्रिटिश सरकार की प्रशंसा थी किंतु गूढार्थ मे उसकी निन्दा थी। लार्ड कर्जन ने जब यह पुस्तिका किसी संस्कृत विद्वान को बतलाई तो उसने वास्तविकता प्रकट कर दी।

हितकारिणी" सभा को उन्होंने अपना मच बनाया। यह सभा कविराजा श्यामलदास के प्रयत्नों से राजपूताना में तत्कालीन एजेन्ट टू दी गवर्नर जनरल कर्नल वाल्टर की अध्यक्षता में सन 1880 में स्थापित हुई थी जिसकी शाखायें राजपूताना के लगभग सभी राज्यों म थी। इस सभा के सालाना जलसे होते थे प्रस्ताव आदि पास होते थ, किन्तु उससे आगे कुछ नहीं होता था। केसरीसिंह ने वाल्टर कृत राजपुत्र हितकारिणी सभा की कोटा शाखा को सक्रिय किया और उसके द्वारा उसके केन्द्रीय सगठन को प्रभावकारी बनाने की निरन्तर चेष्टा की।

सन् 1905 मे केसरीसिंह बारहठ ने राजपुत्र हितकारिणी सभा की कोटा शाखा के सम्मेलन मे जाति–उत्थान पर एक मार्मिक भाषण दिया।[1] उन्होंने क्षत्रियों की पतीत एवं दयनीय दशा पर चोट करते हुए स्मरण कराया– 'ईश्वर के घर से कभी किसी व्यक्ति या जाति को राज्य करने का परवाना नहीं मिलता। सब शक्ति का खेल है। आधिपत्य शक्ति मे है। ससार शक्ति का उपासक है। शक्ति अपने सच्चे भक्त ही की भुजाओं पर रहती है। वह उसी की बन जाती है और साथ मे ससार को भी उसी का बनाती है। आपके पूर्वज भी शक्ति के अभेद भक्त थे पूर्ण शक्ति सम्पन्न थ, शक्ति उन्हीं की हो चुकी थी किन्तु प्रमाद से शक्ति चली भी जाती है। शक्ति का वह चिर स्थान आज उजाड़ है।

इसी सम्मेलन मे उन्होंने "राजपुत्र हितकारिणी सभा" को अंग्रेजो के प्रभाव से मुक्त करने लिये यह प्रस्ताव रखा कि उसका स्थायी अध्यक्ष अंग्रेज ए जी जी नहीं रहे और उसके स्थान पर राजपूत नरेश हो जो प्रतिवर्ष बदलते रहें। उन्होंने सभा की कार्यवाही को हिन्दी म चलाने तथा विद्या प्रचार का काय मुख्य रूप से हाथ म लेने पर जोर दिया। इसी दृष्टि से केसरी सिंह ने 1905 से 1913 के दौरान राजपूताने के ए जी जी तथा राजपूताने की जोधपुर, बीकानेर आदि रियासतो म उच्च पदो पर आसीन क्षत्रिय जाति के अधिकारियों, जागीरदारो आदि को जातीय सुधार हेतु तथा टीका प्रथा जैसी विनाशक रूढ़ियो की समाप्ति के लिये मिलकर प्रयास करने पर जोर दिया। उन्होंने 'टीका–प्रथा" की उत्पत्ति के कारणो एव उसके दुष्प्रभावों पर हिन्दी एव अंग्रेजी म एक विस्तृत लेख तयार कर ए जी जी को भेजा तथा हित-

---

[1] यह भाषण आगरा से प्रकाशित "राजपूत" पाक्षिक के 15 दिसम्बर 1905 के अक मे प्रकाशित हुआ था।

कारिणी सभा के माध्यम से इस कुप्रथा को रोकने के लिये कार्यवाही करने पर बार-बार जोर दिया।[1]

सन् 1903 के दिल्ली दरबार में भाग नहीं लेने का जो साहस महाराणा फतहसिंह ने दिखाया था, उससे राजपूताना के उन नरेशों, जागीरदारों अधिकारियों में साहस पैदा हो गया था जो अंग्रेज अधिकारियों के दबाव और हस्तक्षेप से पीड़ित थे। इससे केसरीसिंह बारहठ जैसे देशभक्त एवं मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए चेष्टा करने वाले क्रांतिकारी का हौंसला बढ़ा। उनका विश्वास था कि जब तक समस्त क्षत्रिय जाति को अशिक्षा के अन्धकार से मुक्त नहीं किया जाता उसमें अच्छे संस्कार, सद्विचार एवं स्वाभिमान के भाव पैदा नहीं हो सकते। उस समय नरेशों, बड़े जागीरदारों, उमरावों की संतानों को अजमेर स्थित मेयो कालेज जैसी संस्थाओं में अंग्रेजों से जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी उससे उन बच्चों में दासता और हीनता के संस्कार ही पैदा होते थे जो जाति और देश के लिये घातक थे। केसरीसिंह का विचार था कि बच्चों एवं नवयुवकों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिये, जिससे उन्हें अपनी जाति, अपने देश और अपनी संस्कृति के इतिहास का वास्तविक ज्ञान

---

[1] कोटा महाराव की सेवा में आने के बाद केसरीसिंह ने कुछ समय तक धर्मसुधार के कार्यों में भी रुचि ली। वे भारत धर्म महामंडल के सक्रिय कार्यकर्ता रहे। भारत धर्म महामंडल, काशी के स्वामी ज्ञानानन्द को उन्होंने गुरु स्वरूप स्वीकार किया। स्वामी ज्ञानानन्द स्वयं प्रच्छन्न क्रांतिकारी थे और अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र कार्यवाही के पक्षधर थे। उनका राजपूताना और मध्यभारत के राजा-महाराजाओं और सामंतों पर भी बड़ा प्रभाव था। स्वामी ज्ञानानन्द के साथ केसरीसिंह के निकट संबंधों के कारण राजपूताना के नरेशों एवं सामंतों पर प्रभाव बढ़ाने में केसरीसिंह को बड़ी मदद मिली। केसरीसिंह की काव्य प्रतिभा को मान्यता देते हुए महामंडल के अध्यक्ष महाराजा दरभंगा द्वारा उनको "कविरत्न" की उपाधि से विभूषित किया गया था। 1902 ई. में स्वामीजी ने उनको मंडल का प्रतिनिधि बनाकर महामंडल के संकट को दूर करने के लिये कलकत्ता भेजा था। उन्होंने महाराजा दरभंगा को समझा बुझाकर महामंडल के प्रधान पद पर बने रहने के लिये पुनः तैयार किया। इसी यात्रा के दौरान बाबू भगवानदास [भारतरत्न] बाबू श्यामसुन्दरदास तथा श्रीमती एनीबिसेन्ट एवं श्री अरविन्द जैसे देशभक्तों से उनकी भेंट हुई।

हों जिससे उनमें आत्माभिमान और देशभक्ति के संस्कार पनपे हों और जिससे उनमें आत्मविश्वास और आत्मबल जाग्रत हो। ऐसी शिक्षा प्राप्त करने वाले नवयुवक ही देश को स्वतन्त्र करने की तथा उसकी तरक्की की बात सोच सकते हैं।

इस विचार से केसरीसिंह ने 1904 से 1913 ई. के दौरान राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार-प्रसार की कई योजनाएं बनाईं और प्रयास किये। जापान जैसे छोटे एशियाई देश द्वारा ज्ञान-विज्ञान में की गई उन्नति से वे बड़े प्रभावित थे, जिसके कारण जापान ने रूस जैसे बड़े देश को पराजित कर दिया था। जापान की विजय ने भारतीय क्रांतिकारियों एवं राष्ट्रवादियों के हौसले बढ़ा दिये थे। उन्हीं दिनों 1903-4 में बंगाल में नेशनल कालेज की स्थापना की गई थी जिसके पहले प्रिंसिपल श्री अरविन्द बने। 1904 में केसरीसिंह ने राजपूताने में क्षत्रिय कालेज की स्थापना की योजना तैयार की। उसी वर्ष जनवरी माह में अजमेर में आयोजित क्षत्रिय महासभा के अधिवेशन में क्षत्रिय कालेज की स्थापना का प्रस्ताव पास हुआ तथा उसके लिए एक कमेटी भी बनाई गई। ठाकुर ओंकारसिंह पलायथा उसके मंत्री बनाये गये।[1] केसरीसिंह ने इस योजना की क्रियान्विति के लिये बहुत प्रयास किये किन्तु दबाव, भय और प्रमाद के कारण राजपूताने के नरेशों एवं सामन्तों से उनका सहयोग नहीं मिला।

ठाकुर केसरीसिंहजी एक महती प्रतिभा के धनी तो थे ही साथ ही किसी विषय के मूल तक पहुंचने की उनकी जिज्ञासा बड़ी प्रबल थी और उसके अनुरूप ही उनकी क्रियाशक्ति भी बहुत सुव्यवस्थित और सुनियोजित थी। युवावस्था में उन्हें इस बात की जिज्ञासा हुई कि शब्दों के उच्चारण पर उनका स्वरूप कैसा बनता है, उसके वाईब्रेशन से वायुमण्डल में कम्पन बनते हैं और अनंत में उनका प्रभाव किस प्रकार पड़ता है। इस अनुसंधान द्वारा वे वर्णमाला का असली प्राकृत रूप स्थित करना चाहते थे जिससे संसार के लिये एक नवीन लिपि का आविष्कार हो सके।

एक वैज्ञानिक की भांति उन्होंने इस विषय में अनुसंधान कार्य किया परन्तु देश की मांग के अनुसार उनका कार्य अलग ही दिशा में मोड़ ले चुका था। राष्ट्रीय शिक्षा, समाज सुधार और स्वाधीनता संग्राम के क्रांतिकारी आन्दोलन

---

[1] ओंकारसिंह पलायथा बाद में कोटा राज्य के दीवान हुए और ब्रिटिश सरकार से उनको के. सी. एस. आई. का खिताब मिला।

के प्रवाह में वे ऐसे बह कि उन्हें सम्भवतः उक्त अनुसंधान कार्य को बीच ही में त्यागना पड़ा। उनकी अधिकांश सामग्री उन्हीं के साथियों द्वारा नष्ट करदी गई। बची सूची को सरकार ने जब्त कर लिया। कुछेक जो कागज उपलब्ध हो सके हैं जो उनके वर्शानिक सान्निध्य की साक्षी स्वरूप प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

अनुमानतः 1908 ई॰ में केसरीसिंह ने "राजपूताना एण्ड सेन्ट्रल इन्डिया एज्यूकेशनल एसोसियेशन फॉर टेक्नीकल एज्यूकेशन" की रूपरेखा तैयार की जिसके द्वारा इस प्रदेश से तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने हेतु विद्यार्थियों को जापान भेजने की व्यवस्था की जा सके। इस योजना के पीछे उनका उद्देश्य यह था कि एसोसियेशन के खर्च से भारतीय विद्यार्थी उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिये इंग्लैण्ड के बजाय स्वतन्त्र और उन्नतिशील देश जापान भेजे जायें और वे वहां से लौटकर देश की यथानिक तकनीकी उन्नति तथा भारत को उद्योगी एवं स्वतन्त्र राष्ट्र बनाने में सहायक हों। वस्तुतः उन दिनों अधिकाधिक भारतीय नवयुवकों को विदेशों में शिक्षा हेतु भेजने की योजना चल रही थी जिससे कि विदेशों में जाकर वे शिक्षा प्राप्ति के साथ-साथ मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए क्रान्तिकारी विचारधारा में भी दीक्षित किये जा सकें। इण्डिया में एक 'इण्डियन जापानीज एसोसियेशन" भी था और कलकत्ता स्थित 'एसोसियेशन फार दी एडवान्समेन्ट ऑफ साइंटिफिक एज्यूकेशन इन इंडिया' इसके लिये कार्य कर रहा था जिसका सेक्रेटरी जोगेन्द्रचन्द्र घोष था।

सन् 1913 ई॰ में केसरीसिंह ने क्षात्र शिक्षा-परिषद् की योजना बनाई।[1] केसरीसिंह ने क्षत्रिय जाति के नाम एक "अपील" जारी की जिसमें क्षत्रिय जाति के पुनरुद्धार के लिये आह्वान करते हुए क्षत्रिय बालकों के लिये ऐसी शिक्षा पद्धति प्रारम्भ करने के लिये कहा गया जिससे कि सर्वसाधारण राजपूतों को सुशिक्षित सुशील, सदाचारी एवं सच्चे क्षत्रिय बनाया जा सके। इस योजना में प्राथमिक शिक्षा को प्रधानता देते हुए उसको इतनी सुलभ, सस्ती और विस्तृत बनाने का प्रयास किया गया कि जिसका लाभ गरीब से गरीब राजपूत उठा सके। इसके लिये स्थानीय और प्रान्तीय छात्रालय स्थापित करने

---

[1] क्षात्र शिक्षा परिषद् की स्थापना के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए केसरीसिंह ने कहा था–'अविद्या के जल से वीर जाति की फौलादी नाव में अनेक छिद्र पड़ गये हैं और अर्थरूपी जल भीतर घुस गया है। विद्या के अभाव में आत्म-स्वरूप की भावना विस्मृत हो जाने पर किसी भी जाति अथवा समाज का पतन अवश्यम्भावी है।"

का प्रस्ताव किया गया। क्षत्रिय जाति के नाम यह "अपील" वस्तुत समस्त भारतवासियों के लिये थी। ब्रिटिश सरकार ने इसमें राजद्रोह देखा। उसके अनुसार इसका उद्देश्य जातिवाद की शिक्षा देना था। केसरीसिंह ने यह अपील जोधपुर की राजकीय प्रेस में छपवाई थी। ब्रिटिश सरकार को इसका पता लगने पर जोधपुर महाराजा तथा उनके प्रधानमन्त्री ले जनरल सर महाराजा प्रतापसिंह संकट में पड़ गये। उन्होंने घबराकर केसरीसिंह के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार को सहयोग दिया।

इस योजना को सफल करने के लिये केसरीसिंह ने राजपूताना के समस्त राजपूत नरेशों, श्रीमन्तों, जागीरदारों आदि से पत्र व्यवहार शुरु किया। एक प्रकार से इस योजना को क्रियान्वित करने में ही अपना जीवन समर्पित कर देने का निश्चय कर उन्होंने कोटा महाराव को अपनी सेवा से मुक्त करने का पत्र भी लिख दिया। उनकी योजना थी स्थान स्थान पर जाकर धन एकत्रित किया जाय और उसके द्वारा इस योजना को सफल बनाया जाय।

किन्तु इसके पूर्व कि केसरीसिंह बारहठ अपनी इस नवीन योजना की क्रियान्विति के अभियान में पूरी तरह कूद पड़ते, वे ब्रिटिश सरकार द्वारा 31 मार्च 1914 को ब्रिटिश सरकार का तख्ता उलटने के राजनैतिक षडयन्त्र के मुकद्दमे में शाहपुरा में गिरफ्तार कर लिये गये।

अंग्रेजी दासता से मातृभूमि की मुक्ति के लिये अदम्य इच्छा रखने वाले साहसी एवं दूरदृष्टा केसरीसिंह ने जब राष्ट्रीय आजादी की प्राप्ति हेतु क्षत्रिय जाति के लोगों को लड़ाई के मैदान में उतारने के लिये उनमें क्षात्र-धर्म जातीय सुधार, राष्ट्रीय-शिक्षा एवं देशभक्ति के विचारों के प्रसार का कार्य प्रारम्भ किया तो कुछ समय उपरान्त ही उन्हें यह समझ में आ गया कि उनमें दासता, परावलम्बता एवं हीनता की जड़ें इतनी गहरी जमी हुई हैं कि उनमें व्याप्त बुराईयां और पतित मनोवृत्तियों को मिटाना और उनमें स्वाभिमान एवं राष्ट्राभिमान की भावनाएं पैदा करना अत्यन्त कठिन और दुष्कर कार्य था। यद्यपि वे सुधार एवं जाग्रति का कार्य करते रहे किन्तु उन्हें यह विश्वास हो गया था कि सत्ता के परिवर्तन के बिना जातीय एवं राष्ट्रीय उत्थान का कार्य संभव नहीं होगा। अतः केसरीसिंह जैसा दृढ़प्रतिज्ञ, मेधावी एवं साहसी व्यक्ति अन्य मार्ग एवं साधन ढूंढने लगा और वह सुधारवाद से क्रान्तिकारी मार्ग की ओर मुड़ गया।

इस शताब्दी के प्रथम दशक में भारत के कई भागों में अंग्रेजों को भारत से हटाने के लिये देशभक्त नवयुवक सशस्त्र क्रान्तिकारी योजनाओं पर अमल

करने लगे थे। संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप, जापान और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में रहने वाले भारतीय भी अपने देश की गुलामी से मुक्त करने के लिये सशस्त्र-क्रांति की तैयारी कर रहे थे। विदेशों में काम करने वाले भारतीय क्रांतिकारियों और भारत में सशस्त्र क्रांति की चेष्टा में कार्यरत क्रांतिकारियों के बीच सम्पर्क स्थापित कर भारत से अंग्रेजों को निकालने की संयुक्त योजना तैयार की गई तथा विदेशों में धन एवं हथियार एकत्रित किये जाने लगे। उस समय उत्तरी भारत में लाला हरदयाल,[1] रासबिहारी बोस, शचीन्द्रनाथ सान्याल आदि के नेतृत्व में "अभिनव भारत" नामक क्रान्तिकारी संगठन के कार्य का प्रसार हो रहा था। इसी भांति पूर्वी भारत में ज्योतीन्द्रनाथ मुखर्जी (जतीन बाघा) के नेतृत्व में सशस्त्र क्रान्ति के प्रयास चल रहे थे। राजपूताना में क्रांतिकारी कार्य की दृष्टि से उन्होंने लड़ाकू राजपूतों, जागीरदारों एवं नरेशों तथा उनकी फौजों को चुना था, जिनका स्वाभिमान और स्वतन्त्रता के लिये जूझने का लम्बा इतिहास रहा था और जिनमें अभी भी स्वाभिमान की रक्षा की भावनाएं विद्यमान थी, जो 1903 और 1911 के दिल्ली दरबारों में महाराणा फतहसिंह द्वारा की गई ब्रिटिश साम्राज्य की अवज्ञा और अवहेलना की कार्यवाही से स्पष्ट प्रकट हो गई थी और जिसकी दबे स्वर में अन्य नरेशों ने सराहा था। क्षुब्ध ब्रिटिश सरकार महाराणा फतहसिंह का कुछ नहीं बिगाड़ सकी थी। प्रथम दशक में कई क्रांतिकारी धर्मोपदेशक अथवा शिक्षक बनकर राजपूताना में काम करने लगे। जिनमें लाहौर निवासी भाई बालमुकुन्द, मिर्जापुर निवासी प. विष्णुदत्त त्रिवेदी और कानपुर निवासी सोमदत्त उर्फ लहरी आदि मुख्य थे। भाई बालमुकुन्द जोधपुर के राजकुमारों के ट्यूटर थे।

इन्हीं दिनों केसरीसिंह के साथ उनका सम्पर्क हुआ और स्वतन्त्र एवं उग्र विचारों वाला केसरीसिंह तत्काल भारत की आजादी के लिये प्रयत्नशील इस अन्तर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी योजना में शरीक हो गया। केसरीसिंह का इस कार्य

---

[1] लाला हरदयाल ने बाद में अमेरिका जाकर गदर पार्टी के संगठन का कार्य किया। यूरोप में श्यामजी कृष्ण वर्मा, मैडम कामा आदि ने क्रांतिकारियों को संगठित करने का कार्य किया। विदेशों में स्थित भारतीय फौजों में बगावत कराने तथा हथियार लेकर हजारों की संख्या में भारतीय क्रांतिकारियों के गुप्त रूप से भारत पहुँचने की योजनाएं बनाई गई।

मे शरीक होना राजपूताना की दृष्टि से महत्वपूर्ण बात थी, क्योंकि न केवल ठाकुर कृष्णसिंह बारहठ के पुत्र होने के नाते अपितु अपनी विद्वता और कार्य-कुशलता, प्रगतिशील विचारो तथा समाज-सुधार और शिक्षा-प्रसार के कार्यों के कारण वे राजपूताना मे प्रसिद्ध एव प्रभावशाली व्यक्ति बन चुके थे। कोटा नरेश तो उनके प्रति श्रद्धा रखते ही थे, राजपूताने के कई नरेश और सामन्त उनकी बात सुनते और मानते थे।

केसरीसिंह के साथ खरवा के ठाकुर राव गोपालसिंह और जयपुर के अर्जुनलाल सेठी राजपूताना मे "अभिनव भारत" सगठन के प्रमुख सूत्रधार बने, जिसमे बाद मे केसरीसिंह के अनुज जोरावरसिंह, पुत्र प्रतापसिंह और जामाता ईश्वरदान [1] भी शामिल हुए। क्रान्तिकारी कार्य मे व्यापक स्तर पर राजपूताने के नरेशो, जागीरदारो, राजपूत नवयुवको आदि को शामिल करने की दृष्टि से 1910 ई मे केसरीसिंह ने राजपूताने मे "वीर भारत सभा" [अभिनव भारत की शाखा] नामक सगठन की स्थापना की। केसरीसिंह के प्रयास से राजपूताने के कई नरेश, सामन्त और प्रभावशाली व्यक्ति इस सभा के सदस्य बने।

राजपूताना मे गुप्त क्रान्तिकारी सगठन ने निम्न कार्य निश्चित किये— क्षत्रिया एव अन्य लडाकू जातियो मे राष्ट्रीय विचारो का प्रसार, शिक्षा कार्य के माध्यम से नवयुवको को क्रान्तिकारी कार्य मे शामिल करना, क्रान्ति के लिये धन और शस्त्रास्त्र एकत्रित करना, राजपूताना की रियासतो की फौजो मे बगावत के विचार प्रसारित करना।

केसरीसिंह ने "वीर भारत सभा" के गुप्त क्रान्तिकारी कार्य को बडी सावधानी एव चतुराई के साथ क्षात्र धर्म के प्रचार, जातीय सुधार एव शिक्षा-प्रचार के कार्य के साथ सयुक्त किया। ठाकुर केसरीसिंह, राव गोपालसिंह खरवा और अर्जुनलाल सेठी ने शिक्षा कार्य के माध्यम से स्वदेश के लिये मर मिटने वाले क्रान्तिकारी नवयुवक तैयार करने पर विशेष ध्यान दिया। उन दिनों आर्य समाज द्वारा सचालित स्कूल और कॉलेज ऐसी सस्थाए थीं जहां विद्यार्थियो मे देश प्रेम की भावनाए पैदा की जाती थी। अजमेर स्थित डी ए वी स्कूल ऐसी ही सस्था थी। क्रान्तिकारी नवयुवक तैयार करने की दृष्टि से ठाकुर गोपालसिंह ने कुछ बालको को डी ए वी हाईस्कूल मे भर्ती करवाकर अपने व्यय से बोर्डिंग हाउस मे रहने की व्यवस्था की, उनमे प्रमुख नारायणसिंह,

[1] ठाकुर ईश्वरदान आशिया मेवाड राज्य के मोगटिया ग्राम के जागीरदार स्व ठाकुर जवानसिंह के पुत्र है। उनका विवाह ठाकुर केसरीसिंह की पुत्री चन्द्रमणि के साथ हुआ। इस समय आपकी आयु 83 वर्ष है।

प्रेमसिंह और मगनसिंह थे। राजपूताने में अन्य स्वाभिमानी परिवार के लोग अपने बच्चों को इस विद्यालय में विद्याध्ययन के लिये भेजते थे। केसरीसिंह के पुत्र प्रतापसिंह और जामाता ईश्वरदान आशिया भी प्रारम्भ में इसी स्कूल में पढ़े।

केसरीसिंह एक अनन्य देशभक्त थे। दूसरों को प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देने से पूर्व उन्होंने देश के लिये सर्वस्व समर्पण का कार्य अपने घर से प्रारम्भ किया। उनके आदर्श चरित्र और दृढ़ विचारों के कारण उनका सम्पूर्ण परिवार देशभक्ति के रंग में रंग गया। उनकी प्रेरणा से उनका अनुज जोरावरसिंह, पुत्र प्रतापसिंह और जामाता ईश्वरदान जीवन की आहुति मांगने वाले क्रांतिकारी कार्य में कूद पड़े। निःसंदेह ऐसे उदाहरण विरले ही मिलते हैं। इसी से प्रेरित होकर रासबिहारी बोस ने कहा था– ऐसे उदाहरण तो हैं कि पिता ने पुत्र को देश की बलिवेदी पर चढ़ने को भेज दिया परन्तु मेरे सामने केसरीसिंह का यह पहिला उदाहरण है जिसने अपने पुत्र के साथ जामाता को भी आगे कर दिया है।

यह ज्ञातव्य है कि राजपूताना में गुप्त क्रांतिकारी कार्य को प्रचारित एवं प्रसारित करने में मिर्जापुर निवासी ब्राह्मण पं विष्णुदत्त त्रिवेदी [बिशनदत्त] ने बड़ा जबरदस्त कार्य किया था। वह उग्र एवं क्रोधी प्रकृति का व्यक्ति था और अंग्रेजों के प्रति उसके रोम रोम में घृणा और प्रतिशोध की आग जलती थी। उसका सम्बन्ध बंगाल के क्रांतिकारी संगठन 'अनुशीलन समिति' से रहा था। मारवाड़ के गांवों में घूम घूम कर वहां के क्षत्रिय बालकों का यज्ञोपवीत संस्कार कराने की आड़ में वह विप्लव की भावनाएं भरता था। वह केसरीसिंह का विश्वासपात्र साथी बन गया।[1] केसरीसिंह के द्वारा अर्जुनलाल सेठी और राव गोपालसिंह के पास उसका आना जाना शुरू हुआ। जब अर्जुनलाल सेठी ने अपनी वर्धमान जैन पाठशाला प्रारम्भ की तो विष्णुदत्त ने वहां अध्यापन का कार्य किया। बिहार के आरा जिले में स्थित निमेज गांव के मठ पर धन प्राप्ति हेतु छापा मारने के कार्य का नेतृत्व विष्णुदत्त ने ही किया था, जिसमें वहां का महंत मारा गया था। धन प्राप्ति हेतु ही बोगों ने जोधपुर के

[1] बिशनदत्त भारत धर्म महामंडल का भी सक्रिय कार्यकर्ता था। कई क्रांतिकारी महामंडल के धार्मिक कार्य के माध्यम से अपनी गतिविधियां चला रहे थे। 1910 ई में राजपूताना में सनातन धर्म के प्रसार कार्य के नाम पर बिशनदत्त को केसरीसिंह के साथ कोटा भेजा गया था।

रामस्नेही महन्त के मारे जाने की योजना में भी उसका प्रमुख हाथ था। जब **1912** ई में केसरीसिंह की पुत्री चन्द्रमणि का विवाह ईश्वरदान आशिया के साथ कोटा में किया गया, उस समय विष्णुदत्त ने देशभक्ति पर बड़ा ओजस्वी भाषण दिया था।

योजनानुसार अर्जुनलाल सेठी ने जयपुर में वर्धमान जैन विद्यालय प्रारम्भ किया जिसमें प विष्णुदत्त जैसे क्रान्तिकारी विचारों के अध्यापक नियुक्त किये गये।[1] यह संस्था क्रान्तिकारियों के सम्पर्क का केन्द्र बन गई और यहां नव युवकों को क्रान्तिकारी विचारों में दीक्षित प्रशिक्षित करने का कार्य किया जाने लगा। केसरीसिंह ने अपने पुत्र प्रतापसिंह और जामाता ईश्वरदान को आगे की पढ़ाई के लिये यहां भेज दिया। दक्षिण भारत से शोलापुर आदि के जैन विद्यार्थी मोतीचन्द, माणिकचन्द देवचन्द आदि यहां पढ़ते थे। एक पंजाबी युवक जयचन्द और उदयपुर के कृष्णलाल वर्मा भी यहां विद्याध्ययन करते थे। अहिंसा और धर्म के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से स्थापित संस्था में देश की आजादी के लिये सशस्त्र कार्यवाहियां करने का प्रशिक्षण दिया जाता था। यहां विद्यार्थी "काल" और "केसरी" जैसे उग्रवादी विचारों के मराठी पत्र मंगवाकर पढ़ते थे।

अपने यहां प्रशिक्षण के बाद सेठीजी विद्यार्थियों को चुन-चुन कर गुप्त स्थानों पर क्रान्तिकारी कार्यों हेतु अथवा उनका प्रशिक्षण प्राप्त करने हेतु भेजा करते थे। प्रतापसिंह, छोटेलाल तथा ईश्वरदान को दिल्ली के अमर शहीद राम बिहारी बोस के अनन्य सहयोगी अमीरचन्द के पास भेजा गया, जहां वे रास-बिहारी बोस और शचीन्द्रनाथ सान्याल के सम्पर्क में आये। वहां उन्हें रूस का "निहिलिस्ट" साहित्य तथा 'लिबर्टी 'इंडिपेंडेंस" आदि क्रान्तिकारी पम्फलेट पढ़ने को दिये गये। इसके बाद अपने चाचा जोरावरसिंह की तरह प्रतापसिंह भी गुप्त सशस्त्र क्रान्ति के कार्य में आगे बढ़ता ही गया।

इधर केसरीसिंह राजपूत बालकों की शिक्षा के लिये तत्र-तत्र छात्रावास स्थापित करके छात्रों एवं उनके अभिभावकों में विदेशी सत्ता के विरुद्ध क्रांति कारी विचारों का प्रसार करने में लगे हुए थे। कोटा और जोधपुर में उन्होंने बोर्डिंग हाउस स्थापित किये जहां बालकों एवं नवयुवकों को राष्ट्रीय एवं क्रांति-कारी विचार दिये जाने लगे। इन छात्रावासों का संचालन क्रान्तिकारी विचारों

[1] अर्जुनलाल सेठी देहली और राजपूताने के क्रांतिकारियों के बीच कड़ी का काम करते थे।

वाले व्यक्तियों को ही दिया गया। जोधपुर बोर्डिंग हाउस का सुपरिन्टेन्डेन्ट सोमदत्त लहरी और कोटा बोर्डिंग हाउस का सुपरिन्टेन्डेन्ट नारायणसिंह रहे। इस कार्य में नरेशों, सामन्तों, रईसों आदि का सहयोग प्राप्त करने के लिए उन्होंने "क्षात्र शिक्षा परिषद्" की योजना बनाकर क्षत्रियों के नाम देश भक्ति के विचारों से पूर्ण कर एवं मार्मिक अपील प्रकाशित की।[1] उन्होंने इस अपील को अंग्रेजी सरकार की देशी फौजों की राजपूत रेजिमेन्टों में गोपनीय ढंग से प्रचारित करवाया और उनमें सरकार के विरुद्ध विद्रोह की भावना भरने का प्रयास प्रारम्भ किया।

23 दिसम्बर 1912 को दिल्ली में शाही जुलूस में हाथी की सवारी पर जाते हुए वायसराय लार्ड हार्डिंज पर क्रान्तिकारियों द्वारा बम फेंका गया, जिसमें वह बाल-बाल बच गया। यह माना जाता है कि केसरीसिंह के कनिष्ठ भ्राता जोरावरसिंह ने एक अन्य क्रान्तिकारी बसन्त विश्वास को साथ लेकर बम फेंका था। पूरी छानबीन के बावजूद पुलिस को कोई सूत्र नहीं मिला इस घटना से अंग्रेज शासनाधिकारियों में खलबली मच गई और भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिलने लगी। यद्यपि वायसराय बच गया किन्तु इस सफल कार्यवाही से क्रान्तिकारियों के हौसले बढ़ गये।

अनुमानतः इसी काल में 1909-10 में ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान के लिये सरकार का कानून (आर्म्स ला फॉर इण्डिया) लागू किया। यह कानून परोक्ष रूप में भारतवासियों से शस्त्र आदि रखने की बची खुची आज़ादी छीन लेने का षड्यन्त्र था। केसरीसिंह ने खुले रूप से इसका विरोध किया और राजपूताने के सभी राजाओं को इस कानून को अस्वीकार करने के लिए आग्रह किया। उन्होंने अपने पत्र में लिखा कि इसके द्वारा शस्त्र-स्वतन्त्रता पर लाइसेन्स का अंकुश रखकर परोक्ष रीति 'आर्म्स एक्ट' लागू किया जा रहा है जिसके

---

[1] अपील में क्षत्रियों को अपनी दयनीय स्थिति से अवगत कराते हुए उन्होंने लिखा था

घर जिण धारण पूजती शासन रही निशंक ।
वही आन दासत्व हुई अई विधाता अंक ॥
एरे ! तरुवर तौहिको, महिमा बढ़ी न नूर ।
सब को पावे नहीं, फल ले जात लंगूर ॥
नामर्द ऐसा हो न तू यह योग्य है तुझको नहीं ।
शोभा बढ़ाती क्षत्रि कुल की, है नपुंसकता कहीं ॥

परिणाम राजपूत राज्यो के लिये आत्मघाती होगे और अब तक नाममात्र के लिये बची बचाई कुलदेवी स्वतन्त्रता का सदा के लिये तिलाजलि दे दी जायगी।

सन् 1913 के लगभग यूरोप मे विश्वयुद्ध के बादल मडराने लगे जिसमे विश्व की बडी शक्तियो को उलझने की सभावना थी। जर्मनी से ब्रिटिश सरकार का युद्ध अवश्यभावी लगता था। ऐसी स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से क्रान्तिकारियो ने धन और हथियार एकत्रित करने तथा विद्रोह की तैयारिया अधिक तेज करदी। विभिन्न स्थानो पर देशी फौजो की बगावत के लिये पक्के प्रयास शुरू किये गये। राजपूताना मे इस काय को सम्पन्न करने का दायित्व ठाकुर केसरीसिंह राव गोपालसिंह खरवा, अर्जुनलाल सेठी, कुवर प्रतापसिंह आदि को दिया गया। क्रान्ति की तारीख 21 फरवरी 1914 ई निश्चित की गई। स्वतन्त्रता का घोषणा पत्र तयार किया गया और विद्रोह के स्थान और सगठन निश्चित किये गये और राजपूताना मे विभिन्न छावनियो मे गुप्त रूप से विद्रोह के सगठन का काय शुरू किया गया। इसमे प्रधानत प्रतापसिंह, जोरावरसिंह, सोमदत्त लहरी आदि ने यह काय किया। अग्रेज सरकार को अपने विरुद्ध राजपूताने मे गुप्त राजनैतिक कार्यवाहियो का आभास मिल चुका था और केसरीसिंह के विचारो, प्रचार-प्रसार और सगठन कार्यो को देखकर उन पर पूरा सन्देह हो गया था किन्तु राजपूताने मे उनके प्रभाव और नरेशो एव सामन्तो के साथ उनके प्रिय सम्बन्ध के कारण बिना प्रमाण उनको गिरफ्तार करना कठिन था। स्वय कोटा नरेश तथा राजपूताना के अन्य प्रमुख नरेश एव अन्य सामन्त उनको गिरफ्तार नही करवाना चाहते थे किन्तु अग्रेज सरकार उनकी गतिविधियो से भयभीत थी और उन पर वार करने की ताक मे थी।

भरसक प्रयत्नो के बावजूद क्रान्तिकारियो को धन की कमी महसूस हो रही थी ऐसी स्थिति मे राजपूताना के क्रान्तिकारियो ने दो डकैतियो की योजना बनाई। इस योजना को तयार करने मे विष्णुदत्त का प्रमुख हाथ था। सिद्धात यह माना गया कि राष्ट्रीय हित मे डकती से धन प्राप्त करना अनुचित नही है। क्रान्तिकारियो ने पता लगाया कि जोधपुर रामद्वार के महन्त प्यारेराम और आरा जिले मे निमेज मन्दिर के महन्त भगवानदास ने विपुल सम्पत्ति एकत्रित कर रखी है। धन प्राप्ति के इन प्रयासो मे दोनो महन्तो को जान से हाथ धोना पडा और क्रान्तिकारियो का उद्देश्य भी पूरा नही हुआ। जून 1912 मे जोधपुर रामद्वारे के महन्त प्यारेराम का कोटा लाकर उसमे तिजोरी की चाबिया प्राप्त करने की कोशिश की गई। इस कोशिश मे महन्त की

हो गई और उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। 20 मार्च 1913 को नीमज (आरा) के मंदिर पर छापा मारा गया जिसमें महंत और उसका नौकर मारा गया किन्तु क्रांतिकारी मंदिर की तिजोरी नहीं तोड़ सके और उनको बिना धन प्राप्ति के ही लौटना पड़ा इस कार्यवाही में विष्णुदत्त और जोरावरसिंह के अलावा सेठजी की क्रांतिकारी पाठशाला के विद्यार्थी मोतीचन्द जयचन्द और माणकचन्द आदि शामिल थे।

फरवरी 1914 में जब दिल्ली में सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी अमीरचन्द के मकान की तलाशी ली गई तो पुलिस को उन लोगों की सूची हाथ लगी, जिनको 'लिबर्टी' पेम्फलेट भेजी गई थी। उसमें अर्जुनलाल सेठी का नाम भी था। उनको इन्दौर में गिरफ्तार किया गया। उस समय वे इन्दौर में पाठशाला चलाते थे। उनको पकड़कर दिल्ली लाया गया किन्तु पुलिस को कोई सूत्र हाथ नहीं लगा। किन्तु उसी समय सेठजी की इन्दौर पाठशाला में एक अध्यापक शिवनारायण को बम्बई में पकड़ा गया। यह व्यक्ति पहले जोधपुर में राजपूत चारण वार्डिंग हाउस में दवस्थापक रह चुका था। उसने आरा (निमेज) हत्या काड की सारी जानकारी पुलिस को दे दी। चूंकि सेठीजी के विद्यालय छात्र मोतीचन्द, माणकचन्द और जयचन्द इस काण्ड में सम्मिलित थे इसलिये तलाशी ली गई। उस तलाशी में सांकेतिक भाषा में लिखा हुआ एक पत्र तथा वीर भारत सभा के सदस्यों की सूचि तथा अन्य पत्रादी मिले। जयपुर में रामकरण को गिरफ्तार किया गया। इससे आरा केस की तहकीकात के दौरान लगभग एक वर्ष पुरानी घटना जोधपुर के महंत प्यारराम के रहस्यमय ढंग से लापता हो जाने के मामले को पुनः उठाया गया।

लम्बे अर्से से अंग्रेज सरकार केसरीसिंह की ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों के कारण क्रुद्ध थी किन्तु किसी ठोस प्रमाण के अभाव में वह उनको नहीं पकड़ पा रही थी। महन्त प्यारराम की हत्या का केस बनाकर केसरीसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। उनके साथ ही राजपूताने में कार्यरत सभी क्रांतिकारी अर्जुनलाल सेठी विष्णुदत्त, सोमदत्त, राव गोपालसिंह आदि लोग अलग अलग स्थानों पर गिरफ्तार कर लिये गये। बाद में प्रतापसिंह और ईश्वरदान भी पकड़ लिए गये किन्तु जोरावरसिंह गिरफ्तार नहीं हुए। कार्यवाहियों में शामिल अन्य लोग माणकचन्द मोतीचन्द रामकरण, हीरालाल जालोरी लक्ष्मीलाल आदि भी गिरफ्तार हो गये। आरा केस में शिवनारायण तथा कोटा केस में रामकरण और लक्ष्मीलाल मुखबिर हो गये किन्तु रामकरण ने बाद में स्पेशल जज की अदालत में अपने बयान बदल दिये।

इस बीच अंग्रेज सरकार द्वारा 21 फरवरी के सैनिक विद्रोह एवं सशस्त्र क्रांति की तमाम तैयारियाँ विफल कर दी गई और देश भर में क्रांतिकारियों की धरपकड़ की गई। 31 मार्च को बिना कोई अभियोग लगाये केसरीसिंह शाहपुरा में इन्दौर पुलिस के अधिकारियों द्वारा पकड़ लिये गये। बाद में वे 3 जून को इन्दौर से कोटा लाये गये और कोटा की स्पेशल अदालत में उन पर महन्त प्यारेराम हत्याकांड, राजद्रोह एवं राजनैतिक षडयन्त्र का मुकदमा चलाया गया। यह मुकदमा 23 जून को ब्रिटिश सरकार के सैंट्रल ब्यूरो आफ इंटेलिजेंस, दिल्ली के चीफ सर चार्ल्स क्लीवलैंड की देख रेख में मि. आर्मस्ट्राँग आई. पी. इन्चार्ज प्रोसीक्यूशन, के रूप में मुकदमें में तहकीकात और सहायता के लिये नियुक्त किया गया था। केसरीसिंह के अनुज किशोरसिंह अपने भाई के पक्ष में मुकद्मे की पैरवी के लिये लखनऊ के सुप्रसिद्ध राष्ट्रभक्त बैरिस्टर नवाब हामिद अली खान को लेकर आये। इस पर सर चार्ल्स क्लीव लैंड की सलाह पर 22 जुलाई 1914 को देहली के एडवोकेट रायसाहब मूलचन्द को कोटा दरबार की ओर से प्रोसीक्यूशन कौंसल नियुक्त किया गया। रायसाहब मूलचंद लाहौर-देहली कान्सपिरेसी केस में भी सरकारी वकील थे। ठाकुर केसरीसिंह के खिलाफ इस मुकदमे के कारण सारे राजपूताने में तहलका मच गया। अधिकांश नरेशों और सरदारों की उनके प्रति सहानुभूति थी। स्वयं कोटा महाराव, कोटा दीवान और अन्य अधिकारीगण भी उनके प्रति सहानुभूति रखते थे यह बात अंग्रेज सरकार से छिपी नहीं थी। कोटा केस राजनैतिक दृष्टि से उस काल का अत्यन्त महत्वपूर्ण मामला बन गया। प्रायः भारत के समस्त प्रान्तों के बड़े बड़े अंग्रेज पुलिस अधिकारी कोटा पहुंच गये, कई राज्यों के अंग्रेज पोलिटिकल एजेंट भी कोटा आये। उन दिनों कोटा एक प्रकार से गौरांगों की छावनी बन गया। 'पायोनियर" और टाइम्स आफ इण्डिया" जैसे पत्र ठाकुर केसरीसिंह के विरुद्ध निरन्तर विषवमन करते रहे थे। किन्तु ब्रिटिश सरकार का दबाव बराबर बना रहा। दिनांक 6 अक्टूबर 1914 को ट्रायल जज मुन्शी श्रीराम चौबे द्वारा केसरीसिंह को बीस वर्ष की आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई।[1] सोमदत्त लहरी एवं रामकरण को भी

[1] केन्द्रीय खुफिया विभाग के अधिकारी आर्मस्ट्राँग ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि राजपूताने में राजद्रोह फैलने में दो व्यक्तियों-केसरीसिंह और अर्जुनलाल सेठी का प्रमुख हाथ है। वे शिक्षणिक प्रवृत्तियों की आड़ में नवयुवकों में क्रांतिवादी विचार भरते हैं। इन्होंने राजपूताने से राजनैतिक अपराध कर्म करने के लिये देहली में अमीरचन्द के पास विचारोन्मुख नवयुवक भेजे है। वस्तुतः राजपूताने के क्रांतिकारियों में सबसे प्रमुख केसरीसिंह ही हैं। उस की यह *योजना थी कि देश में जहाँ कहीं राजपूत रेजिमेंट तैनात हैं, वहाँ* जाकर उनमें राजद्रोह के विचार फैलाये जायँ।

आजीवन कारावास तथा हीरालाल को तीन वर्ष कैद की सजा दी गई। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अंग्रेज सरकार केसरीसिंह को राजद्रोह और हिंसा द्वारा सरकार का तख्ता उलटने के मामले में फंसाकर मृत्यु दण्ड देने को आतुर थी किन्तु इसमें उसको सफलता नहीं मिली। बैरिस्टर नवाब हामिद अली खान[1] ने मुकदमे में केसरीसिंह की पैरवी करते हुए उनके व्यक्तित्व और उत्कट देशभक्ति से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने भरी अदालत में दिनांक 2 सितम्बर 1914 को मुल्जिम केसरीसिंह की प्रशंसा में एक नज्म पढ़ी जिसकी पंक्तियां इस प्रकार है —

यह इरशाद अदालत है–उठो तुम बहस को "हामिद
निगाह मुल्जिमों की भी मगर कुछ तुमसे कहती है।
अदब से यह गुजारिश है हुजूर अब गौर से दम भर,
इधर देखें कि लफ्ज खून होकर दिल से बहती है।
लहू का एक दरिया जो न देखा जाएगा हर्गिज,
बहेगा इस जमीं पर खूबियाँ जिस जा पे रहती है।
इसी इजलास में यानि कहूंगा किस्सा मुल्जिम का,
वो मुल्जिम शायरे-यक्ता सखायें जिसको कहती हैं।
वो मुल्जिम उम्र जिसकी देश की खिदमत में गुजरी है,
वो मुल्जिम फानी होकर हड्डियां अब जिसकी कहती है।
वही मुल्जिम बराबर कैद जिसको हिरासत है
बदन में हड्डियां जितनी हैं सब तकलीफें सहती हैं।
वो मुल्जिम केसरी जो जानी दिल से देश का हामी,
वो जिसकी खूबियाँ अखबार का दम भरती रहती है।
बहुत शोहरत सुनी थी आपके इन्साफ की हमने
अदालत गुस्तरी की नदियां हर सिम्त बहती है।
महाराजा के साये में यहीं कायम रहे हामिद
रियासत की भलाई हो दुआयें हम से कहती है।

[1] हामिद अली खान एक अत्यंत प्रभावशाली व्यक्ति तथा लखनऊ के विख्यात बैरिस्टर थे। लंदन में अपने छः वर्ष के निवासकाल में उनकी इंग्लैंड के कई बड़े राजनीतिज्ञों, मंत्रियों और अधिकारियों आदि से अच्छी तरह परिचय रहा। वे वहाँ बड़े राजकीय समारोहों में आमंत्रित किये जाते थे। 21 मई 1883 ई. को भारत के वायसराय लार्ड नार्थब्रुक ने प्रिंस आफ वेल्स [जो बाद में एडवर्ड सप्तम के नाम से ब्रिटिश सम्राट बने] से उनकी भेंट करवाई थी।

ठा केसरीसिंह को न केवल बीस वर्ष कठोर कैद की सजा दी गई, अपितु उनकी हजारों रुपयों की वार्षिक की देवपुरा की सम्पूर्ण पैतृक जागीर और शाहपुरा स्थित उनकी विशाल हवेली और सारी सम्पत्ति भी अंग्रेज सरकार के दबाव के कारण शाहपुरा राजाधिराज द्वारा जब्त करली गई, जिसमें उनका विशाल पुस्तकालय 'कृष्णवाणी विलास' भी शामिल था। इससे उनकी पत्नी और बच्चे साधनहीन बनाकर सड़क पर उतार दिये गये। ऐसे विकट समय में कोटड़ी [कोटा] ठिकाने के साहसी देशभक्त कविराजा दुर्गादान [1] ने अपनी बुआ वीर महिला माणिक्यकुंवर और बच्चों को अपने यहाँ बुला लिया। कुंवर प्रतापसिंह फिर फरार हो गये और क्रान्तिकारियों द्वारा पुनः की जा रही सशस्त्र क्रान्ति की तैयारी में भाग लेने लगे।

ब्रिटिश सरकार सारी कोशिशों के बावजूद क्रान्तिकारियों के समस्त केन्द्र ध्वस्त नहीं कर सकी थी और उनकी कार्यवाहियां बन्द नहीं हुई थीं। ऐसी स्थितियों में केसरीसिंह जैसे प्रभावशाली एवं जनप्रिय व्यक्ति को कोटा जेल में रखना खतरे से खाली नहीं था। उधर ब्रिटिश साम्राज्य के विश्व-युद्ध के दलदल में फंसने के कारण भारत में उसकी स्थिति संकटपूर्ण हो रही थी। इसीलिये उसने केसरीसिंह को कोटा जेल से हटाकर बिहार की हजारीबाग जेल में भिजवा दिया।

केसरीसिंह की पत्नी और बच्चे बेघर हो गये थे। उनका बड़ा लड़का प्रतापसिंह जान हथेली पर लिये वतन की आजादी के लिये दौड़ धूप कर रहा था और वे स्वयं हजारीबाग जेल में एक साधारण बंदी की भांति चक्की पीसने लगे, गंदी जगह, गंदे वस्त्र और गंदा खाना, अपराधियों से भरा चारों ओर का वातावरण और बीस वर्ष कठोर यातना की सजा। किन्तु देशभक्त एवं बलिदानी केसरीसिंह लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए। शाहपुरा में गिरफ्तार

---

[1] कविराजा दुर्गादान ठाकुर केसरीसिंह के स्यालक पुत्र और ईश्वरदान आशिया के बहनोई थे। उन्होंने सदैव केसरीसिंह की राजनैतिक कार्यवाहियों तथा समाज-सुधार के कार्यों में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से साथ दिया। प्राय: सेठीजी और केसरीसिंहजी अपनी गुप्त मंत्रणाएं इनके यहां किया करते थे। बीजोलिया किसान आंदोलन के सूत्रधार क्रांतिकारी विजयसिंह पथिक (भूपसिंह) ने अपना अधिकांश गुप्तवास कोटड़ी में ही किया था। महादेव देसाई, माणिक्यलाल वर्मा तथा अन्य कई देशभक्त कार्यकर्ता इनके यहां कार्यार्थ आते और मेहमान होते थे।

होते ही केसरीसिंह ने प्रतिज्ञा की थी कि अन्न ग्रहण करेंगे तो सिर्फ अपनी पत्नी माणिक [माणिक्यकुंवर] के हाथ का बना हुआ ही[1] । हजारीबाग जेल में जहां उन्हें काल कोठरी [सोलिटरी सेल] में रखा गया था, उन्होंने अन्न लेने से इन्कार कर दिया और फल और दूध की मांग की किन्तु उनकी मांग नहीं मानी गई । अठाईस दिन तक वे निराहार रहे । नाक से नली द्वारा चावल का माड अथवा जो भी वस्तु उनको दी जाती थी उसको वे उल्टी करके वापस बाहर निकाल देते थे । 29 वें दिन अधिकारी उनको दूध देने पर राजी हुए, किन्तु बहुत कम और सात दिन बाद उन्हें फिर अनशन करना पड़ा । वस्तुतः उनको लगभग 18 महीनों तक यह संघर्ष करना पड़ा । अन्त में देशभक्त की तपस्या और साधना के आगे सरकार को झुकना पड़ा । केसरीसिंह ने पांच वर्ष के अपने जेल जीवन के दौरान सिर्फ दूध का ही अपना आहार रखा और अपना दृढ़ संकल्प निभाया ।

उनका जेल जीवन एक तपस्वी का जीवन रहा । शान्त, नियमित और संयमित जीवन किसी प्रकार की निराशा, कुंठा, तनाव अथवा असंतोष नहीं, अपने उद्देश्य और प्रयोजन में अटूट विश्वास और आस्था तथा अपनी तपस्या और साधना की अनिवार्य सफलता के प्रति पूर्ण आशावादिता । उनके आत्मबल संयमित जीवन और सद्व्यवहार ने बंदियों, जेल कर्मचारियों और अधिकारियों सभी को समान रूप से प्रभावित किया । जेल में बंदियों को वे प्रायः अक्षर ज्ञान कराते और उनको सद्जीवन का पाठ पढ़ाते थे । बाद में जब उनसे चक्की पिसवाना बन्द करके जिल्द बन्दी का काम लिया जाने लगा तो उन्हें विभिन्न भाषाओं एवं विषयों के ग्रन्थों के पढ़ने का अवसर भी मिला । बन्दी जीवन में उन्होंने बंगला का बहुत अध्ययन किया और दर्शन, राजनीति एवं साहित्य की अनेकों पुस्तकें पढ़ीं । जेल में ही उनका कतिपय बंगाली क्रांतिकारियों से मिलाप हुआ और वन्देमातरम् के अभिवादन से उनका परिचय बढ़ा । उस समय ठाकुर केसरीसिंह ने बंगाली भाषा में निम्न कविता लिखकर उनको भेजी, जिससे वे बड़े आह्लादित हुए--

मरिमरि की सुन्दर बंग वाणीश्वर,
प्रतिरत्न दीप्तितर, हुरे छ आधार ।
जाचित छि किच्छु खन, मुग्ध करिवार मन ।

---

[1] ठाकुर केसरीसिंह को यह भी भय था कि अंग्रेज अधिकारी उनके आत्मबल को कमजोर करने के लिये भोजन में विषाक्त पदार्थ मिलाकर खिलवा सकते थे ।

काटिते कठिन दिन, भय–कारागार ।।
जानी ना कत की वेशे, जननी पुस्तकपाणि ।
आशिया छ्द्म कारादेशे, भक्तवत्सल वाणी,
दिदृक्षा मायेर मुम, सूची रूपे मम,
माइयेर तरे माई, लहिब "प्रफुल्ल' श्रम ।।

अपने पिता को सजा होने के कुछ समय बाद प्रतापसिंह फरारी जीवन मे जोधपुर के निकट आशानाडा स्टेशन मास्टर द्वारा धोखे से गिरफ्तार करवा दिये गये थे। उनको बरली जेल मे रखकर क्रांतिकारियो का भेद जानने के लिये कई प्रकार की यातनाएं दी जा रही थी किन्तु कोई भी यातना और कोई भी प्रलोभन बाईस वर्ष के उस वीर नवयुवक का मु ह नही खुलवा सके ।

भारत सरकार को यह ज्ञात था कि कु वर प्रतापसिंह बारहठ समस्त क्रांतिकारी दल के सर्वोच्च नेता महाविप्लवी रासबिहारी बोस के सबसे अधिक विश्वस्त सहायक थे। वे उस सम्पूर्ण योजना को जानते थे जो रासबिहारी बोस ने पशावर से लेकर कलकत्ते तक समूचे उत्तर म विप्लव खडा करने के लिए बनाई थी और पेशावर से लेकर कलकत्ते तक की सभी छावनियो म सेनाओ को विद्रोह करने के लिए तयार कर लिया था। अंग्रेज की सत्ता नष्ट हो जाने पर कौन किस प्रदेश को सभालेगा यह भी उस योजना मे निश्चित था।

अस्तु, उन्होंने कु वर प्रतापसिंह को क्रांतिकारी दल की उस योजना को बता देने के लिए सभी प्रकार के लालच दिए, पर वे टस से मस नही हुए। भारत सरकार उनसे जानकारी प्राप्त करने को कितना महत्व देती थी यह तो इसी से सिद्ध होता है कि तत्कालीन डायरेक्टर आफ इंटेलीजेंस, सर आर्चीबाल्ड क्लीवलैंड, देहली से बनारस जेल मे कु वर प्रतापसिंह से बात करने क लिए आया था। अन्त मे उनकी कोमल भावनाओ को जाग्रत करने के लिये उनसे जब कहा गया कि तुम्हारी माता तुम्हारे लिए निरतर अश्रुपात करती रहती है, कु वर प्रतापसिंह ने भारत सरकार के गुप्तचर विभाग के डायरेक्टर को जो उत्तर दिया था वह क्रांतिकारी आन्दोलन के इतिहास म अद्वितीय है। उन्होने कहा था—

"मेरी मा को रोने दो जिससे सकडो माताओ को न रोना पडे। यदि मैंने दल का भेद खोल दिया तो यह मेरी वास्तविक मृत्यु होगी और मेरी माता का अमिट कलक होगा।"

ब्रिटिश अधिकारियों को विश्वास था कि जेल में अपने पिता की भीषण कष्टदायक दशा को देखकर प्रतापसिंह अपना धैर्य और विश्वास खो बैठेगा। कुंअर प्रतापसिंह को एक दिन अपने पिता श्री केसरीसिंह से मिलाने हेतु हजारीबाग जेल लाया गया। केसरीसिंह इस बात को समझ गये। वे बोले, "प्रताप जानता है कि वह केसरीसिंह की संतान है। वह प्राणों के मोह अथवा अन्य किसी प्रलोभन से विश्वासघात नहीं कर सकता है।[1] प्रताप कुछ नहीं बोले मौन साधे रहे और एक दिन (1981 ई) उस अदम्य मौन साधना में ही नृशंस यातनाओं का शिकार होकर वह नवयुवक मातृभूमि की आजादी के लिये कुर्बान हो गया और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह से लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष बाद इसी भूमि के एक और प्रतापसिंह–कुंवर प्रतापसिंह बारहठ–का नाम स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हो गया। केसरीसिंह को अपने पुत्र की इस कुर्बानी का पता जेल से छूटने के बाद ही चला।

उन्हीं दिनों आजीवन कारावास हो जाने के पश्चात् कोटा सेन्ट्रल जेल से सन् 1915 में ठाकुर केसरीसिंह ने अपनी पुत्री चन्द्रमणि (क्रांतिकारी ईश्वरदान की धर्मपत्नी) को जो पत्र लिखा वह उनकी महान् देशभक्ति और उत्कट आत्मबलिदान की भावना का परिचायक है। उन्होंने लिखा था–'भारत में जन्म लेने के साथ ही जो कर्त्तव्य प्रत्येक मानव जीवन के साथ अविच्छिन्न प्राप्त होते हैं, जो ऋण देश की प्रत्येक संतान पर, चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री, सब पर रहता है उसी कर्त्तव्य को पूर्ण करने, उसी ऋण से मुक्त होने में ही हमारा कल्याण है। तुम अवश्य यह जानकर संतुष्ट होओगी कि भारत के एक महत्वपूर्ण प्रदेश में जागृति होने का शुभारम्भ अपने परिवार की महान् आहुति से ही हुआ है। इस राजसूय यज्ञ में हम लोगों की बलि मंगलरूप हुई है।'

हजारीबाग सेन्ट्रल जेल में केसरीसिंह की संयमित, सात्विक एवं तपस्वी जीवनचर्या तथा तेजस्वी व्यक्तित्व एवं उदात्त विचारों से वहां का अंग्रेज जेल सुपरिटेन्डेन्ट कर्नल मीक एवं उसकी पत्नी बहुत प्रभावित हुए और उनके बीच मेल मिलाप बढ़ा। ठाकुर केसरीसिंह के साहित्य, दर्शन और इतिहास आदि के विपुल ज्ञान से लाभ प्राप्त कर कर्नल मीक और उसकी पत्नी उनके साथ विभिन्न विषयों पर चर्चा किया करते थे। श्रीमती मीक ने उनसे संस्कृत भाषा का अध्ययन भी किया। इस ब्रिटिश दम्पत्ति ने केसरीसिंह से मुकदमे

---

[1] फतहसिंह "मानव" के संस्मरण।

के सम्बन्ध में जानकारी भी हासिल की और अपने मामले में वायसराय को अपील करने की सलाह दी। केसरीसिंह को अंग्रेज सरकार से किसी प्रकार की आशा नहीं थी। फिर भी उदारमना जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट के अधिक जोर देने पर केसरीसिंह ने वायसराय के नाम अपील लिख भेजी, जिसको जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट ने अपनी सिफारिश के साथ वायसराय को भिजवाया। उस समय तक प्रथम महायुद्ध समाप्त हो चुका था। मित्र राष्ट्रों की विजय और वार्साई सन्धि के बाद ब्रिटिश सरकार भारत में कुछ नरम रुख अपना रही थी। राजपूताने में क्रान्तिकारी प्रवृत्तियां समाप्त हो गई थीं। अतः केसरीसिंह को लगभग पांच वर्ष कारावास भुगतने के पश्चात् 19 जुलाई 1919 ई. को रिहा कर दिया गया। हजारीबाग जेल से मुक्त होकर जब वे कोटा आये तो यह बात फैली की कोटा रियासत द्वारा उन्हें दुबारा गिरफ्तार कर जेल भेजने का आयोजन किया जा रहा है। इस प्रकार के समाचार पत्रों में प्रकाशित भी हुए। इस पर पं. मदनमोहन मालवीय ने कोटा के दीवान, दीवानबहादुर रघुनाथदास चौबे को पत्र लिख कर सावधान किया कि यदि ठाकुर साहब को दुबारा जेल भेजने की कोई उपक्रम किया गया तो वे स्वयं कोटा आकर सत्याग्रह करेंगे किन्तु रियासत द्वारा इस प्रकार की कोई कार्यवाही नहीं की गई।[1]

जेल से रिहा होकर ठाकुर केसरीसिंह अपनी ससुराल कोटड़ी कविराजा दुर्गादानजी के यहां पहुंचे जहां उनकी पत्नी और बच्चे रहते थे। वे उस समय बहुत कृशकाय हो चुके थे।

1919 ई. के मध्य तक भारत को स्वतन्त्र करने की देश के भीतर एवं विदेशों में की जा रही क्रान्तिकारी कार्यवाहियां असफल हो चुकी थीं। राजपूताने

[1] जब ठाकुर केसरीसिंह हजारीबाग जेल से लौटने पर कोटा जंक्शन पर उतरे तो उनके स्वागतार्थ उपस्थित हुए सुहृदजनों में से किसी के द्वारा यह पूछा गया कि उन्होंने प्रताप की मृत्यु का समाचार कब सुना तो ठाकुर साहब ने धैर्यपूर्वक संक्षिप्त उत्तर दिया—"आपके ही मुख से" और दूसरी बात करने लगे। पुत्र की मृत्यु पर पिता की मानसिक अवस्था क्या हो सकती है यह बताने की आवश्यकता नहीं। पर इस महापुरुष ने अत्यन्त ही धैर्य और साहस के साथ इस दारुण वृत्त को सुना और पी लिया क्योंकि स्वातन्त्र्यसंग्राम रूपी यज्ञ में ठाकुर साहब के सिद्धान्तानुसार प्रताप को एक समिधा के रूप में अपनी आहुति देनी थी और उसने दे भी दी।

का क्रांतिकारी संगठन बिखर चुका था। महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आंदोलन में पदार्पण के साथ ही कई क्रांतिकारी उनकी ओर मुड़ गये थे। केसरीसिंह के जेल से बाहर आने से पहले ही जेल से रिहा होकर अर्जुनलाल सेठी तथा राजपूताना के अन्य कई कार्यकर्ता वर्धा जाकर महात्मा गांधी के आश्रम में काम करने लग गये थे। उस समय अवश्य ही एक अन्य क्रांतिकारी भूपसिंह, जो खरवा ठाकुर गोपालसिंह के साथ थे, ठाकुर साहब की गिरफ्तारी के समय फरार हो गये। वे विजयसिंह पथिक का नाम धारण कर बिजौलिया (मेवाड़) किसान आन्दोलन का संगठन एवं संचालन करते हुए देश में एक नवीन प्रकार के जन आन्दोलन का सूत्रपात कर रहे थे।[1] राव गोपालसिंह ने अजमेर जेल से रिहा होने के बाद राजनीति कार्य से पूरी तरह संन्यास ले लिया था। इधर राजस्थान निवासी सेठ जमनालाल बजाज इस प्रदेश में क्रान्तिकारी राजनीति के स्थान पर गांधीवादी राजनीति के प्रचार प्रसार के लिये चेष्टा कर रहे थे। अधिकांशतः उन्हीं के आमंत्रण पर राजस्थान के कई राजनैतिक कार्यकर्ता वर्धा पहुंच गये थे।

सभी प्रकार के सूत्रों एवं सम्पर्कों के टूट जाने तथा साथियों के बिखराव के कारण केसरीसिंह अकेले पड़ गये। जेल जाने के साथ ही उनका शिक्षा और समाज सुधार का समस्त कार्य भी बिखर गया। प्रदेश के नरेशों एवं श्रीमन्तों सामन्तों के साथ उनका अलगाव हो गया यद्यपि कई देशभक्त नरेशों एवं जागीरदारों की आन्तरिक सहानुभूति उनके साथ बनी रही, जिनमें कोटा महाराव भी प्रमुख थे। एक ओर सोवियत रूस की समाजवादी क्रांति के परिणामों से देश की राजनीति प्रभावित हो रही थी। स्वयं राजपूताना में बिजौलिया किसान आन्दोलन जैसा जन आन्दोलन रूसी क्रान्ति की कई बातों से प्रभावित था। दूसरी ओर गांधीजी के विचार और आदर्श भी जोर मार रहे थे। मौलिक राजनैतिक परिवर्तन आ गया था। ऐसी स्थिति में केसरीसिंह भी गांधीजी और कांग्रेस आन्दोलन की ओर प्रवृत्त हुए।

जेल से रिहा होने के कुछ माह बाद ही ठाकुर केसरीसिंह ने राजपूताने के ए.जी.जी. को जनतंत्रीय भावनाओं से पूर्ण बड़ा विचारोत्तेजक पत्र लिखा। उन्होंने लिखा कि राजपूताने की रियासतों का संघ बनाकर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की

[1] ईश्वरदान आशिया भी रिहा होकर उस समय बिजौलिया पहुंच गये थे और अपने पिता के मित्र के पुत्र और ठिकाने के तत्कालीन मैनेजर डूंगरसिंह भाटी के यहां रहकर विजयसिंह पथिक की सहायता करते थे।

पद्धति पर राजपूताने में दो सदनों वाले संघीय शासन की स्थापना की जानी चाहिये। राजाओं को अपनी शासन पद्धति में परिवर्तन करना चाहिये। यदि ऐसा नहीं किया गया तो "आप जाकर नरेशों के लिये पश्चातापमयी स्मृति रह जायगी। प्रजा आज केवल पैसा ढालने की प्यारी मशीन है और शासन उन पैसों को उठा लेने का यंत्र। यदि प्रजा को अधिकार देने में देरी की गई तो उसके भयंकर परिणाम होंगे। अग्नि को चादर से ढकना भ्रम है, खेल है या छल है।"

इन्हीं दिनों अर्जुनलाल सेठी का पत्र मिला जिसमें उनको सपरिवार वर्धा आने का निमंत्रण था। जैसा कि ऊपर कहा गया है देशभक्त सेठ जमनालाल बजाज ने जो मूलतः राजस्थान के शेखावाटी प्रदेश के चारणों की जागीर के गांव काशी का बास के निवासी थे कुछ अर्से पूर्व क्रांतिकारी अर्जुनलाल को वर्धा बुलाया था। सेठीजी की प्रेरणा से सेठजी ने केसरीसिंह को भी सपरिवार वर्धा बुला लिया। उनकी पुत्री चन्द्रमणि और जामाता ईश्वरदान भी उनके साथ रहे। उस समय वर्धा में राजस्थान के कई अन्य देशभक्त कार्यकर्ता सर्वश्री रामनारायण चौधरी, सागरमल गोपा, मुकुन्दराम जाट, कन्हैयालाल कलयत्री आदि भी वहां मौजूद थे। विजयसिंह पथिक भी बाद में वहां पहुंच गये। वहां से 'राजस्थान केसरी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हुआ, जिसमें देशी राज्यों और प्रधानतः राजस्थान से सम्बन्धित समाचार, विचार आदि छपते थे। प्रारम्भ में सेठीजी और केसरीसिंहजी इस पत्रिका में लिखते रहे। विजयसिंह पथिक इस पत्र के सम्पादक और ईश्वरदान आशिया और रामनारायण चौधरी कुछ समय तक इस पत्र के सहसम्पादक रहे।

जब ठाकुर केसरीसिंह वर्धा पहुंचे तो इस खबर से वर्धा में बड़ी हलचल मची। ठाकुर परिवार के इस क्रान्तिकारी के सम्बन्ध में वहां पहिले से ही कई प्रकार की कहानियां चलती थीं। वर्धा पहुंचने पर उनका [illegible] राजाओं का सा स्वागत किया गया।[1] वर्धा रहते हुए ठाकुर [illegible] 1920 के सितम्बर माह में कलकत्ता कांग्रेस के विशेष [illegible], एवं मध्य भारत की ओर से देशी राज्य प्रतिनिधि के [illegible] किया। कलकत्ता से लौटने के बाद वे पाइल्स की बीमारी से [illegible]। उसी समय वर्धा से उन्होंने दिनांक 16 नवम्बर 1920 [illegible] के मनोनविद

[1] उन दिनों वर्धा से प्रकाशित "[illegible]" केसरीसिंह के क्रांतिकारी जीवन [illegible] की गई। उनको राजपूताने [illegible]।

श्री वी जे पटेल को पत्र लिखा। भावी संविधान में देशी राज्यों के प्रति निर्धारित संबन्ध में सुझाव के लिये एक उपसमिति गठित की गई थी। केसरीसिंह ने अपने पत्र में राजपूताना, मध्य भारत एवं अजमेर को शामिल करते हुए इस प्रदेश का राजस्थान नाम देने तथा देहली को पंजाब में शामिल करने का सुझाव दिया। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में राजपूताना एवं मध्यभारत के प्रत्येक देशी राज्य की ओर से कम से कम एक-एक प्रतिनिधि लिया जाय। दिसम्बर, 1920 के ऐतिहासिक नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में रियासती प्रजा को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में प्रतिनिधित्व देने की दृष्टि से कांग्रेस के विधान में मौलिक संशोधन किया गया तथा सम्पूर्ण हिन्दुस्थान की आजादी हासिल करना कांग्रेस का ध्येय घोषित किया गया।

1920 में महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असहयोग एवं खिलाफत आन्दोलन छेड़ दिया। इस आन्दोलन का ठाकुर केसरीसिंह ने पूरा पक्ष लिया। उस समय उन्होंने राजा प्रजा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा–'भारत के स्वतन्त्र होने पर देशी राज्यों की प्रजा की वही स्थिति होगी जो अन्य प्रान्तों की होगी। देशी नरेशों के भाग्य का फैसला निज के आचरण के आधार पर है। यदि वे स्वार्थ त्याग करके, प्रजा का प्रेम और विश्वास प्राप्त कर लेंगे तो प्रजा उनको कभी नहीं छोड़ेगी और यदि वे स्वार्थवश विदेशी नौकरशाही का अनुसरण कर प्रजा को दबाने में शक्ति लगायेंगे तो जो दशा नौकरशाही की होगी वही उनके लिये अनिवार्य है। भारतीय जनशक्ति के अतिरिक्त भारत में अन्य कोई समर्थ नहीं।"

वर्धा आश्रम में कुछ माह रहने के बाद 1922 में केसरीसिंह सपरिवार कोटा लौट आये। सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त हो जाने के कारण ठाकुर साहब के पास न तो रहने के लिये मकान था और न आजीविका का कोई साधन। कोटा महाराव का इनके प्रति मैत्रीभाव पूर्ववत रहा। ठाकुर साहब का निवास-स्थान कोटा के तालाब के विस्तार हेतु अधिग्रहित कर लिया गया था। महाराव ने कुछ वर्षों बाद इसके एवज में नये भवन का निर्माण कर दिया जिसका नामकरण उनकी धर्मपत्नी के नाम पर माणिक्य भवन किया गया। वह उनकी धर्मपत्नी के स्वर्गवास के चार वर्ष बाद 1931 ई में बनकर तैयार हुआ। फिर भी आजीविका का कोई निश्चित साधन नहीं होने से उनका आगामी जीवन निरन्तर आर्थिक संकट से ग्रस्त रहा। उनके साथ सहानुभूति रखने वाले कतिपय नरेशों में सीतामऊ के महाराजा रामसिंह प्रमुख थे।

1921 के नवम्बर माह मे "राजपूताना मध्य भारत सभा" की ओर से श्री चादकरण शारदा न ठाकुर केसरीसिंह को अजमेर आने के लिये आमंत्रित किया। पत्र म शारदा ने लिखा कि "आप पूज्य है, कर्मवीर है और प्रतिष्ठा के पात्र है। मै आपको अपना पूज्य नेता मानता हू। आप जब भी चाहे अजमेर आवें आपके लिये निवास का प्रब ध कर देंग।"

केसरीसिंह अब अधिकतर अस्वस्थ रहने लगे। नवीन राजनतिक वातावरण उनकी प्रकृति और कार्यपद्धति के अनुकूल नही था। नवीन राजनीति म व्याप्त वैयक्तिक प्रतिस्पर्द्धा, वैमनस्य और गुटबन्दी से वे खिन्न रहे। धीरे धीरे वे सक्रिय राजनतिक काय से अलग होते गय, यद्यपि चारणो एव राजपूतो मे समाज सुधार का काय यथा शक्ति करते रह। फिर भी कुछ वर्षो तक राजपूताने क प्रमुख राजनतिक एव सावजनिक कार्यकर्ताओ से उनका सम्पर्क बना रहा। 1923-24 मे राजपूताने मे कार्यरत काग्रेसजनो मे पारस्परिक वमनस्य और द्वेषभाव बहुत बढ गय प्रधानत सेठ जमनालाल बजाज, अर्जुन लाल सेठी, विजयसिंह पथिक आदि के बीच कार्यपद्धति की बातो को लेकर भारी मतभेद पदा हो गये और कलह का वातावरण बन गया, जिमसे स्वय गांधीजी का हस्तक्षेप करना पडा। उस समय राजपूताना के कई काग्रेसजनो द्वारा जमनालाल बजाज के प्रति विरोधी भावनायें प्रदर्शित करने के लिये अर्जुनलाल सेठी को दोषी ठहराया गया। इसके सम्बन्ध मे केसरीसिंहजी और सेठीजी तथा गाधीजी और केसरीसिंहजी क बीच पत्र व्यवहार हुआ। इस विषय मे कानपुर अधिवेशन के सबध मे केसरीसिहजी के पत्र के उत्तर मे गाधीजी ने अपने 6 3-1925 के पत्र मे लिखा – "ऐसी इच्छा थी कि "यग इडिया" में कुछ न कुछ लिखू। अब सोचता हू लिखने से कोई लाभ नही है। किसी ने ऐसा माना ही नही था कि सब प्रतिनिधि सेठीजी के वश मे हैं और दोषित हैं।" इसी समय सेठीजी ने ठाकुर साहब को लिखे गय एक पत्र मे जो विचार व्यक्त किय वे अत्यत मार्मिक एव भावोत्तेजक होते हुए उनकी बेजोड मैत्री और अटूट पारस्परिक विश्वास के भी प्रतीक है। सेठीजी ने इस विषय में अपना दिनाक 25 5-1924 का पत्र केसरीसिहजी को "हृदय मंदिर के पूज्यदेव" सम्बोधित करते हुए लिखा था। दिनाक 28 5 1924 के पत्र मे सेठीजी ने लिखा–"आप दास सेठी को जो भी आज्ञा देगे वह मनसा, वाचा, कर्मणा शिरोधार्य होगी। यदि आप मुझे दोषी ठहरायेंगे तो देहात प्रायश्चित तक भी सहर्ष मजूर करूगा।[1]

1 यह पत्र राजस्थान मध्य भारत तथा अजमेर मेरवाड़ा(प्रांतीय) काग्रेस कार्यालय से भेजा गया था पत्र के ऊपर एक ओर "वदे मातरम्" तथा दुसरी ओर "अल्ला हो अकबर" छपे हुए थे। ये पत्र ग्र थ में प्रकाशित किये जा रहे हैं।

ठाकुर केसरीसिंह ने यद्यपि सक्रिय राजनतिक काय छोड दिया था और वे शिक्षा प्रसार तथा समाज-सुधार का काय किया करते थे किन्तु वैचारिक धरातल पर वे सदैव उग्र ब्रिटिश विरोधी तथा भारत की स्वतंत्रता और जनतंत्रीय व्यवस्था के हिमायती रहे। जो कोई भी उनके सम्पक में आता, वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था। यही कारण था कि ब्रिटिश सरकार हमेशा उनसे आशंकित रहती थी। 1929 ई में जब वायसराय का जोधपुर आगमन का कायक्रम बना उस समय ठाकुर केसरीसिंह जोधपुर में थे। एक दिन (28 जुलाई) रात्रि को जोधपुर के पुलिस इंस्पेक्टर ने आकर उनसे कहा कि वायसराय मारवाड की यात्रा के लिये आ रहे हैं और राज्य कौंसिल के वाइस प्रेसीडेन्ट कनल विन्डम नहीं चाहते कि इस अवसर पर आप जोधपुर में रहें। जोधपुर महाराजा भी यही चाहते हैं कि वे जोधपुर से बाहर चले जायें। इस पर केसरीसिंह कोटा चल आये। किन्तु 29 जुलाई के 'तरुण राजस्थान' में जब यह समाचार प्रकाशित हुए कि वायसराय की जोधपुर यात्रा के कायक्रम के कारण केसरीसिंहजी की भूतकाल की राजनैतिक कायवाहियों की वजह से अवांछनीय व्यक्ति मानकर राज्य शासन द्वारा उनको जोधपुर से निष्कासित कर दिया गया है तो केसरीसिंह ने इस आदेश का तीव्र विरोध करते हुए जोधपुर स्टेट कौंसिल के वाइस प्रेसिडेण्ट को पत्र लिखा और उसकी वधानिकता को चुनौती दी।

सन् 1927 में ठाकुर साहब की जीवन संगिनी माणिक्य कुंवर का निधन हो गया। अमर शहीद प्रताप की कुर्बानी के बाद उनको यह दूसरा असह्य आघात लगा। मातृभूमि के लिये प्राणोत्सग करने वाले वीर प्रताप की जननी इस वीरांगना ने अपने पति और पुत्र की ही भांति त्याग और आत्मोत्सग से पूण जीवन बिताया और सदव साहस, धय और निर्भयता के साथ ठाकुर साहब का साथ दिया। ऐसी दिव्यात्मा का वियोग उनके लिये निश्चय ही असह्य सिद्ध हुआ। उनका मन उचट गया। और जीवन के प्रति विमुख होने लगे। इस विछोह का उनके मन एवं मस्तिष्क पर हुआ प्रभाव उनके जीवन के शेष चौदह वर्षों तक बराबर बना रहा। वे जीवन से अधिकाधिक हटने लगे और उनका अन्तर्मन बढता गया। उन्होंने दो बार एकान्तवास किया। पहिले सन् 1934 में रामगढ के पहाडों में रहे और बाद में उन्होंने 1937 में कोटा के समीप चबल नदी के किनारे स्थित मौज बाबा की गुफा में लगभग 6 माह तक एकान्तवास किया।

वस्तुत ठाकुर केसरीसिंह 1934 में जीवन से सन्यास ही लेना चाहते थे किन्तु घर की स्थिति और पुत्र तथा अन्य सगे सबंधियो के आग्रह पर उन्होंने एकान्तवास ही किया। किन्तु विधि की विडम्बना कुछ और ही थी। उनको शेष जीवन में शांति मिलने वाली नही थी। 1938 में उनके अनुज किशोर सिंह चल बसे। इसी समय उनके पुत्र रणजीत सिंह को टी बी हो गई, जिससे वे अत्यन्त दुखी हो गये। इधर 1937 म प्रा नो मे जन प्रतिनिधि सरकारें बनने के बाद भी फरारी जीवन बिता रहे अपने अनुज क्रांतिकारी जोरावरसिंह के विरुद्ध चारा केस उठवाने के लिये वे बिहार के प्रधानमंत्री कृष्णसिंह और गृहमंत्री अनुग्रह नारायणसिंह से पत्र व्यवहार कर रहे थे। 1939 म जोरावरसिंह के विरुद्ध उक्त केस उठा लिया गया किन्तु विधि की विडम्बना ! कि मुक्ति के आदेश समाचार पत्रो मे प्रकाशित होने के दिन ही पच्चीस वर्षों से फरारी जीवन बिता रहे उस वीर पुरुष का छोटा में अचानक ही निधन हो गया। ठाकुर साहब के दु ख का पारावार नही रहा।

1933 ई मे इन्दौर मे महात्मा गाधी की अध्यक्षता मे आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन में ठाकुर केसरीसिंह सम्मिलित हुए थे। मच पर महाराज होल्कर भी उपस्थित थे। जब उन्होंने केसरीसिंहजी को देखा तो ससम्मान बुलाकर उनसे बातचीत की। इन्दौर के दीवान सर सिरहमल बाफना, और करोड़पति सेठ सर हुक्मचन्द तथा सम्मेलन म भाग लेने वाले अन्य कई गणमान्य व्यक्ति उनसे आदर पूर्वक मिले।[1]

1940 ई मे ठाकुर केसरीसिंह 69 वर्ष के हो गये थे। उनकी इच्छा हुई कि वे अपने जीवन के अन्तिम दिन गांधीजी के आश्रम म बितावें। जब 1940 ई के अन्त मे महात्मा गाधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ करने की

---

1 सुप्रसिद्ध इतिहासकार स्व डा मथुरालाल शर्मा ने अपने सस्मरणा ने लिखा हैं—"मैने इन्दौर मे देखा कि पुरुषोत्तम दास टडन ने मिलते ही उनका आलिंगन किया। प गेंदालाल दीक्षित और अजीतसिंहजी वहाँ उनसे रात्रि मे मिला करते थे। दोनों ही बडे सक्रिय क्रांतिकारी थे। अजीतसिंह जी को बाद मे फांसी हुई और गेंदालालजी अज्ञात स्थान पर मरे। वे सर ओंकारसिंह पलायथा (ठा केसरीसिंह के मित्र) के पुत्रो के टयूटर थे। इनके स्थान पर ही मेरी नियुक्ति हुई थी।" —श्री सवाईसिंह धमोरा द्वारा सम्पादित— "पुण्य स्मरण राजस्थान केसरी ठाकुर केसरीसिंह बारहठ।"

घोषणा की तो केसरीसिंह ने सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लेने और सेवाग्राम आश्रम में बापू के सान्निध्य में निवास करने की इच्छा प्रकट करते हुए दिनांक 7 दिसम्बर 1940 को रामनारायण चौधरी को एक पत्र लिखा—"मेरी इन सत्तर वर्ष की बूढ़ी हड्डियों में स्वदेश के लिए शान्त आहुति देने का अभी बल है प्रबल इच्छा भी है।" जब चौधरीजी ने यह बात गांधीजी को बताई तो उन्होंने कहा "केसरीसिंहजी आवेंगे तो मुझे खुशी होगी। उनके उत्कृष्ट जेल जीवन का जिक्र मुझसे सर तेजबहादुर सप्रू ने किया था। मगर यहां के दैनिक जीवन का पालन तो सभी के लिए आवश्यक है।' चौधरीजी ने जब इसके संबंध में ठाकुर साहब को लिखा तो उन्होंने आश्रम के नियमों का पालन करना स्वीकार करते हुए उत्तर भेजा।

केसरीसिंह 1914 के सैनिक विद्रोह के संगठक और क्रांतिकारी रहे थे और सेवाग्राम आश्रम में अहिंसा का पालन अनिवार्य था। उत्तर देते हुए ठाकुर साहब ने अपने 22 दिसम्बर के पत्र में लिखा था "मैं अहिंसा को मानव धर्म का सर्वोपरि अंग समझता हूं क्योंकि हिंसा पाशविक वृत्ति है। आततायी पर अबला की रक्षा में कदाचित हाथ उठाने का प्रयोग अपरिहार्य हो तो भी हिंसक का हाथ तोड़ कर तुरन्त उसकी सुश्रुषा में उतना ही प्रेमपूर्वक लग सकता हूं जितना कि अपने प्रिय बंधु के लिए। कह नहीं सकता कि यह अहिंसा श्री बापू की अहिंसा की सीमा में आयेगी या नहीं'। उन्होंने यह भी लिखा कि "हजारी बाग जेल में अंग्रेज डाक्टर ने उन पर मनमाना जुल्म किया तब भी उनके मनमें अंग्रेज जाति के प्रति द्वेष भाव उत्पन्न नहीं हुआ। अब तो वे उस क्रांतिवाद को अव्यवहार्य मानते हैं और अहिंसा के निर्मल और खुले मार्ग को श्रेष्ठ मानते है।" किन्तु विधि की कुछ और ही इच्छा थी। इससे पूर्व कि सेवाग्राम आश्रम के लिये रवाना होते वे अस्वस्थ हो गये और 14 अगस्त 1941 को इस महान् आत्मा की जीवनलीला समाप्त हो गई।

केसरीसिंहजी का कद ठिगना था। उनका व्यक्तित्व भव्य, सरल और प्रभावी था। सफेद खादी की धोती, कुर्ता और साफा, पगड़ी उनका पहनावा था। वे हाथ में छड़ी रखते थे। लम्बी लम्बी और ऊंची चढ़ी हुई सफेद और ऊर्ध्वमुखी उनकी मूंछ थी। वे सदैव इसी सादा और साधारण पोशाक में रहते थे और हर जगह राजदरबार जलसा सभाओं समारोहों आदि में इसी पोशाक में जाते थे। उनकी बातों से निर्भयता, गरिमा विवेक, शालीनता और देश प्रेम टपकते थे और भारत के विभिन्न प्रान्तों के, देशभक्तों, क्रांतिकारियों तथा मनीषियों में उनका बड़ा सम्मान था।

ठाकुर साहब की बडी विशेषता थी उनमे स्वाभिमान की भावना। यद्यपि उनका उत्तरार्ध जीवन अर्थाभाव व गरीबी मे बीता लेकिन उनके मिजाज मे दीनता के भाव कभी नही आये। उनका कहना था कि "यद्यपि मेरा वतमान पूरा अन्धकारमय है परन्तु इस ओर किसी का आख उठाकर देखने की आवश्यकता नही।" कोटा महाराव के आदर पात्र होने पर भी यदा-कदा अभावास्था होने पर भी उनके किसी वचन अथवा व्यवहार स किसी को इस अभाव की प्रतीति नही होती थी। वे तो मानते थे कि "सुख और दु ख के लड्डू हर मनुष्य के जीवन की थाली मे परोसे हुए हैं, जिन्हे खाना ही पडता है।" कई अवसरो पर वे कहते थे "इस शरीर ने सोने की कडिया भी पहनी और लोहे की भी-पर केसरीसिंह वही था।"

इस सदी के प्रथम दशक म स्वदेशी परिधान पहनकर केसरीसिंह जी कोटा के राजकीय क्लब म जाते और "वन्दे मातरम्" अभिवादन करत थे। इनका स्वदेश के रग मे ओतप्रोत देखकर एक अग्रेज भडक उठा और बोला "ठाकुर साहब! टुम हमेशा वन्दे माटरम् कहटा है लेकिन पिटा को क्या भूल गया?" उन्होने उत्तर दिया कि मेरे लिये मातृभूमि ही सब कुछ है। और उसे अपने शब्द वापिस लेने को कहा। बहस म अग्रेज ने जब अनुचित शब्दो का प्रयोग किया तो तनातनी बढ गई और अ त मे उक्त अग्रेज को माफी मागनी पडी।

उनकी दूसरी विशेषता थी उनका उच्च चरित्र, नतिकता और कतव्य-परायणता। उनका चरित्र निष्कलक रहा। भयकर से भयकर कठिनाइयो और अभावो म भी किसी भी प्रकार का प्रलोभन उनको आकर्षित नही कर सका। वे ऐशो आराम की जिन्दगी से सदव नफरत करत रहे। नरेशो और जागीरदारो की विलासिता, आडम्बर, खुशामद, फिजूल- खर्ची और भ्रष्ट जीवन तथा अग्रेजो के प्रति दास-भावना को देखकर वे दुखी रहे और वे सदव ताडना देते रहे।[1]

---

1 उनकी काव्य रचनाएँ कतव्यच्युत स्वार्थी और अनुत्तरदायी नरेशो, साम ता आदि को दी गई ताडना, उलाहना, भत्सना आदि से भरी हुई है। राजाओ के जीवन पर व्यग करते हुए उन्होने लिखा —

जीवण अहलो जाय, सहन, शिकार सलाम म।
माटी मौज उडाय, परजा बिलखं पट ने॥

तत्कालीन जयपुर महाराजा को, जो अग्रेजा की भक्ति म अत्यधिक उत्साह दिखा रहे थे सम्बोधित करत हुए उन्होने कहा-

सिमिट ढाल की ओट मे, अपनो करत बचाव।
भीति, चतुरता कुछ कहो, कच्छप सहज स्वभाव॥

इसी भाति जब मेवाड के महाराज कुमार भूपाल सिंह अपने पिता महाराणा फतहसिंह के विरुद्ध अग्रेजो के वशीभूत होकर काय करन लगे तो केसरीसिंह ने महाराज कुमार को उलाहना एव चेतावनी देते हुए काव्य मय पत्र प्रेषित किया।

वे स्पष्ट वक्ता थे तथा उनकी कथनी और करनी में कभी अन्तर नहीं रहा। जो वे कहते थे और जो करते थे उसको स्वीकार करते थे। उच्च चरित्र, स्पष्टवादिता और कर्तव्यपरायणता के कारण ही उनका समस्त परिवार उनकी पत्नी, पुत्र और भाई सभी साहस और निष्ठा के साथ उनके मार्ग पर चले। मानव जीवन में ऐसे उदाहरण विरले ही मिलते हैं। माणिक जैसी पत्नी, प्रताप जैसे पुत्र और जोरावर जैसे भ्राता प्राप्त करने का सद्भाग्य ऐसे महापुरुष को ही मिल सकता है। उनके दृढ़ और आदर्श चरित्र के कारण ही नरेशों, श्रीमन्तों, जागीरदारों और यहां तक कि अंग्रेज अधिकारियों में भी ऐसे व्यक्ति थे जो उनके विचारों के विरोधी होते हुए भी उनके प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे और उनसे मिलने की इच्छा रखते थे। राजद्रोह और कत्ल के अभियोग वाले कोटा मुकदमे के दौरान अन्य कई शुभचिन्तकों ने उनको क्रांतिकारी सिद्धान्तों को अस्वीकार करके सजा के संकट से निकालने के लिये प्रेरित किया किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उस समय में कोटा महाराव को उनके द्वारा लिखी गई ये पंक्तियाँ आदर्श के लिये मर मिटने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिये स्मरणीय रहेंगी "मैंने अपने आप गंगा का प्रादुर्भाव किया और स्वयं उसकी पवित्र धारा में बह चला। जो बह चला, वह रुक नहीं सकता और न रुकने के लिये ही बहा।"

ठाकुर केसरीसिंह के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी उनकी अनुपम देशभक्ति। वस्तुतः वे राजपूत एवं क्षत्रिय जाति की उस अद्वितीय परम्परा के प्रतिनिधि थे जो स्वतंत्रता के लिये मर मिटने की शिक्षा देती है। जब से उन्होंने होश संभाला वे देश को विदेशी दासता से मुक्त कराने की आकांक्षा रखने लगे। जिस राजपूत जाति की वीरता, शौर्य और साहस की गाथाओं से भारत का इतिहास भरा पड़ा है, उसी जाति के लोगों पर अंग्रेज जाति के लोगों का हुक्म चलाते हुए, उनको दबाते हुए और उनका अपमान करते हुए देखकर वे छटपटाते थे एवं तिलमिलाते थे। इस वीर जाति की पतनावस्था से वे अत्यन्त पीड़ित रहते थे और किसी भांति उसको पुनर्जाग्रत कर और उसको दासता की भावना से मुक्त कर उसमें शक्ति का शंख फूंकना चाहते थे ताकि वह एकबार फिर देश की स्वतंत्रता के लिये रणक्षेत्र में कूद पड़े। उनकी रग-रग में देशभक्ति की भावना भरी हुई थी और उन्होंने अपने जीवन का एक मात्र प्रयोजन देश की स्वतंत्रता के लिये कार्य करना बनाया।[2] यही कारण है कि उनके सभी प्रकार के कार्यों

2 ठा. केसरीसिंह के देशभक्ति और स्वतंत्रता के विचार सीमित एवं संकीर्ण न होकर सम्पूर्ण मानवजाति को दासता, शोषण और अपमान से मुक्ति दिलाने की व्यापक भावनाओं से ओतप्रोत थे। यही कारण है कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका एवं ईथोपिया आदि के सम्बन्ध में वहाँ के निवासियों पर विदेशी यूरोपियनों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाते हुए कवितायें लिखीं।

धम – प्रचार, समाज – सुधार, शिक्षा– प्रसार और जातीय समठन आदि के माध्यम स वे एक ही उद्देश्य की प्राप्ति का लक्ष्य रखते थे – राष्ट्राभिमान और दशभक्ति की भावनाओं का प्रसार। व कहा करते थे, "धन, जन, शक्ति, वुद्धि, विद्या आदि सवस्व ही स्वजाति और स्वदश के लिये होना चाहिये। जिसमे स्वजातीय सत्याभिमान नही, स्वदेश-भक्ति नही, वह मानवीय कीट सहस्रो धिक्कार का पात्र है।' यह ज्ञातव्य है कि ठाकुर साहब के राजनीतिक जीवन पर सर्वाधिक प्रभाव इटली के राष्ट्रोद्धारक मजिनी के चरित्र का पड़ा, तत्कालीन क्रान्तिकारियो पर मजिनी की जीवनी का व्यापक प्रभाव पडा था। इस जीवनी पर ब्रिटिश शासन ने प्रतिबन्ध लगा रखा था। ठाकुर साहब ने वीर सावरकर द्वारा मराठी म अनूदित मजिनी की जीवनी का अनुवाद हिन्दी मे किया, जिसे कोटा केस स सबधित तलाशी के समय शाहपुरा के समीप ही वही जगलो म भूमिसात करना पडा।

ठाकुर केसरीसिंह की एक अन्य विशेषता थी– खुला मस्तिष्क और स्वतन्त्र विचार। सादा और साधारण जीवन जीते हुए उन्होंने सदैव निरन्तर बदलती हुई परिस्थितियो को देखा, परखा और हमेशा आगे देखा। राजपूताने के सामती बन्धनो से जकडे तत्कालीन समाज स बाहर निकलने वाले शायद केसरीसिंह अकेले ही व्यक्ति होगे जिन्होंने न केवल पर्दा प्रथा, टीका प्रथा, बहु विवाह, दास-प्रथा बाल विवाह मृत्यु भोज, आदि कई प्रकार की सामाजिक कुरीतियो एव रूढियो को मिटाने के लिय जबरदस्त काय किया अपितु ब्रिटिश दासता के साथ साथ सामती एव राजतन्त्रीय कुशासन की समाप्ति एव लोकतन्त्रीय शासन की स्थापना का पक्ष लिया। वे कहा करते थे कि अब समय बदल गया है। पहिले यथा राजा तथा प्रजा का सिद्धात चलता था, अब यथा प्रजा तथा राजा का जमाना है।[1] विचारो का विकास उनमे क्रमिक रूप से होता रहा। उन्होंने जीवन पर्यन्त अपने दिमाग के कपाट खुले रखे और नये नये विचारो की स्वच्छ वायु उसमे प्रवेश करती रही। यही कारण है कि प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के बाद देश म फलने वाले जनतन्त्रीय एव समानतावादी विचारो का प्रभाव उन

1 समय पलटता जेज नह जठे प्रजा भुभलाय,
घर धूजण की वस चले, पल मे महल ढहाय॥
रूस चीन जरमन तुरक आदि हुते पतसाह।
वे सिंघासण कित गया, सो चीज नरनाह॥
आछा कामा ऊघमो, धणिया निज धन रास।
यह तो नडा मावणा, महल मजूरा वास॥
(ठाकुर केसरीसिंह रचित)

पर भी पड़ा और उनका विश्वास हो गया कि राजनैतिक सत्ता जनता के हाथों में दिये बिना किसी भी प्रकार की प्रगति अथवा सुधार सम्भव नहीं है। सैनिक जाति के लोगों को जाग्रत एवं संगठित कर उनके बल पर देश को स्वतन्त्र करने का विचार अव्यवहार्य मानकर उन्होंने जनशक्ति और जन संगठन के विचारों को अपनाया। महात्मा गांधी की कई बातों से मतभेद रखते हुए भी गांधीजी ने देश में जन चेतना पैदा करके जनशक्ति का जो भाव फूंका उससे वे अत्यधिक प्रभावित हुए। उनकी अन्तिम इच्छा रही कि वे गांधीजी के व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन में शामिल हों। आत्मोत्सर्ग और प्राणार्पण की यह ऐतिहासिक शौर्य भावना उनमें अंतिम समय तक जीवित रही, जो उनको वृद्धावस्था में अस्वस्थता के कारण घर पर मर जाने के बनिस्पत रणक्षेत्र में अर्थात् गुलामी के विरुद्ध चल रहे जनसंघर्ष में प्राणोत्सर्ग करने के लिये प्रेरित करती रही। राजपूत जाति की शौर्य भावना इतिहास प्रसिद्ध है, जिसके अनुसार रणक्षेत्र में लड़ते हुए मृत्यु को प्राप्त होना जीवन की सबसे बड़ी सिद्धि मानी जाती थी।[1] हिंसा, अहिंसा के बारे में उनके विचार स्पष्ट थे। वे अहिंसा को श्रेष्ठ मानते थे किन्तु वे हिंसा का मुकाबला करने में आवश्यक हिंसा के प्रयोग के विरुद्ध नहीं थे। किसी भी प्रकार की कायर भावना के वे घोर विरोधी रहे तथा जन जन में वीर भावना के प्रसार पर जोर देते रहे। वे अन्तिम समय तक कहते रहे– 'जिस जाति या देश में वीरपूजा न हो वह मृतप्राय है।' जीवन के अंतिम दिनों में ठाकुर केसरीसिंह ने जो पत्र लिखे हैं, उनसे उनके उदार साम्प्रदायिक सद्भाव एवं समन्वय, समानता और एकता की राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत विचार प्रकट होते हैं। दिसम्बर 1940 में श्री शिवसिंह चोयल को भेजे एक पत्र में उन्होंने लिखा–"ब्राह्मण और क्षत्रियों का यह स्वार्थजन्य धौंस का जमाना चला गया। अब तो वास्तव में संसार के आधारस्तम्भ सच्चे अन्नदाता कृषिकार है, उनका जमाना आ रहा है। वर्ण विभाग तो आप नष्ट हो ही चुका।' एक अन्य पत्र में उन्होंने लिखा– 'सद्विचार वही है जिसमें आग्रह न हो और रूढ़ि के अंधेरे से ऊपर उठकर खुली आंख का प्रयोग करने की शक्ति रखता हो। माईजी का हिन्दू होते हुए भी इस्लाम पीर की शिष्या होना स्वाभाविक है। इस्लाम में कौन से महात्मा नहीं होते और खासकर उस समय जबकि दोनों धर्मों में समन्वय और शांति सिंचन की लहर चल रही थी। अज्ञानी रूढ़ि को ही धर्म मान बैठता है।' वे समाज में नारी के साथ हो रहे भेदभाव, अन्याय और अत्याचार को

1 द्वाविमौ पुरुषौ राजन्, सूर्यमण्डल भेदिनौ।
परिव्राड् योग युक्तौ च, रणेश्चाभिमुखे हत॥

समाज मे व्याप्त बुराइयो और पतित प्रवृत्तिया का कारण मानते थे। उन्होने सामंती समाज की नारी की दास एव गोली -प्रथा का सर्दैव विरोध किया। वे समाज को पूर्णत सुसंस्कृत, सम्पन्न एव उन्नतिशील बनाने के लिये सभी दबावो एव हीन स्थितिया मे मुक्त तथा पुरुष के बराबर अधिकार एव उत्तरदायित्व से पूर्ण नारी-जीवन आवश्यक मानते थे।

ठाकुर केसरीसिंह बारहठ का व्यक्तित्व अनेक विशिष्ट गुणो से समलंकृत था। व बहु भाषाविद् और अनेक विषयो के प्रकाड पंडित थे। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, डिंगल, पिंगल, ब्रज बंगला, मराठी और गुजराती जसी भारतीय भाषाओं के विद्वान थे और अंग्रेजी का उन्होने सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया था। संस्कृत, डिंगल, पिंगल, ब्रज, बंगला में तो व उत्कृष्ठ कवि भी थे। विशुद्ध बंग भाषा में रचित उनके काव्य को देखकर बंगवासी साहित्यकार उनकी प्रतिभा पर अत्यधिक मुग्ध थे। हजारी बाग जेल से अपने बंगला क्रांतिकारी साथी को पुस्तक-प्रेषण के निवदन के बहाने प्रेषित सांकेतिक संदेश उनके बंगला भाषा पर पूर्ण अधिकार का परिचायक है।

अपने गुरू गोपीनाथ के सान्निध्य और मामा कविराजा श्यामलदास दधिवाडिया तथा पिता कृष्णसिंहजी के संरक्षण म रहते हुए उन्होने भूगोल, खगोल, ज्योतिष, संगीत, काव्य, व्याकरण, धम और दर्शनादि अनेक विषयों और इतिहास का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। वे काव्य-शास्त्र के ममज्ञ विद्वान थे। मम्मट, दण्डी, जगन्नाथ, रस गंगाधर, विश्वनाथ आदि का उनका इतना गहन ज्ञान था मानो आखो देखी घटनाओ का ही वे वर्णन कर रहे हो। दर्शन मे उनकी विशेष अभिरुचि थी। सांख्य और योग के वे विशेषज्ञ माने जाते थे। बौद्ध-दर्शन और इतिहास का भी उन्हे पूर्ण ज्ञान था। अश्वघोष[1] कृत 'बुद्ध-चरित' का अत्युत्तम हिन्दी अनुवाद (1935 ई) संस्कृत भाषा मे

1 महाकवि अश्वघोष संस्कृत के मुख्य महाकवि हैं। वे संस्कृत के प्राचीनतम महाकवियो मे गिने जाते हैं। अश्वघोष का समय ईसा की पहली या दूसरी शताब्दी माना जाता है। ये मूलत अयोध्या के निवासी थे। कहते हैं कि इनकी कविता तथा व्याख्यान इतने मधुर और आकर्षक होते थे कि हिनहिनाता घोडा भी चुप होकर उन्हे सुनने लगता था। "अश्वघोष" नाम का भी यही कारण बतलाया जाता है। कालिदास के अनेकपद्य अश्वघोष के पद्यो के बिल्कुल निकट जान पडते है।

उनके प्रखर पाडित्य का परिचायक है। इटली के उद्धारक महान क्रान्तिकारी मजिनी के जीवन चरित का भी उन्होंने मराठी से हिन्दी मे अनुवाद किया था।

प्राचीन लिपियो का भी उन्होंने सम्यक् ज्ञान अर्जित किया था। रामगढ पहाड पर अपने तपस्या की अवधि म वहा स्थित मन्दिर से 8वीं शती के शिला लेख की अनुकृति और मन्दिर के शिल्पादि से सम्बन्धित तैयार किया गया वृत्त जो उन्होंने सुप्रसिद्ध इतिहासकार स्व डा मथुरालाल शर्मा को दिया था, प्राचीन लिपि के ज्ञान म उनकी क्षमता क साथ-साथ पुरातत्व म उनकी गहरी पैठ को सूचित करता है।

उनके पत्र-व्यवहार से सबन्धित पजिका (रजिस्टर) म महाराजा रामेश्वरसिंहजी गिद्धौड, राव बरखाकान्त साहिडी दीवान फरीदकोट और अपने अनुज श्री किशोरसिंह बार्हस्पत्य जोधपुर को लिखे गये उद्धरणो मे प्रयुक्त सांकेतिक लिपि से हम जानकारी मिलती है कि उसमे अपने क्रान्तिकारी साथियो के साथ उनके पत्रो का आदान-प्रदान होता था जो उनके सदेशो की गोपनीयता क लिए आवश्यक था।

वे अपनी ही शली के मार्मिक सुलेखक थे और प्रभावोत्पादक वाक्पटुता के धनी थे, पर साथ ही वे "पुराणमित्येव न साधु सवम्" के पक्षधर भी थे। उनके गद्य की भाषा अत्यन्त सरल और प्राजल है। उसे किसी शली के आधार की आवश्यकता नही थी। वह उनके निराले ही व्यक्तित्व की निराली अभिव्यक्ति है। उनक लेखो म भाव गाभीर्य और विचार परिपक्वता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। सरस, सारयुक्त वाक्य-रचना, शब्द-सक्षेप, विचार-सयम सहज सौन्दर्य-मडित वाणी और सूक्ति-सुधा द्वारा सिंचित मुहावरेदार भाषा-यह सभी गुण न जाने किसी अनिर्वचनीय कला से उनके पत्रो में छलकते हुए अनुभव किय जा सकते हैं।

ठाकुर साहब के काव्य क प्रत्येक शब्द में विदेशी सत्ता के प्रति विप्लव की क्रान्ति की ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही है। सरल, सुबोध पर सशक्त वीर रस से परिपूर्ण प्रभावशाली शब्दो से सुगठित बारहठजी की कविता ने अनेक चमत्कारो का जन्म दिया है। आग्लसत्ता द्वारा दिल्ली में आयोजित दरबार में उपस्थित होकर अपने पुरुखाओं द्वारा ली गई आण और अर्जित गौरव तथा रहे- सहे क्षात्रत्व पर लगत कलक से महाराणा फतहसिंह को बचाने वाल नावक के तीर के समान मर्मभेदी गभीर घाव करने वाले बारहठजी के सोरठा 'चेतावणी रा चूगटया' ने तो राजपूताने की तत्कालीन घटनाओं और राजनतिक स्थितियो पर भारी प्रभाव डाला था।

बारहठजी क्षत्रियों की शक्तिशून्य भुजाओं में, उनके हृदयों में पुनः शक्ति-पीठ की स्थापना करना चाहते थे। उनकी अधिकांश काव्य-रचनायें स्वधर्म, क्षत्रिय वीरों की दुर्दशा, चाबुक-स्पर्श, क्षात्रधर्म आदि यही संदेश देती हैं। उदबोधन, राजा-प्रजा संवाद, रजपूताणी नारी-गौरव, मन्य-गान, भारत-दुर्दशा, राजाओं का कर्तव्य, नीति बोधक दोहे आदि कई काव्य रचनायें न केवल अंग्रेज कूटनीति एवं दुःशासन के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान करती हैं अपितु नवीन राजनैतिक एवं सामाजिक मूल्यों तथा जनतंत्रीय विचारों का संदेश देती हैं। महात्मा गांधी, लाला लाजपतराय, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राव गोपालसिंह खरवा, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी आदि राष्ट्रकर्मियों के संबंध में लिखी गई उनकी कवितायें उनकी व्यापक देश-भक्ति और राष्ट्र-भावना की परिचायक हैं। अपनी त्यागमूर्ति पत्नी माणि से संबंधित उनकी रचनायें अत्यंत मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी हैं। दक्षिणी अफ्रीका, ईथोपिया के मुक्ति-संघर्षों पर लिखी गई कवितायें उनकी अंतराष्ट्रीय मानवता तथा मानव मात्र को शोषण और दासता से मुक्ति दिलाने की उनकी भावनाएं प्रकट करती हैं।

अपनी आत्मजा के आग्रह पर पणिहारी राग में निबद्ध "राजा-प्रजा संवाद" राजनीति के गूढ़ सिद्धांतों का निरूपण करने वाली रचना है। इसमें राजाओं में निहित ईश्वर-प्रदत्त शक्ति (Divine right of kings) सिद्धान्त से लेकर साम्यवाद तक के नवीन सिद्धान्तों की विवेचना, नागरिक अधिकारों की मांग का समर्थन तथा मूढ़ राजाओं के दम्भ की भर्त्सना अत्यंत ही मार्मिक शब्दों में खुलकर की गई है। जाग्रत जनता का मस्तक सदा अजेय शक्ति से ऊपर उठा हुआ प्रतीत होता है—और हीनकर्मा परम्परापंथी राजाओं का तर्क हृदय और बुद्धि को प्रभावित नहीं करता। इस स्पष्टांकित के साथ कवि स्पष्टतः भविष्यवाणी करता दिखाई देता है कि राज्य की प्रभुसत्ता प्रजा में ही निहित है, प्रजा का उत्पीड़न करके राजाओं का अस्तित्व कदापि स्थायी नहीं रह सकता।

ब्रजभाषा में विरचित काव्य 'कुसुमांजलि" उनकी प्रखर प्रतिभा, चतुर-वाक्चातुरीधुरीणता और भाषा पर आश्चर्यजनक अधिकार का सूचक है। काव्य में निहित शब्द विन्यास द्वयार्थक शक्ति से सम्पन्न है। प्रत्यक्ष में वह ब्रिटिश सत्ता का प्रशस्ति-काव्य प्रतीत होता है पर प्रच्छन्न रूप में तत्कालीन ब्रिटिश

सरकार के दुष्कृत्यो के प्रति रोष और घृणा का ही स्पष्ट दर्शन है । ब्रज भाषा मे ही रचित उनके कृष्ण-भक्ति सबधी पद लालित्य एव माधुर्य मे सराबोर है ।

लम्बी कविताओं को छोडकर ठाकुर साहब की अधिकाश रचनाए लघुकाय और मुक्तक ही हैं । उनकी प्रत्येक कविता म, चाहे वह भक्ति विषयक ही क्यो न हो, हम परतन्त्र भारत को विदेशी दासता से मुक्त कराने और फिर स पूर्ण शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र के रूप मे उसकी स्थापना की भावना ॥ परिपूर्ण पाते हैं । कवि की इस लालसा के दर्शन हम उनके पत्रो के वामशीर्ष भाग पर मुद्रित मानोग्राम मे भी दिखाई देते हैं जिसम धनधान्य की समृद्धि का सूचक हरितवर्णी शस्यश्यामला भारतभूमि का मानचित्र, राष्ट्र क मस्तक को सदा उन्नत बनाये रखने और शक्ति समन्वित बनाये रखने के प्रतीक रूप म शक्ति-सूचक त्रिशूल, तथा स्वतन्त्रता की रक्षा और क्षमता के प्रतीक रूप दोनो पार्श्वों से मानचित्र को आवृत किये दो खड्ग और मानचित्र के नीचे देश की आधार-शिला कर्मयोग प्रधान गीता के मूल मत्र कर्म और धर्म के सूचक सूक्त 'यतो धर्मस्ततोजय " का अकन किया गया है । श्रद्धेय स्व बारहठ जी की समग्र विचारधारा का सार यह मोनोग्राम है ।

भारत के क्रांतिकारी जनतन्त्रीय आदोलन के इतिहास म स्व ठाकुर केसरीसिंह बारहठ का नाम सदैव अकित रहेगा । ठाकुर साहब बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे । वे उत्कृष्ट कोटि के बुद्धिजीवी, विचारक, लेखक और कवि थे तो साथ ही वे क्रांतिकारी विचारो के अद्भुत वक्ता, प्रचारक और सगठक थे । सामन्ती समाज व्यवस्था के जीवन-मूल्यो म पलकर भी स्वदेश तथा पीडित और शोषित मानव की भलाई और प्रगति क लिये सामती जीवन-मूल्यो के विरुद्ध सघर्ष करने तथा जनत त्रीय मूल्यो को प्रस्थापित करने के लिये अपना जीवन होम देने का ठाकुर केसरीसिंह बारहठ का अनूठा उदाहरण है । निस्सदेह ही सामाजिक कुरीतियो और बुराईयो के विरुद्ध जूझने वाले समाज सुधारक, देश की स्वतन्त्रता के सघर्ष म अपना सर्वस्व होम करने वाल महान् क्रान्तिकारी तथा समाज म भेदभावविहीन समन्वयवादी जनतन्त्रीय विचारो के प्रसारक के रूप मे वे सदैव चिरस्मरणीय रहेगे । विगत चालीस वर्षों के दौरान, प्रमुखत देश को स्वतन्त्रता मिलने और महात्मा गाधी के दिवगत हो जाने के बाद देश का राजनैतिक आकाश स्वदेश के लिये तपस्या, त्याग और बलिदान के स्थान पर स्वार्थपरता, अनैतिकता और भ्रष्टाचार तथा उदारता, सादगी, सरलता और विनम्रता के स्थान पर आडम्बर, अहकार, ऐशोआराम, सकीर्णता और

भेदभाव की प्रवृत्तियों के काले बादलों में आच्छन्न हो गया है। वे सभी व्यक्तित्व और मूल्य पृष्ठभूमि में चले गये हैं जो राष्ट्रीय एकता, स्वतन्त्रता और समता तथा देश के जनतन्त्रीय और सार्वजनिक विकास की दृष्टि से आदर्श प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि देश के राजनैतिक आकाश से इन काले बादलों के छटते ही देश में केसरीसिंह बारहठ जैसे व्यक्तित्व और उनके आदर्श पुनः समाज और राष्ट्र के लिए प्रेरणा के प्रकाश-स्तम्भ बन कर अपनी रोशनी फैलायेंगे।

डॉ देवीलाल पालीवाल
डॉ ब्रजमोहन जावलिया
फतहसिंह 'मानव'



क्रांतिकारी केसरीसिंह बारहठ और उनका परिवार

१. काव्य-सृजन

* हिन्दी
* राजस्थानी

हिन्दी काव्य

ईश-भक्ति-पद

(१)

भाव अनन्त, अनन्त प्रकाशक, छबि तोरी गिरिधारी।
यह घनश्याम मुरति अति सोहे, द्युति अम्बर अनुकारी।
मोतिन माल अनेक तरल युत, चरणन लगि बिस्तारी ॥१॥
कंधा चिबुक खचित शुभ हीरक, रवि विराट निज धारी।
भ्रमत असंख्य सूर महासूर जु, रवि-मंडल बहु भारी ॥२॥
कमल वश गहि जग जनि मूलक, अनहद शब्द उचारी।
रक्षन हेत धरयो गिरि छत्रसु त्रिविध ताप दुख टारी ॥३॥
बेणी भयद भुजग काल सी, जात वस्तु सहारी।
तव स्वरूप को पार न पावै, देव ऋषि बलिहारी ॥४॥

(२)

हरि तुम जिय की जानन हार।
त्रिविध ताप प्रज्वलित जगत मे तोउ न मिटत अँधियार।
श्याम मुरति यह एकहि समरथ, करन अटल उजियार ॥१॥
बिन आधार बह्यो चली आऊं, प्रकृति तरगनि धार।
अब तो चरन शरन गहि तेरी चाहे डुबो चाहे तार ॥२॥
अजहूँ ना सुधि तुमने लीन्ही, का मैं करयो बिगार ?
मैं अति दीन, दीनबधु तुम, क्या न करो उद्धार ? ॥३॥
कहत बने दुख वाही के ढिग, जो अनजान विचार।
तुम तो हो घट-घट के साखी, (ता) काहे बनू लबार ? ॥४॥

(३)

भक्ति के भूखे है नंदलाल ।
अति ही मधुर सुदामा के तंदुल, अरु केले की छाल ।
रुचि रुचि शाक विदुर घर खावे, तजि दुर्योधन थाल ॥१॥
चेतन घन द्रुपदा के टरत, भय चीर रूप तत्काल ।
त्रिभुवन पति सारथि बनि बैठे, हो अर्जुन की ढाल ॥२॥
जिनके चरन दरस हित तलफत, शिव ब्रह्मा सुरपाल ।
उनको हँसि हँसि नाच नचावत, दै ताली ब्रजबाल ॥३॥
ज्ञान ध्यान जप जोग न जानूं, मंद बुद्धि मैं दभाल ।
दीनबंधु हँसि हृदय लगालो, काटि कर्म जंजाल ॥४॥

(४)

मन तू किहिं के लोभ भुलाना ।
यह संसार असार समुद्र है, तिहिं तल जाय डुबाना ।
काम-क्रोध मद-मोह लोभ फँसि, क्यों नाहक पछिताना ॥१॥
मात-पिता दारा-सुत मंडल, भार अनर्थ बनाना ।
जाको तू अपनो करि मानत छिन में होत बिराना ॥२॥
पंचभूत तें निरमित काया, तिहिं में तू अपनाना ।
फँसि अज्ञान जान नहीं तत्वन, मुग्ध भ्रम बीच भुलाना ॥३॥
श्री गुरु चरन-सरन गहै क्यों ना, मिटहहिं आना-जाना ।
पतित उधारन व भव-तारन, हैं समर्थ विधि नाना ॥४॥

(५)

मन भूल क्यों ना बीत गई सो बात ।
जे बहु नाच नचेन जग में वह अँधियारी रात ।
अब तो समय भया जागन का प्यारे ! भया प्रभात ॥१॥
रोवत हंसत सम के उनको, पसे मातरु तात ।
यह तो हुतो स्वप्न द्वै छिन को, काहे सोच करात ॥२॥
अब तू तहाँ बिच तू परयो, मानत पिर निज गात ।
गजर प्रणव-ध्वनि होत मधुर स्वर, मोहे माहि जगात ॥३॥
मोहि रह्यो मुग्ध जिन तें मंद तू, वे भाग मनि नाथ ।
क्यों दयाल मंदिर मांहि दिठाइ, मंद मंद मुस्कात ॥४॥

(६)

दुनिया बहु विधि त हम दीठी ।
झूठी कही, हजारन हाँ की, कबहुँ साँच नई फीठी ॥१॥
कबहुँ भये महलन के डासी भूमि चरन नहिं मीठी ।
पट पसत कहुँ कामन पहुँच, बनि के गुपन वसीठी[1] ॥२॥
कबहुँक तन म भसम रमाई, कहुँ मभलाई पीठी ।
हरल चढे कहुँ हाथिन हौदे, कबहुँ चरण घसीठी ॥३॥
ओढ़ दुमाले शीत गँवायो, कबहुँ लगाय अँगीठी ।
कबहुँ कई दिन लघन की ह कहुँ भाजन विधि मीठी ॥४॥

(७)

लखन बिन राम अकेलो आज ।
जाके सँग सूने तृण पल्लव, बनि जात सुख साज ।
बाके बिन काटा-सो लागत, सुरपुर को भी राज ॥१॥
एक शक्ति दो हृदय बिँधाये, सध्यो शत्रु को काज ।
हा ! प्रिय बधु ! सुख-दुख सगी, रह्यो न राखन लाज ॥२॥
छूटी अवध गये पितु-दर्शन, दिय सिय विरहा-दाज ।
सब आघात सह धरि धीरज, पै गिरी असह यह गाज ॥३॥

(८)

देखेरी मैंने निबल के बल राम ।
धन जन से जो कबहु बनत नहिं, सारत वे सब काम ॥१॥
वे इक सत्य प्रेम क भूखे, जानत हिय की तमाम ।
एकहि बेर टेर सुनि दीनन, तजि दौरत निज धाम ॥२॥
वे निज प्रिय को कबहु न भूलत, क्या न होउ विधिवाम ।
नहचो राख भरोसो साँचा, साँचो दीनबंधु को नाम ॥३॥

---

1 गुप्तदूत

(६)

भज मन राधा-कृष्ण पीछे पछिताओगे[1] ।
युगल छवि की सरन गहे तें आवागमन मिटाओगे ।
वे भवसागर तारन हारे नाम लेत तरि जाओगे ॥१॥
बालपनो खेलन में बीत्यो धन जोबन मद छाओगे ।
फेर बुढापो जब सिर चढि है धरि मृग-तृष्णा धाओगे ॥२॥
ममता जाल फँसावन हारो वाको संग न माहोगे ।
यह काया कछु काम न ऐहैं आखिर ऊठि सिधावोगे ॥३॥
आनंद पूर प्रेम पद पहा, चरनन ध्यान लगावोगे ।
जन्म कृतारथ यह व्है जहैं, उनके जो गुन गावोगे ॥४॥
बाट विकट निकट नही घर है, बिच ही में लुटि जाओगे ।
दीन हीन को एक आसरो मारग में न घुमाओगे ॥५॥

---

1 सूरदास कृत पद की यह स्थाई ठाकुर साहब की मातुश्री (विमाता) को बहुत प्रिय थी पर पूरा पद उन्हें स्मरण नहीं था। अतः मां के कहने पर उन्होंने सरल भाषा में यह पद बनाकर दिया ।

□

कवित्त

(१)

गौरव वितेक गहै धाय धन सम्पत्ति को,
गुनत कितेक निज विद्या-बल भारी को ।।
कत कहै बलिष्ट इष्ट देह ही सें नेह बाधे,
सतत अराध कत संतति सुखारी को ।
यौवन के छाके बाके लिपट मदा के छल,
कते अनि अच्छरा सी चाहत सुनारी को ।।
मैं तो हू निकाम नाम मात्र नर देह धारी,
आसरो गह्यो है एक श्याम गिरिधारी को ।।१।।
(2 8 1899)

(२)

पारे सम प्रीत हार न्यारे दिलदार यारे ।
बाकी अदावारे मोर-पख शिर धारे हैं ।
भाल पै बिथारे तारे डारे गलमाल जाल,
लली वृषभानु की के आखिन के तारे हैं ।।
भार से सवारे केस मोतिन की पारे माग ।
हाथ लिये गेंद खेलें अजब खिलारे हैं ।
नद के दुलारे सारे ब्रज के रुखारे आज,
कारे रग वारे मेरे आंगन पधारे हैं ।।२।।

(३)

आनन्द उमग गिरिजा के हिय मे न माई,
प्रेम सरसाई किधो नवोनिधि पाई है ।
सुख लहराई ही दिखाई देत नन्दपुरी,
आशा भई पूरन जनाई चित चाई है ।
कवर कन्हाई आज प्रकटे जु नन्दघर,
नन्दपुरी साँची इन्द्रपुरी ज्यों लखाई है ।
छटा अधिकाई वसु पाई ज्यो लुटाई जान,
धाई धाई आई आज बटत बधाई है ।।३।।

(४)

लोक-पथ-दर्शक सुभव्य था चरित तेरा,
यद्यपि कन्हैया ! तने लिये रूप नाना हैं।
राज-सत्ता लोभवश रचती कुचक्र जब,
न्याय सत्य शांति का न रहता ठिकाना है।
अपने बिगाने का भी भेदभाव हेय मान,
नवीन निर्माण नाश ही से पहिचाना है।
एहो ! क्रांति-धारा के धुरीण ! धर्म हेतु धारा,
वही अति प्यारा हमें सारथी का बाना है ॥४॥

(५)

गोधन चराना मनमोहक बजाना कभी
गिरि को उठाना त्रस्त व्रज का बचाना है।
रास का रचाना ग्वाल ललना रिझाना कभी,
कंस को पछाड़ कर स्वर्ग पहुंचाना है।
नाना रूप अद्भुत तुम्हारे रहे दीनानाथ,
चीर बढ़ा द्रौपदी की लाज रखवाना है।
मोहन ! हम तो तेरा सेवाभाव-मयी भव्य,
वही पूर्ण प्यारा दिव्य सारथी का बाना है ॥५॥

---

1 उपर्युक्त तीनों कवित्त अजमेर से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र "क्षात्रधर्म" के सम्पादक श्री नारायणसिंहजी भाटी के अनुरोध पर "कृष्ण जयन्ति" के अवसर पर ठाकुर साहब ने बनाकर भेजे थे। (दिनांक 26-7-1938)

शक्ति-वंदना

जय जय भवानी ! अम्बिके !! करनी !!! तुम्हारी शरण हम ।
बहुत सोय गाढ-निद्रा (अब) चाहत जागरण हम ।
स्वातन्त्र्य की तू महासागर, तेरे हि हो निर्झरण हम ॥ जय ॥
क्षात्रबल का उद्धरण मा ! तेने किया, अनुसरण हम ।
परमार्थ में बलिदान अपना, कर सिखादे मरण हम ॥ जय ॥
संतान सच्चे अभय हो, तेरे हि तारण-तरणि हम ॥
सामर्थ्य दे मा ! कर सकें, यह सिद्ध चारण वरण हम ॥ जय ॥
वाहन तुम्हारा "केहरी" वर मांगता अशरण शरण ।
ओ असुरमर्दिनि ! चंडिके !! भूलें न तेरे चरण हम ॥ जय ॥

(15-3-1937)

घनाक्षरी

महाभारत का प्राकृतिक नीति-पाठ

धर्म[1] छलि-छद्म न छिपाय छली छोनें छानि,
द्रोन[2] भरि भीष्म[3] भेदें स्वारथ की सिद्धि हेत ।
बनें धृतराष्ट्र[4] अंध[5], दुर्योधन[6] शक्ति गहि,
करण[7] के सहारे दुःशासन[8] निभाये नेत ।
शल्य[9] हो हिय में उठें तवें पंचशक्ति[10] मिलि
अल्पहु[11] युधिष्ठिर[12] है भीम[13] बलतें उपेत ।
अर्जुन[14] नकुल[15] सहदेव[16] भाव[17] मोहन[18] लै,
पावैं जय भारत[19] या प्राकृत को पाठ देत ॥

(वसंत पंचमी, वि. सं. १९८८)

1 धर्म—युधिष्ठिर
2 द्रोणाचार्य—अपना पात्र
3 भीष्म—भयंकर व्यक्तियों को
4 धृतराष्ट्र—राष्ट्र को दबा बैठने वाला
5 अंध—मदांध
6 दुर्योधन—दुर्जेय
7 करण—थाना, दूतों, रिपोर्टों
8 दुःशासन—घृणित शासन
9 शल्य—हृदय का कांटा
10 पांडव—जन-शक्ति
11 कम होते हुए भी
12 युधिष्ठिर—युद्ध में डटे रहना
13 भीम—भयंकर
14 अर्जुन—नष्ट हुई वस्तु को फिर से प्राप्त करने वाला
15 नकुल—कुलीनता की खेंचातानी से रहित
16 सहदेव—एकता सहयोग
17 भाव—सिद्धांत
18 श्रीकृष्ण—प्रातःस्मरणीय मोहनदास गांधी
19 जय भारत—महाभारत ग्रंथ

उक्त छंद द्वयर्थक है–

प्रथम अर्थ–

छली कौरवों ने छलछद्म से धर्मराज युधिष्ठिर को ठग कर गुप्त षडयंत्र द्वारा उनका राज्य भी छीन लिया। द्रोणाचार्य और भीष्म जैसे गुरुजन भी अपने स्वार्थ-साधन में लगे हैं। धृतराष्ट्र अंधे बने रहे और दुर्योधन ने समस्त शक्ति (अधिकार) अपने हाथ में ले लिये। कर्ण और दु शासन जैसे सहयोगियों के बल पर उसने उसका संचालन किया। शल्य जैसे व्यक्ति भी मध्य में उठ खड़े हुए। ऐसी स्थिति में संख्या में स्वल्प होते हुए भी युधिष्ठिर, बलवान भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव–इन पांचों महारथियों ने संगठित होकर भगवान कृष्ण के निर्देशन में महाभारत के युद्ध में विजय प्राप्त की। महाभारत के अध्ययन से यह स्पष्ट है।

द्वितीय अर्थ-

छल-छद्म से प्रपंच द्वारा ठगों ने हमारे राज्य और हमारे धन का हरण कर लिया। स्वार्थ पूर्ति में रत भयंकर व्यक्ति अपना पात्र भरकर हम लोगों में फूट डाल रहे हैं। राष्ट्र को दबाने वाले मदांध बने बैठे हैं। दुर्जेय शक्ति को सहज ही में प्राप्त करके गुप्तचरों के सहारे वे किसी तरह अपने घृणित प्रशासन को निभा रहे हैं। हमारी पांचजन्य (जन प्रतिनिधियों की शक्ति) शक्ति जब संगठित हो उठी है तो उनके हृदय में कांटे चुभने लगे हैं। स्वतन्त्रता संग्राम में स्थिर रहने वाले व्यक्ति संख्या में स्वल्प होते हुए भी वे अतुल बल के धनी हैं। उनमें गत वस्तु को पुनः प्राप्त करने की भावना और क्षमता है। वे कुलीन अकुलीन की भावना से मुक्त तथा पारस्परिक सहयोग से युक्त हैं। महात्मा (मोहनदास-कर्मचन्द) गांधी की मन्त्रणा और निर्देशन में भारत विजय-श्री प्राप्त करे- यही महाभारत का स्वाभाविक पाठ है।

नीति के दोहे

जड़ शरीर के स्वार्थ में, जग बन रहा विभोर,
उलट पुलटत देर नहिं, आज और कल और ॥ 1 ॥

तुच्छ देह सुख क्षणिक में, उलझ रहा संसार
पलट रहा पल पलहि में, आज द्वेष कल प्यार ॥ 2 ॥

गुन गाता थकता नहीं, सभा प्रेम का साज
मिलती गंदी गालियाँ, उस ही मुख से आज ॥ 3 ॥

जाति रक्त अरु धर्म का, नहिं कुछ भी संबंध ।
प्रेम नाम से काम वश बढ़ी उलझनें अंध ॥ 4 ॥

प्रेम दुहेरा पालियतु महामहिम बड़भाग ।
सर्वमंगला मम शिव, करत विश्व अनुराग ॥ 5 ॥

सत्य प्रेम दुर्लभ जगत, सब सनेह का खेल ।
खल[2] सिवाय फिर क्या बचे, कढ़त तिलां स तेल ॥6 ॥

तरु मुरझाय पत्र तें, प्रगट करत निज प्यास ।
दें न देहिं जल मेघ तऊ, छाया का दृढ़ आश ॥ 7 ॥

सज्जन रचहु नेह चमन, जीवन सुरा निबहन्त ।
ज्यों लघु छज्ज छांट में, भव्य सु मौन रहन्त ॥ 8 ॥

---

1 चिकनाई, चिकनी चुपड़ी

2 खलि, दुष्टता

गुण-पराग सुख अनुभवत, प्रिय पद-पंज निवास ।
यातें प्रभु यह मन भ्रमर दुसह लखान प्रवास ।। 9 ।।

सेवा साधन चित चहत, जदपि दास गुन हीन ।
ज्यूं अनरू[1] को दिनमणी, कहा सारथी कौन ।।10 ।।

चुंबक मणि तोरे चरन, मो मन लोह समान ।
रात दिवस ऐंचत रहहिं, जदपि होहिं बिलगान ।। 11 ।।

यातें अपनो धर्म लखि, जिह्वा सफल मनात ।
पै तव गुण की अधिकता, कहत कहत रहिजात ।। 12 ।।

धर्म कर्म की ओट धरि, निज हित जगत बनात ।
केवल इक पालन करत, बिन स्वारथ व्रजनाथ ।। 13 ।।

पिंजर की गति जिनहीं लखे, हिय को कठ न आय ।
जब ही हिय हियतें जुर, तब सबही समझाय ।। 14 ।।

दिल दिमाग स्मृति शून्य व्है, निज जीवन भी मूक ।
फिर भी मूरख शख सम, बाजत हैं पर फूंक ।। 15 ।।

पूर्ण-ब्रह्म के बिन नहीं, कोऊ जग निर्दोष ।
सज्जन परगुण गान कर, पावत मन संतोष ।। 16 ।।

---

1 सूर्य के रथ का सारथि, अरूण

मुंदर तन को छोड़कर, धावहिं ढूंढन जात ।
वे मक्खी से नीच नर, निदक चुगल कहात ॥ 17 ॥

गुण देखें भी चुप रहे, दभी श्रर अप्रतीभ ।
वह अपराधी ईश को जथा मिनी तिहिं जीभ ॥ 18 ॥

सब ही या ससार की, सेवा करत अमोल ।
निज समान नहिं दूसरो, यही हृदय दृढ कोल ॥ 19 ॥

जग अनेक सरवर भरे सवकी तृषा बुझाय ।
मेघ बूंद की आश पैं चातक प्यासो जाय ॥ 20 ॥

कहा कहो कहत न बन, कही भठ सब होय ।
मूक रहन यातें भलो, हिय की हिय म जाय ॥ 21 ॥

मानव मुख गाली वदत, निज खलता दिखलात ।
गदी नाली गटर की, फिर भी भली मनात ॥ 22 ॥

स्वांगि जाति हित बनि चढ यहि सवन को धम ।
अपना नहि स्वामी यह, समभत विरल मम ॥ 23 ॥

सात्विक ग्रोर सुपात्र म दिया दान जग माहि ।
कम्नीय कान्चन कहुया, वहो अमर रहि जाहि ॥ 24 ॥

सुख मे सुख को ढालिवो, है साधारण खेल।
प विरल ही करि सकें, यो अनाथ की बेल ॥25॥

शुद्ध नीति निरमल चरित, क्षमा सत्य थिर तन्त्र।
अमद अलोभ उदारता (यह) वशीकरण को मन्त्र ॥26॥

दण्ड सुतहि दे देत, जननी अखिया जल भरत।
पुनि उठाय उर लेत, है बलिहारी प्रेम की ॥27॥

धन लूटो रूठो धणी, छूटो घर सुख सप।
बन टूटो तन वृद्ध-वय, क्यो न हुए मन कप ॥28॥

टके बिना अटके रहें टके टक के जार।
बनिय पति बनिये रहें यह न मान ढोर ॥29॥

टके टके नहि काहुने, रहे न बनिये कोउ।
इस आध्यात्मिक भाव धा, अटल इष्ट मम होउ ॥30॥

कवि कोविद कमठ चतुर, दिन काटे दुख सग।
गहनो लक्ष्मी नह गिण, अणघड मूढ मपग ॥31॥

धाम धरा धन धर गया लिया न कोइ लार।
मूंजी दुखिया मर गया, रह्या अमर दातार ॥32॥

किणरा ही दिन एकसा, रह्या न रहसी फेर ।
सहज वणे अहसान फिर, वणी समय री बेर ॥33॥

प्रभु लवणोद उजालिहों, समय सौभ बिन पाय ।
पुनि हरि हाथ निवाहना, भावी प्रबल कहाय ॥34॥

गिनत उपाधि उपाधि मम, मागत व्रत हित ईश ।
बाते मन धन कछु नहो, शाहन की बक्षीस ॥35॥

रे मन मूरख चेत अब, देख चुका संसार ।
अपना पराया कुछ नहो, चलना है उस पार ॥36॥

भक्त प्रतीक बनावते इष्ट गुणों अनुरूप ।
चूक देखि अध्यास में प्रतिमा कारत भूप ॥37॥

मंत्र शक्ति बिन वरन नहीं, नहि औषध बिन मूल ।
त्यो अयोग्य कोऊ नहो, यो जग दुलभ उसूल ॥38॥

उदय उदय वावो भलो, जो जग-मित्र[1] कहाय ।
भाश[2] दिशा नक्षत्र[3] बहु, उद अस्त ह्वै जाय ॥39॥

---

1 सूर्य 2 दिशा, भाशा, 3 तारे

उदय होत नक्षत्र बहु, जिनतें लाभ न आश।
उदय भलो वा मित्र को, जिहिं जग होत प्रकाश ॥40॥

बनी सु व्रज के काठ की, तिरी यमुन उर छेम।
नया जोरन व्ही तऊ, करत कन्हैया प्रेम ॥41॥

कामधेनु गैया हुती, पोषत मैया नेम।
दूध सूखि लतियात तऊ, करत कन्हैया प्रेम ॥42॥

बने तितैया सिंह दवि, महल मढैया घोर।
चहत रूप वहि प्रीति बस, महा कन्हैया दोर ॥43॥



प्रेम की अंतरंगता

दो आंखो के बीच, नाक अवरुद्ध खडा है।
मिल न सकें दुहु नैन यही हठ धारि अडा है ॥
दोनों ही की एक मति, अंतरंग मे एक है।
यही अनिश्चय प्रेम का, अटल सुसत्य विवेक है ॥

आत्म कथा

पतित पावन दीनबंधो। शरण इक तेरी गही ॥

साम्राज्य शक्ती शत्रु थी सर्वस्व था सो कढ गया,
प्रिय वीर पुत्र प्रताप सा वेदी बली पर चढ गया।
भ्रात जोरावर हुआ प्यारा निछावर पथ वहीं
पतित पावन दीनबंधो। शरण इक तेरी गही ॥१॥

विश्वासघाती हुए साथी (जो) सुख सुनाते मरण में,
समय पडने पर हहा। तजि गये शत्रू शरण में।
काल कोठरि कठिन कारागार की साक्षी रही
पतित पावन दीनबंधो। शरण इक तेरी गही ॥२॥

स्वार्थी सहोदर ने भरी क्यारी कलेजा लूटलिया,
भयभीत बांधव मित्रगण ने भी चुराई अखियाँ।
देशभक्ती पर विषम उपहास की ताने सही
पतित पावन दीनबंधो। शरण इक तेरी गही ॥३॥

घाव दुख के सह लिये कुछ धीर हू अभिमान था,
किंतु सब आधार में प्राणेश्वरी का प्रान था।
उस 'मणी' बिन हो गयी अधारमय सारी मही,
पतित पावन दीनबंधो। शरण इक तेरी गही ॥४॥

अजहो न मेरी जननि का दासत्व बंधन कट चुका,[1]
मातृक्रंदन मागना आहूतियां का नही रुका।
बोटियां तन की उडें अभिलाष अब भी है यही,
पतित पावन दीनबंधो। शरण इक तेरी गही ॥५॥

---

१ ठाकुर साहब से प्राय मित्रगण आग्रह किया करते थे कि वे अपनी आत्म कथा लिखें। इस पर उनका यही उत्तर होता था कि आत्म कथा लिखने का अधिकार केवल उसी को है जिसने समाज को कोई नवीन देन दी हो और क्योंकि उन्होंने ऐसी कोई नई देन नही दी है इसलिये वे आत्म कथा लिखने के अधिकारी नहीं हैं। परन्तु बाद में जीवन संगिनी माणिक कुंवर (मणि) के स्वर्गवास के पश्चात उन्होंने अपनी जीवन गाथा सूत्र-रूप से इन पंक्तियों में पद्य-बद्ध की है।

आत्म वेदन

विपदा घन सिर पर घुटे, उठे सकल आधार।
ग्राम धाम सब ही लुटे, बिछुटे प्रिय परिवार ॥१॥

राम-चरित सिखवत यही है समर्थ विधि ह्रात।
दिन देख्यो देखी निशा, पुनरपि भयो प्रभात ॥२॥

वर्ष चतुदर्श विपति के, ढाहत विकट बलाय।
कहा कथा मो दीनकी, राम ही दिये रलाय ॥३॥

राम सिया के साथ में पुनि सनाथ गृह कौन।
हंत ! विपत्ति के अन्त में, मेरी 'मणि' रही न ॥४॥

कहत विज्ञ इतिहास को, पुनरावृत्त प्रयोग।
नृप उमेद कवि केहरि, कृष्ण सुदामा योग ॥५॥

मन उमगि सब ही मिले, राव रंक, रजपूत।
यह कोलाहल कान परि, भर्‌यो खलन हिय भूत ॥६॥

क्षात्र-धर्म म्रियमाण लखि, चारण चित कब चैन।
शिक्षा पथ स्वातन्त्र्य गहि, लग्या सुविद्या दैन ॥७॥

कायर चुगली करन मे, होत दक्ष हित साधि।
क्षत्रिय-शिक्षा को दई, राज-विरोध उपाधि ॥८॥

मन मग में रम ते, तजी चग हिय हार।
सबहि दामी दूध थी, चौकि परि सरकार ॥९॥

गह्यो मोहि गिनि अग्रणी, रह्यो न धीरज रंच।
नीति कुटिल पथ ही जँच्यो, विरच्यो विकट प्रपंच ॥१०॥

पढ़ि आगे वे भेंड ज्यों, जो देते कर पीठ।
एक घम के प्रेम बस, दिवस निभाय नीठ ॥११॥

स्वारथ रत स्वामिहु सहज, यह सुयोग निज पाय।
द्वादस पीढिन की कठिन सेवा दिय बिसराय ॥१२॥

सबहि हर्यो वित तें भर्यो, कर्यो क्रूर आदेश।
रहनन घहो छिनहि यहँ, जो प्रिय सज्जा सेष ॥१३॥

स अबोध असहाय शिशु, वढि अबला तजि मौन।
सकल नगर आसू लसत, कियो पितृ गृह गौन ॥१४॥

सूखे वन की प्रार्थना

सूखे वन की सुनले प्रार्थना, अरे ! ओ मुसाफिर भोले !!

यद्यपि वह लावण्य रहा नहिं,
तदपि छाँह सुख लेना।
इस सेवा का धन्यवाद तो,
देना या मत देना।

किंतु कृपाकर सावधान हो, पियो तमाखू होले !! सूखे

मैं इन ग्रीषम की लुओं से,
पहिले हि सूख चुका हूँ।
हा ! प्रचंड किरणों के मारे,
अंतर फूंक चुका हूँ।

यह चिनगारी तेरे चिलम की, बन न जाय कहिं शोले !! सूखे

हरिगीतिका

हा ! थे किसी दिन सुघर सुन्दर, फूल सौरभ मधु भरे।
मीठे फलों से लद रहे, झुक झूमते थे पतहरे।
लावण्य मय प्यारी लता, गल बाँह दे लिपटी रही।
स्वर्गीय सुख की छाह पे, हँसते पथिक खिलते सही।
पतहरे के काम का अब, वह पुरानी बात है।
हा ! ठूंठ केवल रह गया, ऊपर कुठाराघात है।।

---

१ एक बार कोई ग्रामीण अतिथि ठाकुर साहब के निवास स्थान माणिक भवन आये और उस छोटे से सुरम्य उद्यान की क्यारियों में "चिलम" का जलता हुआ "गुल" डाल दिया। ठाकुर साहब ने जब यह देखा तो आग दूर फेंकदी और ये पंक्तियां पेड की ओर से उन अतिथि महोदय को उपालम के रूप में सम्बोधित की।

ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की कूटनीति के प्रति

कवित्त

श्वेत टक्साल[1] "गौरमिट" है अदृश्य बला,
असली स्वरूप या को सबजन जानेना ।
जाहि घर घुस ताहि करत श्मसान रूप,
बुद्धि का बिगारि नगें नाच मे लजानेना ।
सब उपचार हार छूटे प्राण सोले लेत,
तत्र-पटु गाधी बिन आय हैं ठिकानेना ।
असहयोग मन्त्र फू कि बीसी[2] हू की तीसी माहि,
शीसी म उतारे बिन भून यह मानना ।।१।।

कभो कर रखे अपना अग अपना कर लेना ।
दबा कठ पर हाथ, सत्व कुछ लौटा देना ।
विनिमय[3] का हि महत्व धातु कुछ भी हो क्यो ना ।
तावा कासी निकल रजत चाहे हो सोना ।
अपने साचे ढालकर, मन अनुरूप बनाइये ।
इन टकसाली भाव म, फिर सब नाच नचाइये ।।२।।

पा टि प्रस्तुत रचना ब्रिटिश गवनमेन्ट की भारत विषयक कूटनीति को सबोधित कर १६२७ ई म लिखी गई थी जिसे महात्मा गाधी की नीति ही वश म कर सकती थी। प्रस्तुत रचना मे ब्रिटिश गवनमेंट को दीमक की उपमा दी गई है।

---

१ सफेद रग वाली दीमक, उसी के रग समान ब्रिटिश जाति भी सफेद रंग वाली (White race) है।

२ बीसवीं सदी का तीसरा दशक।

३ परिवर्तन।

राजमद मात राते चहरे लजाते नाहिं,
सबै खासि खाते जहां तहां कुछ पाते है ।
पर घर घुसि जाते अपनी मनाते आन,
विवश बनाते दास दीन बिललाते है ।
सतत सताने न्याय सत्व को बताते धता,
करि करि ताते घाव नान छिटकाते हैं ।
आते है जु वही दिन आत हैं ठहर जाओ,
दभी जब दात तले तिनखे दबाते हैं ।।३।।

इस पद की रचना ठाकुर साहब ने गिरधर कवि के नीतिपरक कुडलिया
जाकि धन धरती लई, ताहि न लीजे सग,
जो सग लेते ही बने, तो करि राखु अपग ।।
के साम्य पर अग्रेज शासन की भारत मे अपनाई गई 'मच्छ मलागल रीति" को आधार बना कर की है ।

कुसुमांजलि

[संदर्भ टिप्पणी]

प्रथम जनवरी, सन् १९०३ को लार्ड कर्जन कोटा आये, तब दिल्ली दरबार के उपलक्ष्य में यह कविता बनाई और इसे कोटा राज्य ने अपनी ओर से लार्ड कर्जन के हाथों में रखी कि यह हमारे राज्य-कवि का काव्य है। समर्पण भी कर्जन के नाम पर ही की गई थी। परन्तु राज्य की ओर से तीन बार याद दाश्त (रिमाइन्डर) भेजने पर भी लार्ड कर्जन चुप हो गये। अतः उस समय छपने से रह गई। मालूम पीछे से हुआ कि लार्ड ने इसे पंजाब के किसी संस्कृत अंग्रेज के पास भेजी और उसने लिखा कि इसमें प्रारम्भ से अंत तक दो अर्थ होते हैं एक अच्छा और दूसरा खोटा। द्वयार्थक शब्दों के अर्थ केवल कुछ ही पद्यों के उपलब्ध हो सके और वे ही यहां दिये गये हैं। इसका अंग्रेजी भाषान्तर रेवरेंड ट्यूड होप (Rev Tued Hope M A , ऑक्सफोर्ड) ने किया था।

ज्ञातव्य है कि सन् १९०३ के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में श्री केसरीसिंह ने एक ओर महाराणा फतहसिंह को स्वदेशाभिमान और वंश-गौरव का स्मरण कराते हुए 'चेतावणी रा चूंगट्या' द्वारा उद्बोधित किया, दूसरी ओर वायसराय लार्ड कर्जन को यह लघु काव्य 'कुसुमांजलि' समर्पण की। यद्यपि प्रकट में यह प्रशस्ति मूलक है परन्तु द्वयार्थक होने के कारण वास्तव में निंदात्मक है। सहज ही कल्पना की जा सकती है कि जिस समय ब्रिटिश साम्राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था और भारत में स्वातन्त्र्य चेतना की प्रथम किरणें भी पूरी तरह नहीं फूटी थी उस समय किसी व्यक्ति द्वारा ब्रिटिश सम्राट के प्रतिनिधि के सम्मुख ऐसा दुस्साहस करना केवल उसकी अदम्य देशभक्ति और प्रखर काव्य शक्ति का परिचायक है।

इस संदर्भ में दोहा संख्या 22 (प्रथम अर्थ स्पष्ट है) का दूसरा अर्थ प्रसंग-वश कभी ठाकुर केसरीसिंहजी सुनाया करते थे वह इस प्रकार है- 'प्रस्तावित बंगाल के विभाजन (पार्टीशन ऑफ बंगाल) से क्रोध में आरक्त होकर भारत ने यद्यपि दस दाण (राज्यारोहरण) को स्वीकार कर लिया है परन्तु भगवान से प्रार्थना है कि ऐसा छोटा (अशुभ) दिन भविष्य में और देखने को न मिले, अर्थात् फिर कभी भारत में ब्रिटिश सम्राट का राज्यारोहण न हो यानि देश स्वतन्त्र हो जाय।

दोहा

पालन हार प्रकाश वा, जानत अखिल जिहान ।
या हित नृपति भान को, देत मान सनमान ।।१।।

छंद वेताल

जो भाग[1] सूरज अस्त भारत साथ भारत जग ।
छा गई तामसि[2] आपदा जीमून[3] जूथन सग ।
घुटि रह्या घर घर घेर तब अधेर[4] चहु धा छाय ।
यह दीन्ह निज[5]पर ज्ञान मानव भाव हितु[6]भुलाय ।।२।।

लहि लाह[7] यवन जु शाह तव दमको[8] धनजय[9] राचि ।
अति अथ विह्वल हिन्द लहि प्रभु अश-प्रभकर साचि ।।
सनमानि लिय गुन जानि हुननुक[10] पूरि पूरन नेह[11]।
अवकाश सुदशा[12] सग दिय परकाश[13] चहि बिच गेह ।।३।।

---

१ भाग्य रूपी सूय या उत्तम रजगुण का हिस्सा २ अधेरा या तमागुण
३ आपत्ति रूपी बादलो के झुण्डो के साथ (जीमूत उस बादल का नाम है जो वायु ही से बिखरे) और आगे इन आपत्तियो को बिखेरन मे कम्पनी रूपी वायु कहा गया है ४ अधेरा या दुरावस्था ५ अपन पराये का ज्ञान ६ से ।

७ लाभ ८ चमकाई ९ अग्नि की प्रभा वा धन जीतने की इच्छा
१० प्रथम अथ अग्नि, द्वि अथ जो दिया जावे उसे खाने वाला ।
११ स्नेह, द्वि अथ तेल १२ उत्तम हालत, द्वि अथ दीपक की वत्ती
१३ प्रकाश या पराये को चमकाना ।

प पाय वह मद सग[1] अति लिय लाय न्पहिं भाल ।
किय कानपथ[2] नि-ज नाम सारथ बाढि हुति[3] कराल ।।
अनमाप दुस्सह तापतें[4] निरदोष प्रज मर्ताप ।
अति घोर नाशक शाह शब्दहिं लोक हिय दिय छापि ।।४।।

प प्रंत शाहहु नहिं सके अपनीहु सत्ता टारि ।
अ धार भस्मक[5] वह बुझी मह राज्य अगन जारि ।
हा ! हन्त ज्योंनो सूखिना चिर दुखी प्रज चखधार[6] ।
निम बीर बाहुज वश की भीनी जु कर तरवार ।।५।।

तोंता मरदुन श्री विहारन श्राद्रता सु मझारि ।
सुहिरण्यरेत[7] विचारि गुन पुनि टारि नव चिनगारि ।।
फि य धूम धूम मचाय तिहिं अथेर[8] घोरहि छाय ।
दुग अवधि पहुच्यो हि द इम दम प्रान घुट घुटाय ।।६।।

तेंहु भई करुणा दृष्टि करुणा सिंधु की जु महान ।
वा पाय पूरन पतन पायो हिन्द पुनरुत्थान ।।
अति प्रबल पच्छिम[9] तें प्रभजन[10] कम्पनी[11] पन[12] गरि ।
मह साहि दिय दुखदाई बन्दल[13] धूम आदि विसरि ।।७।।

---

१ मद्य या घमंड २ कृष्णवर्त्मा अग्नि का नाम है, काला मार्ग वाला या दूषित मार्ग वाला या मृत्यु का मार्ग वाला ३ अस्त्रशस्त्र ज्वाला
४ ज्वाला, द्वि अर्थ शस्त्र
५ अपने आधार ही को भस्म करने वाली (अग्नि)
६ आंखों से प्रवाहित अश्रुधारा
७ अग्नि द्वि अर्थ जिसके परिणाम में सोना हो अर्थात् जिससे स्वर्ण (धन) कमाया जाय ८ धुआं, द्वि अर्थ उपद्रव
९ पश्चिम का वायु हो बादल बिखेर रहा है, द्वि यूरोप १० प्रचंड वायु द्वि अर्थ ताडन पीडन वाली ११ ईस्ट इण्डिया कम्पनी, द्वि अर्थ कम्पान वाली
१२ कपट और न्यायमार्ग १३ बादल, द्वि अर्थ खोटे दल, लुटेरी फौजें ।

तेँहूँ मके कोउ न टहरि परि बिच चड तिहि झकझोर ।
कि तु शीपक स्वय अस्थिर पा सकी नहि ठोर ।।
पुनि मात-सविता[1] शक्ति श्री विक्टोरिया महारानि ।
रहत हू पच्छिम क्षितिज लिय अपनाय हि दुस्तानि ।।८।।

लखि अतरिच्छ[2] हि स्वच्छ करि पुनि वात[3] शीतल मद ।
निज विजय केतन[4] के तरें गहि लीन्ह सहजहि हिन्द ।
चकि चकित भारत भूमि को किय भेजि प्रतिनिधि[5] चद ।
चहुँ नाद शाति विनोद न्यि प्रज चित्त पूरि अनद ।।९।।

जे दिये सुख जगमात वह कह सके नहि कवि जीह[6] ।
है घ य अति सुहि जननि पाले सततिहि तिहि लीह ।
भुवि पच[7] खड रु सप्त सागर[8] पेंजु हाल अनूप ।
एड्वर्ड सप्तम तपें प्रभकर द्वादशात्मक रूप[9] ।।१०।।

---

१ सूय शक्ति अर्थात् जिस शक्ति से सूय की सूयता है।

२ आकाश, द्वि अथ भीतरी इच्छाए ३ वायु द्वि अथ कथन
४ झडा (सिंह राशिगत सूर्य वा सिंह वृटानिया)
५ च द्रमा रूपी प्रतिनिधि (वायसराय गवनर जनरल हि द) पर प्रकाश प्रकाशित च द्र भी सूय का प्रतिनिधि है और वह भी पश्चिम से आता है और अवधि माम कर पश्चिम म ही जाता है, कला रूप से आता है और पूर्ण होकर जाता है, आदि।

६ जिह्वा ७ यूरोप, एशिया, अफ्रिका, अमेरिका व आस्ट्रेलिया
८ एटलांटिक, पेसिफिक, उत्तरीय, दक्षिणी, भूमध्य, द हिमहासागर, अरब समु
९ एक सूय बारह स्थान यानि राशि पर अलग अलग तरह तपने से वह बारह माना जाता है वसे ही उपरोक्त बारह स्थाना पर हमार प्रतापी सम्राट एडवड का आधिपत्य है।

जड़ता-विनाशन हेतु जीवन दूर दमन राह ।
नव क्रांति शासक व प्रशासक नीति शाहंशाह ॥
सिरताज राजा राज भी सिरताज धरि इहि बार ।
दीर्घायु नीरज रहौ निति श्री कृष्णचन्द्र मुरार ॥११॥

श्री आज भारत मुकुट दिल्ली पाट उत्सव पाय ।
निरवास विस्मृत मार यह महमान लीन्हु बधाय ॥
ध्वज आश उन्नत राज दूष्यन शृंग[1] नभ रहि भूमि ।
उत्तमि चरा[2] मयाद चहूंधा छई छत्तन भूमि ॥१२॥

जहि लियो पाण्डवराज[3] वा शुभ धर्म शासन मान ।
जँहँ देशवत्सल वीर शासन रह्यो पति चहुवान ॥
जहँ शाह जवनन विहुयो नम्रत वदान्य[4] क्रूर रु रूढ ।
तँहँ आज भारत ब्रिटिश हि सिंहासन सुनीति निगूढ ॥१३॥

तँहँ जुरी कौतुक[5] हेतु शासनला जु लवखन भीर ।
दल मिले सहँसन विविध बल वि यास कौशल वीर ॥
मन जरत भशन दैन हूपन रुचि प्रदर्शन ठाम ।
सौभाग्य देहलि देहली भइ नहलीला धाम ॥१४॥

---

१ राजाओं के डेरा के शिखर २ जहाँ तक दृष्टि जाय वहाँ तक

३ महाराजाधिराज युधिष्ठिर ४ अति उदार

५ आकर्षण ।

इव भाग षष्ठम रहित मडल प्राकृती अनुकार ।
गिरदाय विजयी वैजयती रच्यो तहँ दरबार ॥
प्रतिभूमि मडन के जु मडन मानपत्र तिहि धारि ।
समकक्ष हि द्व यवन अविनय जुर जहँ शतचारि ॥15॥

ज धरत वभव घी, धरा कमना सुशासन जन्य ।
ते सबल द्वादश सहस आसन गह तहँ महमय ।
दुहुँ आर भूपति पत्ति विच साम्राज्य पट्ट विधाय ।
लिय लाह वैठन शाह प्रतिनिधि राह वायसराय ॥16॥

हिय हिद हीरन हार के अनुहार हारत नैन ।
विनमत बँधा पाल ध्वज धर गम आशय एन ॥
सुवि काम धेनू की जु मथनि किधौं जुत नवनीत ।
मनु शीश भारत दृश्य अतर लसत पम पुनीत ॥17॥

किधौं शुभ ऋतु शरद राका अरध दश्य अनूप ।
रवस्वस्थ राजत लाड कजन पूरण हिमकर रूप ॥
नक्षत्र राजक अवलि दुहुधां नमि चली जिहि अग्र ।
चख हृदय सीतल त्योहि मोहित करन हार समग्र ॥18॥

आल्हादि उमडन हेतु प्रजनन चित्त सिंधु अथाहि ।
आगमन तहूँ भियो भारत वदनीय जु जाहि ॥
प्रजराज जनपद भक्ति औषधि करत रस सचार ।
विच शाति भासत भव्य भाति सु कलानिधि उमदार ॥19॥

इम वहै अनुपम छटा धाम्न सभा मण्डप राज ।
जिय इन्द्रप्रस्थ जु नाम सारथ पूर भारत आज ॥
तिहिं विपुल वैभव सकल बरनिन सकै सगसन शाय ।
है भ'य जीवन सफल तिन जिन यी'ह नन सनाथ ॥20॥

सुख-राशि कुसुम विकासि ननु जगमित्र प्रतिनिधि रूप ।
तम-चरन भजन च'द्र कजन स जु भजु अनूप ॥
शतआयु नीरुज रहहु श्री एडवड वह ग्रह—ईश ।
हिय हरखि भक्ति अन'य धरि यह देत कवि आशीष ॥21॥

दोहा

भक्त हि'द अनुरक्त बनि, लिय वधाय हाए एहु ।
यें पुनि मागत इष्टतें, लघु यह दिन जिन दहु ॥22॥

प्रथम जनवरी क्रीस्ट सम, नयन बि'दु ग्रह च'द[1] ।
राज मुकुट एड्वड छिन, किय भजन मह हि'द ॥23॥

षटपदी

निज पद के आधार गिनत सम्राट नपन कहें ।
नपहु वहत साम्राज्य हुतु अपन विवसन महें ॥
पुष्कर प्रभु उम्मद मित्र एडवड निहारत ।
कोटा सागर सहित हूप मय ऊर्मि उछारत ॥
मैं हू इस सिंहासन उपरि, सहज राजकवि धम धरि ।
'केसरीसिंह" कुसुमाजली, यह चढात मधु-भाव भरि ॥24॥

---

1 नयन=3, बि'दु=0, ग्रह=9, च'द्र=1 अर्थात् 1903 ई

राष्ट्र धर्म

मा स्वतन्त्रते !

प्रधान मानवीय सत्व है स्वतन्त्रता महा ।
वरण्य धर्म कर्म मर्म मन्त्र ही यही रहा ।
महान प्रान प्रान वारि के तुम्हैंहि खोजते,
हिम विश्व वन्दनीय सन्त मां ! स्वतन्त्रता !!

भारत-दुर्दशा

मा धर्मवीर ! गभीर आशय,
धीर धरि सुनिय यहैं ।
गति नम भारत मम भारत,
यम भारत या कहैं ॥
स्मरि भून पूरन भव्यता को,
माय गारव ना गहैं ।
हा! हाल लखि मम बाल इहि,
किहिं नीर नैनन ना बहैं ॥1॥
स्वामित्व मम गहि भाज्य मानस,
राज्य पूर्व प्रकृष्ट भो ।
हा ! कथा सुन जन वह यथा,
सर्वस्व मेरो नष्ट भो ॥
काउ रह इक रस नाहिं बस
बस माहिं प्राकृत राहव ।
चाह होहि दारिद गात
वारिदनाथ चेष्टक चाह के ॥2॥
चिरकाल निद्रित चेष्टें वहैं,
ननु हेत जागन को सदा ।
पै पतन सूचक होत सौख्य,
विमान उच्छलन उन्मदा ॥
तहिं अटल-गति सर्वति तें,
जु समय कोऊ ना खस ।

दै सुहृदय मो सुरत धाम,
काम र ग्रथ ता बिच जा फँसे ॥3॥
सुख सघ सधि प्रवध बन्धन,
रूप सो लगने लग ।
स्वातन्त्र्य मध मदान्ध व्है
आनन्द छन्दहि तें ठग ॥
इम सधि सध्या हुई पश्चिम
मित्रता कँह ग्रस्त भा
सहसासि बद्धि तम तोम दर्शन
भावहीन समस्त भो ॥4॥

सिर धार पूरन कामना
उपहार आग्रह भेंटिकें ।
मम बुद्धि मन्त्री भेन्ट किम,
लिय पक्ष लोभ लपटिकें ॥
लिये छीनि राज्यन प्रग पायक,
कोप श्रद्धा हू हहा ! ।
ता सग हित सम्पर्क लखि
बल तम पद्धति फिरि रहा ॥5॥

दोहा

भारत के सिर श्याम थे यह यौवन सुखदाय ।
रामराज्य बुढ़िया गया चढ़ी सफेदी आय ॥

उक्त दोहे के दो अर्थ होते हैं

[1] जब तक भारत रूपी शरीर के सिर पर काले काले बाल थे तब तक यह सुखदायी यौवन का समय था लेकिन अब यह राम राज्य बूढ़ा हो गया है– उसके सिर पर अब सफेदी व्याप्त हो गई है।

[2] जब तक भारतवर्ष पर श्रीराम, कृष्ण और उनके वंशजों का शासन था तब तक तो उसका वह यौवन काल था लेकिन अब उन आर्य वंशजों का राज्य ऐसा निर्बल हो गया है कि श्वेत-जाति [White Race] के अंग्रेजों ने अपना रंग जमा लिया है।

हजारी बाग जेल मे बंग साहित्य की याचना

मरि मरि की सुन्दर, बंग वाणीरधर,
प्रतिरत्न दीप्तिवर, हरे छे आँधार ।
जाचितेछि विच्छुर मन, मुग्ध बारिवार मन,
काटिते कठिन दिन, अन्ध-कारागार ॥1॥
जानी ना कत की वेशे, जननी पुस्तकपाणि,
आसिया छे कारादेशे, भक्तवत्सल वाणी ।
दिदृक्षा मायेर मुख, मूर्चो रूपे मम,
भाइयेर तरे भाई, लहिबे "प्रफुल्ल" श्रम ॥2॥

भावार्थ

"अहा! कैसा सुन्दर है बंग भाषा का रत्नागार जिसका प्रत्येक चमत्कृत रत्न अज्ञानान्धकार को हरने वाला है। इस अन्धकारागार में कष्ट-प्रद दिनों को काटने हेतु मैं ऐसे ही उज्जवल पुस्तक रत्नों की कामना कर रहा हूं। मैं नहीं जानता मां सरस्वती किन विभिन्न परिधानों में इस कारागार में उपस्थित है। उस मां के पावन स्वरूप का देखने की मेरी तीव्र इच्छा है। हे भाई प्रफुल्ल चन्द्र! अपने दूसरे साथियों के लिए यह कष्ट अवश्य स्वीकार करोगे।"

आजीवन कारावास हो जाने के कुछ समय पश्चात ही सन् 1915 में ठाकुर साहब को ब्रिटिश सरकार ने कोटा सैंट्रल जेल से हजारीबाग सट्रल जेल भेज दिया था क्योंकि सरकार को अंदेशा था कि कोटा जेल से उनका सम्पर्क प्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं क्रांतिकारियों से बना हुआ है। उस समय हजारीबाग जेल में बंगाल के अधिकांश क्रांतिकारी बन्दी थे। हजारीबाग जेल में ठाकुर साहब को काल कोठरी 'सालिट्री-सैल' में रखा गया था एवं चक्की पीसने का कार्य दिया गया था। परन्तु कद ठिगना होने के कारण वे चक्की नहीं पीस सकते थे इसलिये कुछ समय बाद पुस्तकों की जिल्दें बांधने का कार्य दिया गया। जब तक चक्की पीसने का कार्य किया तब तक अन्य साधारण अशिक्षित कैदियों को दाल व अनाज से अक्षर-ज्ञान एवं भारतवर्ष का मानचित्र बनाकर भौगोलिक ज्ञान कराते रहे।

सन् 1919 में प्रस्तुत कविता बंगला में लिखकर एक क्रांतिकारी साथी श्री प्रफुल्लचन्द्र चाकी को बंगला भाषा की पुस्तकें भेजने हेतु सम्प्रेषित की थी।

उद्‌बोधन—नारी समाज का

कवित्त

मानव समाज की बिगारी दशा स्वारथ तैं
कहत भनारी नारी अबला कहावेंगी ।
नर नाम धारी सत्ता मागत भिखारी बनि,
लाज हू न धारी बात जगत हसावेंगी ।
भूमि महतारी अत्याचारी पद रौंदी जात,
अब तो हमारी नारी कदम बढावेंगी ।
टरकें जहाँ पैं नर फरक हमारी बाँह
भरक उछाह रन करक दिखावेंगी ॥[1]

लाला लाजपतराय

कवित्त

देश के दुलारे लाल, मारे जात डडो मौत,
देखन तुम्हारे हार कायर सिटाओगे ।
ललकि भिडत के नगारे चोट देके अब,
ओट ले अहिंसा की क्या किस्सा ही मिटाओगे ?
सहज उपाय हाय वही ना निभाय सक,
खादी बिसराय परदेशी को भिराग्रामे ।
लाज बोरि रता म फजेता जननी का करि,
कहा ! प्यारे नताओ को कहा सा पिटाओगे ?[2]

1 उपर्युक्त कवित्त ठाकुर साहब न अपनी पौत्री सु श्री राजलक्ष्मी को महारानी गर्ल्स हाई स्कूल, कोटा, म डिबेट म बोलन हतु उस समय लिख कर दिया था, जब वह दूसरी कक्षा म अध्ययन कर रही थी। नारी समाज के प्रति ठाकुर साहब के हृदय म निवसित मान सम्मान और नारी की क्षमता पर अटूट विश्वास के उद्‌बोधनात्मक भाव इस कविता म स्पष्ट दिखाई देत हैं।

2 साइमन कमीशन 1932 मे लाहौर गया जहा उसका "बायकाट' करत हुए सत्याग्रहिया पर ब्रिटिश सरकार के अधिकारिया ने बबर लाठीचाज किया एव एक सार्जेंट के लाठी प्रहार से देशरत्न लाला लाजपतराय बुरी तरह घायल हो गये और अतत उसी से उनका प्राणान्त हुआ। उस दुखद समाचार को सुनकर ठाकुर साहब न यह कवित्त लिखा।

सैन्य—गान

दीन बंधु सुख के आधार,
जयतु प्रभु वह जगदाधार ॥

भारत भूमि प्राण से प्यारी गौरव मय यह मात हमारी,
सकल विश्व मे जाइ न इसकी यह जीवन इस पर बलिहार ॥1॥ जयतु ..
परहित प्रान निछावर करना, सत्य अहिंसा प्रेम न डरना,
मानव पशु मे भेद यही है, सब धर्म का इतना सार ॥2॥ जयतु ..
जो जनमा वो अवश्य मरेगा धीर अमर निज प्रान करेगा,
धर्म समर हँसते बलि होते, रहता खुला स्वर्ग का द्वार ॥3॥ जयतु ..
धन जोबन मद लोभ भुलाना आखिर खाक खाक मे जाना,
स्वारथ रत कायर का जीवन खटिया पर मरना धिक्कार ॥4॥ जयतु ..
न्याय शांति सुख जो खा जाती, वह नर तन मे राक्षस जाती
जनता के उन अधम शत्रु से लड़ना है हमको ललकार ॥5॥ जयतु ..
नहीं किसी से हमको द्वेष किन्तु हरेंगे जन के क्लेश,
इस ही प्रण से शस्त्र उठाया शांति दूत हम सेनाकार ॥6॥ जयतु
राजा प्रजा शांति सुख लेवें, अभय प्रेम से नौका खेवें,
लेते हैं हम सनिय हसकर, सब ही का अपने भुजभार ॥7॥ जयतु ...

सदन टिप्पणी—

"कोटा की फौज सदा गाती हुई निकलती है "राधेश्याम कहो, सीता राम कहो," ॥ देखने पर, सुनने वाले को यही प्रतीत होता है कि किसी महंत की जमात निकल रही है। अप्रिय सा लगा, सैनिक के अनुरूप यदि ऐसा गान हो तो क्या ठीक न होगा" (ठा केसरीसिंह)

रचना काल 4 12 40

राज—धर्म

कवित्त

राजन अमर प्रजा ही शुभ संतति है,
सैन धन बल नाहिं मुख्य बल धी को है।
है न राजपद की सहायक कठोर सत्ता,
न्याय प्रजा प्रेम देश हित ही तरीको है।
खनिज खजानो तुच्छ मासें नर-रत्न आगें,
लोभन में लोभ नृप की रति को नीको है।
कर्म परमारथ में स्वारथ समाय देनो,
यहे धर्म मर्म बिन राज्य पद फीको है॥

राजा—भर्त्सना

कवित्त

सही सही राजा दान धारा में रक्त जाकी,
न्याय औ प्रताप बल प्रजा सुख सोवती।
धाणी का विलास त्यांही रमा का रमण रम्य,
अतिथर मानवता सतजुग जोवती।
ऐसे तो अनेक राजा तेली औ तमाली राजा,
ओ ! ओ ! मेरे राजा !! बोलि मैया मुख धोवती।
"लिस्ट" ही के राजा केते बजरी घमरिया हू,
समय मरें तें "राजा-राजा" कहि रोवति।

राजा का कर्तव्य

छंद

आपकी प्यारी प्रजा की आश आशिर्वाद है,
इसकी सफलता म सदा सुख शांति यश आल्हाद है ॥
भाव म अमृत भरा हो मधुर रस रसना मेरी।
विलसता हो ओठ ऊपर हित सहित स्मित हर घरी ॥ 1 ॥

चाटुकारिन की चतुरता कान मे चुभती रहै,
हाथ म हो दान-धारा न्याय मधु लेखिनि बहै।
ज्ञानबल भुजदंड म हो कायफल मे धीरता,
मन और तन की स्फूर्ति ऊपर छा रहे गम्भीरता ॥ 2 ।

नम्रता व्यवहार मे सत्काय म रुचि नित नयी,
मानस सरोवर की लहर हो क्षमा प्रीति दयामयी ।
बुद्धि म हो धम शुभ-सकल्प मे दृढता बनी,
अनन्य साहस पूर्ण हो, हो देश-हित मे जीवनी ॥ 3 ॥

धम-कुल अरु देश का अभिमान हो अहंकार मे,
हिचकिचाहट हो नही निज दोष के स्वीकार मे,
उच्च सखाभाव हो राजत्व के सम्मान मे,
मनुजता की सिद्धि निमल हो चरित्र-विधान म ॥ 4 ॥

सप्त प्रकृति[1] पर निरंतर रहै पूर्ण सतकता,
विश्वास हो सहकारियो म योजना म दक्षता ।
विविधता मे गुणचयन निपक्ष निर्णयवृत्ति म,
सदा निर्भयता रहै बुध तर्क-सिद्ध-प्रवृत्ति मे ॥ 5 ॥

रचना-काल 31 8 1932

---

1 सांख्य म वर्जित प्रसिद्ध महत्तत्व आदि सात प्रकृतियाँ।

कोटा महाराव उम्मेदसिंह जी के प्रति

छंद

अज्ञात कुछ शुभ कर्म से बल गद्दियां को खूंदना,
भोगरत जीवन बिताना न्याय पथ चख मूंदना।
इतना हि यदि नृप नाम का हो अय देश अभाग है,
यह आर्य संस्कृति नाम पर लज्जा प्रदायक दाग है ॥ 1 ॥

नित प्रजा-पालक रहे सच्चे पिता भारत भूपती,
औदार्य तेज प्रभाव पुंगव वीर क्षत्रिय नरपती।
जिनकी कथा सुनि धन्य कहि संसार सीस नवात है,
वे आज भी हैं अमर घर घर सब उन्हीं की बात है ॥ 2 ॥

बल बांधि धन जन का किसी विधि विजय पाना सहज है,
धिक खेलि पशुबल खेल यों जंगल बनाना सहज है।
लाखों प्रजा के हृदय को हां। प्रेम के दृढ़ पाश में,
है बांध लेना कठिन अति व्रत सत्य के विश्वास में ॥ 3 ॥

पूर्व संचित पुण्य तप से राज्य-पद की प्राप्ति है,
पुण्य आत्मा सभी नृप हां बस यही अव्याप्ति है।
केते विषय सुख लीन हो सब पुण्य-पूंजी झाड़ दें,
केते चतुर सत सरल जीवन पुण्य पूंजी बाढ़ दें ॥ 4 ॥

क्षत्रियों का काल वह वीरत्व में सब सिद्धि थी,
प्राण पर खेले ज्यूंही बस हाथ में जग ऋद्धि थी।
किंतु यह अति विकट कोमल लेखिनी का काल है
गत राज्य को लौटा लिया अद्भुत यही इकबाल है ॥ 5 ॥

अति हर्ष में उफने नहीं विचलित न वज्राघात में,
पर दुख-दुखी परसुख-सुखी, नृप धन्य हो इस बात में,
अभिमान का तो नाम नहिं पूरण दया के सिंधु हैं
क्रोध का लवलेश नहिं त्यों बहम का नहिं बिन्दु है ॥ 6 ॥

मनहर

गोतल की एक प्याली केते मदमस्त बनै,
घन मद नाशक गिनावें आठ ईनी मे[1] ।
बढकर राजमद विकृत बनावै सब
शासन की दढता बनावै भूत भीती मे ।
हँसमुख तेरो यह सदय सरल भाव,
जग को लुभाय बांध्यो राजकुल प्रीती मे ।
एक हू न मद छायो सबतें मधुर भाख्यो
मोहन को मत्र त सिखायो राजनीती मे ॥

दोहा

जड धन रो को जावणो, जतन करता जाय ।
परजा धन सत पाग्मो, बिलसै सू बडदाय ॥ 1 ।

विकल प्रान के वे रसिक, रीझत विकट तपाय ।
प्रजा आधि नप व्याधि मे, आखिर भये सहाय ॥ 2 ॥

नहि लायर पडित रहो, नहि डी लिट की बात ।
प्राय- नृपति के आचरण शासन सफल बनात ॥ 3 ॥

---

1 अर्थ, अतिवृष्टि,-अनावृष्टि, मकडी, मूसा, तोता, राजद्रोह से क्लेश, प्राणों का मोह ।

पीडा

क्षात्र-धर्म

क्षत्रिय वही है

कवित्त

सदा ही सताये जात दीन बलवान हाथ,
प्रबला म बात पटु गाली मिट जाने की।
परमान मम ही मे धम मम पौरुष का,
जानते न साहस के पुंज मिटजान की।
भारत का हाय नाद सुन सकत न वीर,
गाजि उठें दशा देखि दीन पिट जान की।
क्षत्रिय वही है जिस स्वाभिमान स्वत्व पर,
बिना दुविधा के चाह मर मिट जान की।

रचना काल—17 1 1939

आत्मस्मृति

मनहर

वीर रस छाके, न्याय नीति की ध्वजा के दंड,
बाहर बिरवा के बाँके बिना दुविधा के थे।
रक्षक प्रजा के, सिरमौर थे इला के सदा
दुश्मन दगा के, प्यासे सुयश सुधा के थे।
अरि सं रटाके लेन वाहिनी घटा के बीच,
धुनती सटाके सिंह अद्भुत छटा के थे।
नील निपटा के ता निहारा राजपूत वीरो,
स्मृति का सहारा हम वीद वसुधा के थे।

रचना काल—10 6 1940

इनको कौन रोक सकता है ?

दोहा

राखत क्यों ना नृपन को, शुभचिंतक कहलात।
जे पूछत या कविन को, सुनहु मम की बात॥

घनाक्षरी

"राजनीति' ओट लिखि कहिँ बदल जात
लोभ को "प्रबंध' कही दीनजन चूसे जात।
कृपण छिपावे धन-मोह को "मितव्यय" में
निर्दयता "न्याय" नाम क्रूरता 'प्रभाव' पात।
'देश काल ज्ञान" मानि हनि कुल धर्म चलें
डूबि खोटे व्यसन सुनावें "दिल बहलात"।
बहुत विरुद्ध पौन महीप मदांध भौन
रोक कान ऐंचि रह्यो विधि विपरीत हाथ।

जयपुर प्रजामंडल के दमन पर

(जयपुर राज्य ने वहाँ के प्रजामंडल को अवैध करार देकर दमन करने पर कमर कसी तब जयपुर दरबार सवाई मानसिंह जी को लिखा 30 1 39)

राजन् !

दुख है कि वर्तमान नरेश विपरीत शिक्षा के साँचे में ढल कर या व्यक्तिगत सुख के प्रलोभन में वास्तविक राजधर्म को भूल गये और चारण भी कुल धर्म को भूलकर चापलूस मात्र रह गये। शुभचिन्तक चारण का धर्म ही यही है कि सत्य को निर्भय होकर राजाओं के सामने रखे और स्वधर्म पालन करते हुए राजमद का कोप सिर पर आवे तो शांति से सिर झुका कर स्वीकार करे क्योंकि "स्वधर्मे निधनम् श्रेयम् पर धर्मो भयावह"। तदनुसार वर्तमान जयपुर की नीति से दुखित होकर यदि यह शुभचिंतक श्रीमानों की सेवामें दो शब्द विनम्रता से नजर करे तो आशा है श्रीमानों की उदार भावना क्षमा करेगी। होगा वही जो श्री जगदम्बा को मंजूर है फिर भी "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन् " इस शरीर का परिचय कुंवर दलेलसिंह जी पलामया[1] से पा सकते हैं।

दोहा

दंडा बल भुजदंड पर, पगट्ट होत समर्थ।
बीर प्रेम बल बलिन पैं, समझत शासन अर्थ ॥ 1 ॥
दीन प्रजा अरु नारि पर, शस्त्र न शस्त्र उठाय।
पर हित में निज हानि को सहत बीर हरषाय ॥ 2 ॥
मान ! मान अभिमान तज, सुत सम जान प्रजान।
चमन उजारहिं दमन यह मत आपकी हान ॥ 3 ॥

---

1. महाराजा सवाई मानसिंहजी के प्राइवेट सेक्रेट्री सर अमरसिंह जी पलामया के पुत्र।

मनहर

जनता के बल ही से जमन कपाते जग,
माने जात "पर"[1] वहा पुयभ्रे जहर के।
पर मुख ताकि रहे नृपति हमारे हाय,!
लेते हैं उबासी नर रत्न निज घर के।
अपनी प्रजा का हिय हरपि सतोप लेहु,
सुनिये विनय नाथ ढूढाहर घर के।
प्रेम से विजय पाना यही वीर बाना मान!
योग्य है न आजमाना हाथ हिटलर के ॥ 4 ॥

खो चुके पराय हाथ निज अधिकार भार
प्रजा के सहारे शेप फिर भी बचाओगे।
थाती पूवजो का जाती रहेगी सगाती सग,
जो न प्रजा प्रीति नीति पटुता दिखाओगे।
भक्ति जनता की अजा बाकी उसे गेदि रादि
घर ही म आग फूकि जगत हसाओगे।
पाओगे ना शांति सुख व्यथ अभिमान ठान,
तत छिन मान! हत अत पछताओगे ॥ 5 ॥

धन्य वह पिता जिसे पुत्र का सहारा मिल
भक्त प्रजामडल की प्रीति नृप सुख है।
सत्ता निज सोप देते हसत पराये हाथ,
प्रजा को पराई मान डरते हो, दुख है।
आग के खिलाडियो के घर हैं समुद्र पार,
एहो गृह-स्वामी! ज्वाला आपही ने रुख है।
एते पें न सावधान तो तो मान! मान लीजे,
राजपद ही से अब विधिना विमुख है।

---

1 विदेशी

(जयपुर आदोलन के सम्बन्ध म ता 30 4 39)

महाराजा मान उतने दोषी नहीं हैं क्योंकि—

दोहा

प्रजा न पूरा मानती, दव मान पर दोष ।
मन्त्री ताप घोम यनि, बाढत अपनी होस ।। 1 ।।
सिकुडि ढाल को ओट मे, अपनो करत बचाव ।
भीति चतुरता कुछ कहा, कच्छप[1] सहज स्वभाव ।। 2 ।।
मान व्यथ बदनाम भो, बीचम[2] यग[3] प्रसग ।
जस पाय तुरग सग, होत सुरग कुरग ।। 3 ।। ❀
प्रकृति[4] तीसरी यनि नही, बीचम बिच म आत ।
लाव मानवति नीति का, सहज प्रीति सनवात ।। 4 ।। □

दोहा

बखत तणो बीत्यो बखत, जयसी रो जुग नांहि ।
मान मान ! भूलो मती, निभणो बीसी मांहि ।।

राज्य के लोभ म अपने पिता (महाराजा अजीतसिंह) को मारने वाले रामतसिह का और पुत्र को मारने वाले सवाई जयसिंह का समय अब बीत चुका है । हे मानसिंह ! यह मत भूलिये ! आपको तो इस बीसवीं सदी म रहना है ।

निज सुत ने पिटता निरख, डाकण भी डहकाय ।
मान ! मन रा किम सहो, पिटठू प्रज पिटवाय ।।

अपने पुत्र को मार खाते देखकर दुष्टा स्त्री भी भय खाती है । फिर हे मानसिंह ! आप इन पिटठुओ (अग्रेजो) द्वारा अपनी प्यारी प्रजा को पिटते हुए देखकर भी कैसे मौन लेकर सहन कर रहे हो ?

---

1 कछुआ, कछुए की उपमा महाराजा मानसिंह को दी गयी है ।

2 सर बीचम, तत्कालीन जयपुर राज्य के प्राइम मिनिस्टर ।

3 मि यग इसपेक्टर जनरल आफ पुलिस। ज्ञातव्य है कि इन दोनो अग्रेज अधिकारियो ने प्रजा विरोध के दमन मे प्रधान भाग लिया था ।

4 नपुसकत्व ।

❀ महाराजा मानसिंह (सर) बीचम और मि यग के कारण व्यथ ही बदनाम हुए जैसे कि ससर्ग-दोष से उत्तम जाति (उलटे लक्षणो वाला) का घोडा खराब लक्षणो वाले घोडे के पास रहने से स्वय भी खराब हो जाता है ।

□ यदि प्रजा और राजा के बीच (नपुसकत्व सूचक) बीचम न आते तो प्रजा सहज ही अपने स्वामी का मन मना कर समयानुकूल बना लेती ।

शिकार में रजपूती

दोहा

नीति कहत अति सब बुरी, अत नाश की धार।
क्षत्रिन म लाग्यो व्यसन, हा ! अतिरूप शिकार ॥ 1 ॥
प्रजा बीच वठन-कथन, गौरव हानि दिखाय।
मुनि समान विमि रहि सकें यो मगया ललचाय ॥ 2 ॥
रह निठ्ठले रात दिन, घर चिंता कछु नाहिं।
कठिन जिन्हें दिन काटना, वे वन भटकन जाँहि ॥ 3 ॥
राज काज पर हाथ म, अपनो कछू चल न।
घुसें कहा लो गह मे, कछु शिकार म चन ॥ 4 ॥
ज्ञान बिना सनमान भी, दुख दायक ह्वै जात।
भूमि पतिन पें याहितें, कछुक दया की बात ॥ 5 ॥
अनजाने भी उदर म, विप कु ठित किम व्हैहि।
हितचिंतक का धम यह सावधान कर देहि ॥ 6 ॥

मनहर

प्रेम युत प्राथना है राजपूत बाधवो से,
उनही की सतति हो पाल्यो देश जिन हैं।
आज रक्षा धम तजि स्वारथ म डूब रहे
त्राहि त्राहि मच्यो चहू नाश छिन छिन है।
भूलि वीरता के नाम मृगया म फूलि रहे,
हिंसा को व्यसन गिने रात है न दिन है।
कायरता धारि क्षात्रधम से विमुख हुए,
मारना कठिन नहिं मरना कठिन है।
हिंसक की वृत्ति यह पतन मनुष्यता को,
पोषत हो जिसे हा 'शिकार' कहि चहते।
कमी थी न पहले भी पुत्रो ने पिता को बधे,
आपही के घर इतिहास खास कहत।
फुरसत मे आता शयतान बात सत्य हुई,
ठीक ह करें भी क्या ? निठठले बैठि रहते।
किंतु नरमेघ तक हिंसा के धक्केले सब
अन्न मे न व नहीं बचाये गये बहते ॥

चांपत हो हाथ ठुकराय रहे स्वाभिमान,
स्वारथ के कीट बनि दासता में जकरे।
हाथ जोड़ उघर अनाथ से दिखात मुख,
इतैं बात बात पर प्रजा बीच डकरे।
राखे देशहित में बने हो क्यों कजोड़े रूप,
टिकिहैं न व्यथ ये गरूर भरे नखरे।
चाहे मृगया के नाम वीरता बघारो क्यों न,
मारो क्यों न सुअर शृगाल बाघ बकरे।
रचना काल—25 1 1939

राजपूत जाति पर मरसिया

दोहा

ज्यों शव प्रथम उठावत, होत हृदय पर घात।
वही दशा चारण हिये, हा ! रजपूती जात ॥ 1 ॥

कवित्त

तेज भरी आखें वे पलक—पटों में छिपीं,
निबल उबारने का पथ दिखलाती थी।
नाक का न नाम, स्वार्थ कीट भरी शून्य चर्म,
वाणी हुई बन्द बैरी दिल दहलाती थी।
भग्न शक्ति कुंठित जो आतुर थी यश हेतु,
देश की पुकार पर तत्पर मनाती थी।
हाय ! वह राजपूती अंतिम बिदा से जाती,
छाती हहराती एक जिन्दा वीर जाती थी ॥ 2 ॥

दोहा

(मरु भाषा)

जमिया निरभै दल सजन, थमिया खल थरराय।
जिण बल ऊजल हिन्द हा ! वा रजपूती जाय ॥ 3 ॥

'देवगढ़ के बाईजी श्रीमती लक्ष्मीकुमारी जी, जो देलवाड़े के भाणेज और रावतसर (बीकानेर) में विवाहित हैं, व गुणग्राहकता से मेरी कविता का प्राय संग्रह करती हैं। इस समय उन्होंने श्री नन्ली (पुत्र-वधु) को लिखा कि कोटा दरबार के स्वर्गवास पर मरसिये जरूर कहे होंगे सो लिख कर भेजो। इस पर मैंने व लिख भेजे, इसके साथ ही "राजपूत जाति पर भी मरसिया कह कर 15 जनवरी 194 को लिखा।' (ठाकुर केसरीसिंहजी की स्वयं की टिप्पणी)

चारण वही है

कवित्त

चारण वही है जो स्वतन्त्रता उपासक हो,
वाणी का वरद पुत्र जाने सत्य तत्व को।
अभय अडोल अवलम्ब निज शक्ति पर,
क्षत्रिन को देत पाठ व्यापक ममत्व को।
साहस की ज्वाला फूंकि मुर्दे जगाय देत,
नाशवान देह दै खरीदें अमरत्व को।
वीर रस निर्झर बहाय बिथराय स्वयं
न्हाय के दिखाय देत मरन महत्व को॥

सत्य अभय स्वातन्त्र्य-उपासक,
सिखा मरण जीवन का मर्म।
क्षात्रधर्म उद्बोधक 'चारण"
रहा सदा साधक युग-धर्म॥

अंतिम चार पंक्तियां "चारण" त्रमासिक की आदर्श वाक्य थी।

विविध

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

मनहर

मधुर सुनागरी का पाप्या रस सींचि सींचि,
ग्रीष्म मे आलबाल बांधि सुकुमार पें।
वही ललकाना जगजानी तव दिव्यवानी,
रानी बनि चढी राष्ट्र भाषा अधिकार पें।
रसा[1] सरसावें बरसावें क्यों न पावस यें,
झूमि झूमि आवें अब धन धनसार[2] पें।
बोलो हिन्द हिन्दी एहो भारत के इन्दीवर[3]
लागि है न बिन्दी[4] तोला तेरे उपकार पें॥

---

1 पृथ्वी
2 पानी
3 नीलकमल
4 शून्य

पं. माधवप्रसाद मिश्र,* भिवानी (हिसार) के प्रति

जिनका चाहत बहुत जन, तिनका थिर नहिं प्रीत।
नन मिल पिघले रहैं, वे गनिका अनुरीत॥
मन मान्यो माधव[1] सदा, है श्रीफल[2] थल नेह[3]।
पै लखि अंतर कठिन यह, होत बदर[4] भ्रम छेह॥

---

1 माया के पति विष्णु भगवान
2 नारियल
3 चिकनाहट
4 बेर

* हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध समालोचक एवं लेखक मिश्र बंधु

पं. गौरीशंकर ओझा के प्रति

पं गौरीशंकर जी ओझा उदयपुर को पत्र का उत्तर न देने पर लिखा (सन् 1902)

दोहा

जो जाको निशि दिन रट, वह वा मय व्है जाहि।
तुम रटते जु पहान[1] कों यहै मोहि भ्रम आहि॥

---

1 पहान=पत्थर पर उत्कीर्ण शिलालेख

चंद्रधर शर्मा गुलेरी के प्रति

घनाक्षरी

आजलों सह्योगु नील लोहित व्है कान देग,
    अब तो त्रिलोचन उघारी हर दैव श्राप।
खाली ही कपाली रहो रहीना कपर्द पास,
    वामदेव व्है वे अपकारी रचे अघ छाप।
पति व्है अपर्णा के क्यों पर्णाना के साथी भये
    गंगाधर सिर पैं प्रतिज्ञा करी क्या न आप।
व्है तो शिव सांचे त्रिलोचन शव उठ हो अब,
    भाव सुधर हो चन्द्रधर जू हरे हो ताप॥

दोहा

देश प्रेम भजि खेतरी[1] प्रलवि[2] जगावन आस।
अजमेर[3] तुम भल बसे तजि विल स कलास[4]।
अन्य प्रसंग में

दोहा

नाम हु ते माधव नहीं यैं काम हु तैं सिद्ध।
या थल वन्दे मातरम कसे भई प्रसिद्ध॥

रचनाकाल–3 मई, 1906

---

1 पक्षे=विमान (स्वदेश रूपी)
2 प्रारब्ध=(स्वदेश का)
3 अजमेर पक्षे=मायमह
4 कई स्पृहा

1–हिन्दी साहित्य के अमर कहानीकार और "उसने कहा था" कहानी के लेखक पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ठाकुर साहब के परम मित्र थे। यह काव्य मय सम्बोधन उनके नव वर्ष के मंगल संवाद के उपलक्ष में किया गया था। –सं

तालाब की पाल

दोहा

विलसत छंद प्रबंध तें, गिरा विविध बनि ताल,
बंधन हू सोहत सुखद, ज्यों तलाब की पाल ॥ 1 ॥

जैसे काव्य का सौंदर्य छंदबद्ध होने से और वाणी का माधुर्य नाना प्रकार की ताल एवं लय से बंधने पर निखरता है वैसे ही पानी भी जब तालाब की पाल में बंध जाता है तो बड़ा सुखदायी लगता है।

बहत रहत निर्मल सलिल, सब ठां करत निहाल।
वह मलीन जीवन भयो, बाँधि तालाब की पाल ॥ 2 ॥

बहता हुआ पानी स्वच्छ रहता है और जहां जाता है वहीं निहाल करता है परन्तु वही पानी तालाब की पाल से बंध जाने पर मलिन हो जाता है

लोरी

आई आई आई प्यारे को निंदिया आई।
शक्ति शांति सब सुख दाता, है निद्रा जग माई।
याही की शुभ आगम सूचक, हाई[1] देत बधाई ॥
मीठी नजर निहारत छिन पुनि, मधुर होठ मुलकाई।
हाँ हू करत धरत कर थन पर, देहू पलक अलसाई ॥
प्रेम मयी निर्भय गोदी में, नैनो बीच घुलाई।
निरखत मात परम सुन्दर मुख, झीनो पट ओढ़ाई ॥
डोलत ममत धार मधुर स्वर, थपकी ताल सुहाई।
होत मगन मन डोलत जानो हेत सहित हुलराई ॥
जीवन धन सोजा पुनि उठियो बुद्धि बल सुख पाई।
सोजा मेरी प्रेम पुतली, कृष्ण यशोदा छवि छाई ॥

---

1 जम्हाई

इटली-एबीसीनिया युद्ध[1]

दोहा

गूंज उठी गिर कन्दरा, जब आया रिपु धाड़ ।
आज बणी ईथोपिया, वा जूनो मेवाड़ ॥

मनहर

महाशक्तिशाली शाही दिल्ली दलपेलि रह्यो,
जैसो रह्यो टक्कर प्रताप उफनाता है ।
मुट्ठी भर गिरिमाला, चाहत स्वतन्त्रता को,
आततायी दम्भ भरि दासता सिखाता है ।
धुग्गू से अनेक देशद्रोही मिल शत्रु संग,
ताहू जग रंग दिनदूना ही बढ़ाता है ।
ईश और भुज के भरोसे मेदपाट[2] खेलें,
यही दृश्य आज एबीसीनिया दिखाता है ॥1॥
देश की स्वतन्त्रता अखंड रखने के हेतु,
भौतिक सुखों को महाराना ठुकराता है ।
बांकी गिरिमाला की बिकट घनी घाटियों में,
घरि आततायिन के छक्के छुड़वाता है ।
दूत यमराज के से भील औ सुभटवीर,
मन्द बलिवेदी पर सरबस चढ़ाता है ।
धन्य मेदपाट ने लिखाये इतिहास पाठ
वे ही ठाठ आज एबीसीनिया दिखाता है ॥2॥

---

1 इटली के तानाशाह मुसोलिनी ने सन् 1936 में उत्तरी अफ्रीका के देश ईथोपिया (एबीसीनिया) पर आक्रमण कर उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया । इटली की विशाल सैनिक शक्ति और प्रचुर साधनों के सम्मुख इथोपिया जैसे साधन हीन देश का कोई मुकाबला न था । ठाकुर साहब ने इस युद्ध की तुलना मध्य युगीन दिल्ली साम्राज्य के बादशाह द्वारा मेवाड़ जैसे छोटे पार्वतीय राज्य पर किये जाने वाले आक्रमणों से की है ।

[redacted] मेवाड़ ।

निर्दय जर्मनी

कवित्त

मानवता कापि रहि धर्म सभ्यता के नाम,
दासता से दुखी मन जन अवनी के हैं।
नाजी व्यध नाज करैं करके अकाज आज,
फैले हुए कएए हलाहल की खनी[1] वे हैं।
बाल, वृद्ध दीन अबलाएँ कर कला झारि,
दूत यमराज सम तेलिया[2] बनी के हैं।
सहिहैं न भूमि भार व्है हैं अन्त स्यार छार,
कहि हैं न कोई [3]जम नीके[4] जर्मनी के हैं।

---

1 खान। 2 विष वृक्षा की झाडी। 3 कीटाणु। 4 भला।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जर्मनी के तानाशाह हर हिटलर ने जब सारे युरोप, मध्य एशिया और उत्तरी अफ्रीका के देशों को पददलित कर वहां के नागरिकों पर मनमाने अत्याचार ढाने शुरू किये तो उसकी भर्त्सना करते हुए ठाकुर साहब ने यह कवित्त 1 2 1941 को लिखा था।

मरसिया

श्रद्धा-सुमन

(श्रीमती माणिक कुंवर के प्रति)

श्लोक

प्राणेश्वरी मणि के स्वरूप में

अद्यापि त्वां कनक-चम्पक-दाम गौरी,
फुल्लारविन्दनयनां प्रतिपादरक्ताम् ।
देवी प्रसन्नवदना रसो दिव्य धारा,
प्राणेश्वरी मम मणि परिचिन्तयामि ॥

स्वर्णिम-चम्पक माला के समान गौर वर्ण वाली खिले कमल के समान नेत्र वाली, पति के चरणों में अनुरक्त सदा प्रसन्न रहने वाली, व्यवहार में दिव्य एवं मधुर रस प्रवाहित करने वाली मेरी प्राणाधार मणि ! मैं आज भी तुम्हें स्मरण करता हूँ।

प्रताप जननी के स्वरूप में

अद्यापि पावन चरित्र यशस्विनी त्वां
शक्तिस्वरूप तपसाहसतेजपुंजाम ।
धीरामुदात्तगुण गौरवमंडिताणी,
वीरा प्रतापजननी सतत स्मरामि ॥

पवित्र चरित्र वाली, यश धारण करने वाली शक्ति स्वरूपा, तप, साहस और तेज की निधि, श्रेष्ठ गुणों के गौरव से सुशोभित प्रताप की उस वीर जननी को मैं आज भी निरन्तर स्मरण करता हूँ।

[रचनाकाल—सन् 1927]

ये श्लोक ठा. साहब ने अपनी प्राणेश्वरी माणिक कुंवर के स्वर्गवास के पश्चात् उनके चित्र के नीचे सुंदर अक्षरों में लिखकर स्वनिवास माणिक भवन के मणि मंदिर में रख दिये। प्रतिदिन प्रातः सायं ठाकुर सा. और उनका परिवार इस चित्र को श्रद्धांजलि अर्पित करते थे। अपने हाथों चमेली की कलियों की माला गूंथ कर ठाकुर साहब उनके चित्र को समर्पित करते थे।

निवापाँजलि

(जीवन संगिनी श्रीमती माणिक कुंअर के वियोग में)

तेरे सिधाते हाय 'मणि' ।
अरमान मन का बह गया।
हा ! आँख के जल संग ही,
सर्वस्व मेरा बह गया ।
कोई किसी का है नहीं,
सब स्वार्थ ही का खेल हैं।
सुत हो सुता हो बंधु हो,
अब नहिं तिलों मे तेल है ॥

अतृप्त नयन युग्मने
गुंथे विचित्र मुक्ता हार।
दिये बिखेर रम्य पुष्प,
माणि ने अनेक बार।
उपेक्षणीय मान के,
रह गई बताय मौन।
मणी ! मणी !! मणी !!! रटूं
दिखाय हाय पथ कौन ?

अपनी आत्मकथा को सूत्ररूप में शब्द बद्ध करते हुए ठाकुर साहब ने जीवन संगिनी श्रीमती माणिक कुंअर के संबंध में कहा है –

' किंतु सब आधार में, प्राणेश्वरी का प्रान था।"

निस्संदेह ही वे ठाकुर साहब की साधना की भूमिका और संकल्पों के आधार शिला थी। इस सारी विपत्ती–परम्परा में उनके धैर्य का मेरुदंड कभी भग्न नहीं हुआ। उसका स्वर्गवास सन् 1927, आषाढ शुक्ला 4 को हुआ उसी असह्य वियोग में यह मरसिये लिखे गये।

मनहर

प्रेम पथ पाग वे अभागे प्रान दागे गये,
सत्य अनुरागे निज प्रन को निभाना है।
झांकी दुनिया की देख थाकी अखियां की हौंस,
मोह-पट ढाकी वह ज्योति प्रकटानी है।
माना है न घूमि फिर स्वारथ की भूमि लूंमि,
चूमि पद भव्य दिव्य अंक मे बिलाना है।
लागें नहीं नीके दिन फीके जिंदगी के अब,
जानें दुख जी के उनही के पास जानो है॥

सौंदर्य यौवन लोभ से जो भ्रमर हो गुजारते।
प्रेम को बदनाम करके स्वार्थ गोता मारते॥
आमरण एक अखंड रस में प्रेम की धारा बहै।
मन प्रान जीवन एक हो दो देह मैं बिलसे रहैं॥
है प्रेम और विकार इनका रंग रूप मिला जुला।
निःस्वार्थ की आहुति ही से भेद सब जाता खुला॥

प्राणों की गूंज

हरिगीतिका

प्रेम की बाजी लगाना सहज है संसार में।
विश्वास देकर मुडि चलें केतेहि तज मंझधार मे॥
भय लोभ और लिहाज से जो प्रेम प्रेम पुकारते।
समय पडन पर हहा !!! बेमौत वे ही मारते॥1॥
प्रान से प्यारी प्रतिज्ञा जो निभाते हैं सही।
अहा !!! बिरले वीर प्रेमी धन्य हैं जग में वही॥
मेरी प्रिया के प्रेम का अबहों मिला नहि पार है।
उस सती "मणि" गुणवती पर प्रान ये बलिहार हैं॥2॥

बिकट यह सत्य प्रेम की घाटी।
स्वारथ लागि करें सब प्रीती, यह जगत परिपाटी॥
बिरले वीर पार मे पहुचत करि तन मन की माटी।
प्रान निछावर किये बिना नहि टूटत तम की टाटी॥
प्रेम रूप परमातम पूजे, बिलसत भाग्य ललाटी।
"मणि के मोल बिक्यो यह जीवन, इसी नेहकी हाटी॥

दोहा

मणि कहि के पाखाण को, मूरख गल लटकाहिं।
मेरो वह साँचो 'मणी' हृदय माँहि बिलसाहि ॥1॥

जहर गुलामी का भरा प्याला चाटि पियाहि।
अब प्रण है भरिहो न फिर, ये लो उलट दियाहु ॥2॥

थूल उपासक आँखियाँ, क्यों नाहक तरसात।
वह सूरत मन मे बसी, लखो न भ्रति नियरात ॥3॥

नहिं जीवन नहिं मरण मे कहा दोप 'मणि' तोहि।
हा विधिना! कसी करी, कियो त्रिशकु मोहि ॥4॥

खीच गिरायो सिधु मे, दूर हटायो घाट।
लगे सिखावन हाय वे, अब सतोष को पाठ ॥5॥

विहँसत आग लगायके, गिनत न अपनो दोप।
तलफत प्रानन को निरखि कहत धरो सतोष ॥6॥

कसि विसास की पास मैं बेधन लागे तीर।
कथा कहत सतोष की, हू हा! प्रेम बेपीर ॥7॥

निज प्रिय तुच्छ वियोग मे, आप धरत नहिं धीर।
कहि सँतोष महिमा हमे, गिनि तुछ प्रेम फकीर ॥8॥

रे जिय क्यहु सुख न लिय, कियउ नाहि सतोष।
भ्रम वश फँस यस प्रेम मे, देत काहि पर दोष ॥9॥

बार बार भूल न बने, रहे प्रकृति इक टेक।
समझत बूझत अरुचि हो अतर जहाँ न एक ॥10॥

जग की सबही वस्तु है, नित उद्योग आधीन।
भाग्य भरोसे ही मिल, प्रेम हृदय सुख, तीन ॥11॥

आपहु आप उमग करि, बहत प्रेम के श्रोत।
एचाताची दुखद व्है, सरसहु नीरस होत ॥12॥

अति विसास की पास बँधि, परघो प्रेम की आड।
अपने ही हाथा खनी, मने अपनी गाड ॥13॥

कहा कहँ किससो कहूँ, बहत बने नहि पेष।
प्रेम कगाइ हाथ मे, दिय बिसास मे बेध ॥14॥

बिन गाहक नाहक बिकयो, यह दाहक निज मूल ।
अपनी ठोकर आप गिरि, रुदन यही दुख मूल ॥15॥

स्वारथ मय संसार यह, स्वारथहि सम्बन्ध अनेक ।
वह जीवन दुर्लभ जगत, होत हृदय मिलि एक ॥16॥

जो मणि सो चेजा करत, वो मणि के बिन नाग ।
धिन है जीवन ना रहे, यही प्रीत बडभाग ॥17॥

एक प्राण दो देह थे, इतनी हुई सहीन ।
यह "मणि" मेरे हृदय में, भई एक व्है लीन ॥18॥

बणजारे टांडो कियो, गयो जु आखिर लाद ।
चूल्हे राख गोबर रह्या, अजहूं दिलावत याद ॥19॥

श्री भोपालदान जी आढ़ा* के प्रति

भोपानो भारी हुव, पर हित साधन पथ ।
सो व्रत आप पालियो, आढे जीवन अंत ॥

राजाओं और भूमिपतियों के लिये भी देश सेवा एवं परोपकार का रास्ता दुरुह होता है परन्तु भोपालदान आढा ने जीवन के अंतिम क्षण तक उस महान व्रत का निर्वाह किया ।

---

* श्री भोपालदान जी आढा पंचेटिया (जिला पाली) एक प्रच्छन्न क्रान्तिकारी थे एवं ठाकुर साहब, कुंवर प्रताप तथा श्री जोरावरसिंह जी की क्रान्तिकारी गतिविधियों के अनन्य सहभागी थे। वे बनारस षडयन्त्र केस 1915 में एक फरार (absconding) अभियुक्त थे और इसी अवधि में उनका निधन हो गया। उनके स्वर्गवास पर ठाकुर साहब ने उक्त मरसिया कहा ।

अमर शहीद श्रीगणेशशंकर जी विद्यार्थी*

कवित्त

दीनन को बंधु हो पुजारी हो स्वतन्त्रता को,
साहस को सिन्धु अनुसारी सत्य-कथ को ।
निबल को बल हिय शूल अरिपथिन को,
साँचो श्री गणेश हो सुमांगलिक मथ को ।
सेवक अथक मातृभूमि को सपूत पूत,
अटल उपासी हो 'प्रताप'[1] वीर पथ को ।
मेधा को सुमल्ल स्वामि लेखिनी को वीर,
धीर धुर धोरी हो धुरीण हिन्द-रथ को ।

---

* अमर शहीद गणेशशंकरजी विद्यार्थी ठाकुर साहब के अनन्य मित्रो मे से थे । वे जब सन 1931 मे कानपुर मे शहीद हुए तो उनके प्रति यह मरसिया लिखकर उनके पुत्र को भेजा था । इस एक ही मार्मिक कवित्त मे मानो विद्यार्थीजी का सारा कृतित्व सूत्र रूप से समाहित है ।

1. विद्यार्थी जी द्वारा सम्पादित राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र "प्रताप" जिसका स्वतन्त्रता-संग्राम मे बडा योगदान रहा था ।

राव गोपालसिंह खरवा के प्रति

मनहर

परम उदार त्यागमूर्ति पुंज साहस को,
    क्रान्ति को पुजारी दुःख देश को सह्यो नहीं ।
भारती स्वतंत्र बलिवेदी पैं बिहँसि बढ़्यो,
    दासता विलासिता की धार में बह्यो नहीं ।
धीरज धुरीण सहि संकट अटल रह्यो,
    ईशभक्ति भिन्न अन्य आश्रय गह्यो नहीं ।
राष्ट्रवर राव श्री गोपाल के सिधाते स्वर्ग,
    आज राजपूतां का नमूना भी रह्यो नहीं ॥

महाराव उम्मेदसिंह जी कोटा के प्रति

दोहा

गुन-ग्राहक उम्मेद ने, किये प्रयान सुरथान ।
छटपटाय हा ! रह गये, कढे न ये धिक प्रान ।।

सवैया

भूप उम्मेद रहे हँसते अपराधहु पैं कटु बैन कह्यो ना ।
भाव उदार रखी समता, निज अन्य के धर्म में भेद गह्यो ना ।।
दीन दयाल विशाल हिये, खुद कष्ट सह्यो पर दुख सह्यो ना ।
गाज परी विधिना के अकाज पैं, आज गरीब निवाज रह्यो ना ।।

कवित्त

हा ! हा !! करि एक कोटि कंठ की कराल ध्वनि
उठी सब राजथान हाडा को निधन है।
क्रन्दन की भूक भूक नभ को बिलोड रही,
अंधकार भासे हा ! संसार उन बिन है।
सहत बन न या कलेजे की असह्य घात,
छीजें असहाय हाय ! हियो छिन छिन है ।
मोसे निरधार के आधार वे सिधार गये,
जग मे उमेद बिन जीवन कठिन है ।

दया का अथाह सिंधु प्रेम का प्रवाह यह,
    सच्चा नरनाह प्रजा सुख में भुला गया।
रच हू न कुटिल प्रपंच न्याय-मंच पर,
    राजा प्रजा बीच गांठ भक्ति की घुला गया।
जनता के जीवन में जीवन मिलाय सदा,
    ब्रह्म के समान व्यापि द्वैत[1] को भुला गया।
उजड़े बसाने वाला सूखे सरसाने वाला,
    नेह से हँसाने वाला जग को रुला गया ॥ 4 ॥

महाराव उम्मेदसिंहजी (कोटा) अपनी पीढ़ी के लोकप्रिय एवं सुयोग्य नरेशों में से थे। ठा० केसरीसिंह जी का उनके प्रति अति उच्च आदर भाव आजीवन बना रहा। महाराव साहब की बीमारी में स्वर्गवास के दो दिन पूर्व ही वे उनसे अंतिम बार मिलने गये थे। हृदय-स्थल से निकली हुई इस श्रद्धांजलि को सुनकर सभी के शोकाश्रु बहने लगे थे।

राजस्थानी काव्य

1 ईश-भक्ति

2. उद्‌बोधन

3 राष्ट्र-धर्म

4. क्षत्रि-धर्म

5. स्वधर्म

6. विविध

ईशभक्ति

गीत व्रजनाथ रो

निपट नेह अनछेह धर हिये नँदनद रो
भूरि आनद रो कोष भरवा।
फुरे नह फैल चित्त अविद्या फद रो,
कठिन अघ वृन्द रो नाश करवा ॥ 1 ॥

रात दन सहो क्यो ताप त्रय ताप री,
पाप रो बोझ किम बँधो पावा।
पैरवा चहोजो दुख सर आपरो,
नाम हरि आपरो करो नावा ॥ 2 ॥

चार मुख रटन्तो विधाता ताचियो,
बरण छहै पाचियो प्रणव बाजा।
चराचर विचाया हेक रस राचियो,
जाचियो जोग री सिद्धराजा ॥ 3 ॥

तिके घर नहच्वो नाथ अवतार रो,
जनम रा भार रो बीज भुलसे।
सधो उर धार सहसार ससार रो,
हमर री बार रो लाह हुलसे ॥ 4 ॥

तजे क्षण भग इण मोह मद गातरो,
सगती साथरो गहै सारो।
हेत कर चहोजो ज्ञानधन हाथ रो,
ध्यान व्रजनाथ रो मना धारो ॥ 5 ॥

भावार्थ

परमानद की प्राप्ति के लिये नन्द नन्दन भगवान् श्रीकृष्ण के अपरिमित प्रेम का अपने हृदय म धारण करो जिससे चित्त मे कभी अज्ञान का स्फुरण नही होगा और सदा के लिये दुर्दान्त पापा का नाश हो जायगा ॥ 1 ॥ व्यथ ही रात दिन इन त्रितापो (आध्यात्मिक आधि भौतिक, आधि दैविक) को सहन कर रहे हो और पापो की जजीर पावो के बाध रखी है। यदि इस दुख रूपी ससार सागर को सहज ही पार करना चाहते हो तो भगवान् के नाम की नौका बनाओ ॥ २ ॥ जिसके विरुद को ब्रह्मा ऋक, यजु, शाम अथर्वादि

चारों वेदों में वर्णन करते हैं, जो प्रणवरूप होकर वर्णाक्षरों में प्रकट हुआ है, जो ससार के सभी चेतन अचेतन पदार्थों में एक रूप होकर समाया हुआ है, उस परब्रह्म को समाधि योग द्वारा केवल सिद्ध योगेश्वरों ने जाना है ॥ 3 ॥ निश्चय ही वह अवतारों के स्वामी श्रीकृष्ण ही हैं। यदि इस बार मनुष्य जन्म का सच्चा आनंद लेना चाहते हो और आवागमन के बीज को (ज्ञानाग्नि द्वारा) समाप्त करना चाहते हो तो उस परमब्रह्म श्रीकृष्ण को अपने हृदय में धारण करो ॥ 4 ॥ इस क्षण भंगुर शरीर का मोह और अभिमान त्याग कर अतर्यामी श्रीकृष्ण की शरण जाओ। यदि प्रेमपूर्वक ज्ञानघन की प्राप्ति चाहते हो भगवान् श्री बृजनाथ का ध्यान मन में धारण करो ॥ 5 ॥

भगवती श्री करणी जी रा

सोरठा

निरो नाम निरधार, तारे अवतारां तणां ।
तू प्रतच्छ दातार, करनी ! 'केहर' ऊपरा ॥ 1 ॥

तेरे नाम का स्मरण मात्र ही निराश्रितों का आधार और अवतारों को भी तारने वाला है। हे भगवती करनी ! तू 'केसरीसिंह' पर प्रत्यक्ष कृपा करने वाली है।

वहियो विपतां ढेर, पाळो भ्रम कुल पालतां ।
अहो ! जगत अंधेर मरम न बूझै मावडी ॥ 2 ॥

हे माता ! चारण कुल के कर्तव्यों का पालन करते हुए मुझ पर नाना विध विपत्तियां आ पड़ी हैं। इस ससार में कितना अंधेर व्याप्त है कि कोई भी मेरे हृदय की पीड़ा को समझ ही नहीं रहा है।

धन सम्पत घर धाम, लालच वश नप लूटियो ।
तू मां ! अंतरजाम, कठिन दशा निज की कहूं ॥ 3 ॥

लोभ के वशीभूत हो राजा (शाहपुरा नरेश नाहरसिंह) ने मेरी धन-सम्पत्ति, जागीर और यहां तक कि आवास तक छीन लिया है। हे मां ! आप तो अन्तर्यामिनी हैं फिर अपने सकट की स्थिति का वर्णन आपके सम्मुख क्या करूं ?

धण धण हुयो कुटुम्ब, गाम धाम सब ही गया।
आप उवारो अम्ब ! बाईं !! पाछी वेल कर ॥4॥

मेरा पूरा परिवार छिन्न भिन्न हो गया है मेरा घर बार, जागीर सभी छीन लिये गय हैं। हे माता ! आप इस परिस्थिति से निकाल कर मेरी रक्षा करो।

हू पडियो हक मार, सकट सह मेरो सगत।
जामण जगदातार, विपत निवाहण वार तू ॥5॥

मुझसे सारे हक छीन लिए जाने के फल-स्वरूप, मैं सकटापन्न अवस्था मे हू। हे मा ! मेरे सारे कष्टो को दूर करो। आप ही जगज्जननी जगदाधार हो और विपत्तियो से रक्षा करने वाली हो।

ठा० श्री केशरीसिहजी से उनकी पुत्र-वधू द्वारा जगदम्बा श्री करनीजी की प्रार्थना के पाठ करने हेतु कुछ रच कर देने का अनुरोध करने पर ये सोरठे लिखे।

उद्बोधन

चेतावणी रा चूंगट्या

सन् 1903 की पहली फरवरी ब्रिटेन और भारत के वर्तमान भाग्य को भिन्न भिन्न पोशाकें पहिनकर आनेवाली थी। लॉर्ड कर्जन का औरंगजेबी दिमाग महीनों पहिले से इसी बात में गुंथा था कि भारत में अभूतपूर्व, प्रभावशाली, महान् से महान् शानदार "दिल्ली दरबार" किया जाय कि जिसे देख सुनकर ब्रिटेन के गौरव की जाज्वल्यमान प्रभा से संसार की आँखें चुंधिया जायें और जिस चक्रवर्ती सिंहासन पर बैठने का सौभाग्य आज तक किसी बड़े से बड़े अंग्रेज शाहंशाह के भाग्य में नहीं आया उस पर खुद बैठकर अपनी अमर कहानी छोड़ जाय।

इस दरबार की सफलता में तिलभर कसर न रहे, इसी सर्वांगपूर्णता की कल्पना में रात दिन इतिहासों में शाही दरबारों के विविध वर्णनमय पन्ने घिसे जा रहे थे, फरमानों में कागजी घोड़े दौड़ाये जा रहे थे। प्रत्येक बड़े देशी राज्य में स्वयं पहुंचकर बिना त्यौहार के ही जुलूस की सवारी निकलवाकर लार्ड तिलाड़ी के दो ले सों में अंकित की जारही थी, प्रत्येक नरेश कठपुतली की तरह नचाया जारहा था। उस समय कर्जन का चिन्तवन था दिल्ली दरबार, स्वप्न था–दिल्ली दरबार दिमाग था–दिल्ली-दरबार!

समय से बहुत पहिले ही सफल "दरबार" हो चुका था,–कागजी संसार में। परन्तु वहां केवल एक ही ऐसी जगह थी जहां कलम अटक जाती थी, नक्शा टेढ़ा हो जाता था। केवल उसी स्थल पर उमंग की तरंगों को ठेस पहुंचने से कर्जनी कल्पना का कोना व्यग्र हो उठता था, और वह व्यग्रता थी हिन्दूपति महाराणा–उदयपुर की स्वीकृति की आशंका! कहीं वह वीर सांगा व प्रताप का अनम्र रक्त अकड़ बैठे तो सब कांता पीआ कपास हो जाय। "लेकिन" घुस जाने से राजसूय यज्ञ अधूरा रह जाय। समग्र अकबर के हृदय में बसी हुई निष्फलता की हूक फिर लौट आय और कर्जनी दरबार तो किरकिरा हो हो जाय। अतः साम, दाम, दण्ड से विविध प्रोत्साहन, हितोपदेश, धमकी और मैत्री की दुहाई देकर भी जैसे बने उस वीर प्रकृति महाराणा फतहसिंह को जुलूस की शानदार सवारी में अपने हाथी के पीछे चला लेना, दरबार की सीढ़ी पर चढ़ा देना, पधारे हुए हाथों पर से नजराना उठाकर बादशाह की सेवा में दीनता के दो शब्द भेजने की प्रार्थना सुना लेना– बस, इतना तो होना ही चाहिये।

इस सिद्धि के लिये लार्ड कर्जन अपनी सारी शक्ति उदयपुर के ऊपर लगा रहा था। सचमुच ही महाराणा का स्वाभिमानी हृदय धकड रहा था "नहीं" कह चुका था। राजनैतिक तर्कों के दावघातों स मौखिक और कागजी मल्लयुद्ध हो रहा था। महाराणा के लिये रहा सहा भी खो देन का प्रसग था। अनध्र मेवाड के इतिहास पर काला छींटा ही क्या समूची दवात ही उलट देनी होगी। मेवाड का प्रत्यक रक्तबिन्दु जहां कहीं भी था, महाराणा की दृढता पर भरोसा रखकर गौरव से फूल रहा था। भारत के नक्षत्री सात सौ नरेशा ने हँसते, नाचते कूदते अपने सोने-चांदी के दण्ड कमण्डल और ऊँचे डेरे दिल्ली मे जा डाले थे। वे किस अदब मे कदम उठायेंगे और कसे लटक कर सलाम करेंगे, इसकी परीक्षा पूरी करके सजधज कर दिल्ली के लिये स्पेशल ट्रेन की राह ताक रहे थे। परन्तु मेवाड मे था केवल सन्नाटा, कहीं कुछ हलचल नही।

परन्तु जहा पठान और मुगल साम्राज्यों की लाखो तीर-बर्छी की अनियां निष्फल हुई, वहा कूटनीतिपटु कर्जन के काले मुँह की घूत लेखनी की दुजिह्वा नोक काम कर गई। कड़ाई के सामने वज्रवत् बन जाना महाराणा के रक्तबिन्दु मे समाया था। अस्त्र बन्दर घुडकियो के आगे वे डटे रहे। किन्तु ज्योंहि कल्पना से भी अधिक कर्जनी नम्रता न उनके चरण चूम, त्योंहि वे ढील हो गये। दिल्ली के लिये "हा" कह दिया। चारो ओर बिजली सी दौड गई। केवल मेवाडी हृदय ही नही, प्रत्युत् भारत का यावन्मात्र हिन्दू हृदय दहल उठा, विश्वास की कमर टूट गई। परन्तु कोई क्या कर सकता था? निरकुश नरेन्द्र को रोकने का साधन कहा?

ज्योंहि खबर मिली कि महाराणा आखिर दिल्ली जायेंगे ही, क्षात्रस्वातन्त्र्य के पुजारी एक चारण हृदय पर असह्य चोट पहुचना स्वाभाविक था। फलाफल की कल्पना, हानि एव विडम्बना की विभीषिका को धक्का मारकर स्वजातीय कर्तव्य-भाव जाग्रत हो उठा। आन्तरिक ज्वाला की प्रेरणा हुई,- चाहे रुकें, या न रुकें महाराणा को क्षात्रस्वरूप का ज्ञान कराना ही चाहिये। इसी उद्देश्य को लेकर राजपूतो के लिये सुबोध और वीर रस मे प्रभावशाली डिंगल [मरु] भाषा मे तेरह सोरठे उदयपुर लिख भेजे गये। सत्य की ओजस्वी भाषा का प्रभाव कहां नही होता? सौ कोस से पत्र पहुचने मे देरी अवश्य हो गई। दिल्ली की स्पेशल मे बैठ जाने पर और चित्तौड से कुछ आगे बढ जाने पर स्पेशल में ही वे सोरठे महाराणा फतहसिंह जी के हाथ मे दिये गये और पढे गये। परम गभीर महाराणा के मुँह से सहसा निकल ही पडा कि "यदि ये सोरठे उदयपुर मे मिल जाते तो हम वहाँ से रवाना ही नहीं होते। खर, बीच से लौट आना ठीक नही। दिल्ली पहुचने पर देखा जायगा।"

महाराणा ने क्या कर दिखाया वह विश्वविदित है। अभिमानी लार्ड कर्जन की जुलूसी सवारी और बड़ा दरबार महाराणा से खाली था। कर्जनी कुचक्रों पर पानी फिर गया। उस पहली फरवरी के मध्याह्न मे शाहंशाह का प्रतिनिधि कर्जन सिंहासन पर बैठकर भरे दरबार मे महाराणा की खाली कुर्सी को ताक रहा था। ठीक उसी समय उदयपुर की स्पेशल ट्रेन महाराणा को हृदय मे रखकर विजयनाद करती हुई स्वतन्त्रता की वेदी चित्तौड़ की ओर सन्नाटे से दौड़ रही थी। हिंदूपति को इस गौरव रक्षा मे प्रेरित करने वाली वह कविता निम्नलिखित है -

सौराष्ट्री दोहे [सिंधु राग में]

पग - पग भम्या पहाड़ धरा छांड राख्यो धरम ।
(ईसू) महाराणा' र मेवाड़, हिरदे बसिया हिंद रै ॥ 1 ॥

जंगलों और पहाड़ों मे दरबदर होकर पैदल भटकते फिरे और राज्य का मोह छोड़कर धर्म की रक्षा की। इसलिये ही महाराणा" और 'मेवाड़" ये दोनों शब्द हिन्दुस्थान के हृदय मे बस गये।

घणा घलिया घमसाण, [ताई] राण सदा रहिया निडर
(अब) पेखंता फुरमाण हलचल किम फतमल ! हुव ॥ 2 ॥

अनेक भयानक घोर युद्ध हुए तब भी महाराणा सदा निर्भय बने रहे किंतु अब सिर्फ शाही फरमानों को देखते ही हे फतहसिंह ! यह हलचल कैसे मच गई ?

गिरद गजां घमसाण, नहचै धर माई नहीं ।
(ऊ) मावै किम महाराण, गज दो सै रा गिरद मे ॥ 3 ॥

निश्चय ही जिसके मरोन्मत्त हाथियों द्वारा युद्धस्थल में उड़ा हुआ गर्दा पृथ्वी में नहीं समाता था वह महाराणा (दिल्ली दरबार की जगह उसके लिये दिये गये) दो सौ गज के गिरदाव [घेरे] मे कैसे समा जायेगा ?

ओरां ने आसान हाकां हरवल हालणो ।
(पण) किम हालै कुल राण, (जिण) हरवल साहां हंकिया ॥ 4 ॥

दूसरे राजाओं के लिये आसान है कि वे शाही सवारी मे हंकाले जाने पर आगे आगे चलते फिरें किन्तु वह प्रतापी गुहिलवंश उस तरह कैसे चलेगा जिसने बादशाहों को अपनी हरोल मे हंकार लिये थे ?

नरियद सह नजराण, झुक बरसी सरसो जिकाँ।
(पण) पसरलो किम पाण, पाण छता थारो पता ॥ 5 ॥

जिनके लिये सहज है वे सब राजा लोग तो झुक झुक करके नजराने दिखा सकेंगे परन्तु, महाराणा फतहसिंह ! तेरे साथ मे तलवार होते हुए नजराने के लिये हाथ कैसे पसेगा ?

सिर झुकिया सह शाह सीहासण जिण सामने।
(अब) रलणो पगत राह फाव किम शोने फता ॥ 6 ॥

जिस सिंहासन के सामने बादशाहो के सिर झुके हैं उसके अधिकारी होते हुए हे फतहसिंह ! तुझे पक्ति म आसन प्राप्त करना कैसे शोभा देगा ?

सकल चढावे सीस, दान-धरम जिण रो दियो।
सो खिताब बखसीस, लेवण किम ललचावसी ॥ 7 ॥

जिसके दिये हुए धर्मसयुक्त दान को ससार सिर पर चढाता है वह (हिन्दूपति) खिताबों की बखशीश लेने के लिए कैसे ललचावेगा ?

देखेला हिंदवाण, निज सूरज दिस नेह सू।
पण 'तारा'[1] परमाण, निरख निसासा न्हाकसी ॥ 8 ॥

समस्त हिन्दू अपने सूय की ओर जब स्नेहसिक्त आखो से देखेंगे और उस समय वह एक तारे के रूप मे दृग्गोचर होगा तो वे अवश्य ही परिताप के निश्वास डालेंगे।

देखे अजस दीह, मुलकेलो मनहीमना।
दभी गढ दिल्लीह, सीस नमतां सीसवद ॥ 9 ॥

हे शीशोदिया ! तेरे शिर को अपने सामने झुकता हुआ देखकर दिल्ली का वह दभी दुर्ग इस अवसर को अपने लिये अभिमान का समझकर अहकार से ही मन ही मन खूब मुस्करायेगा।

---

1 "स्टार आफ इंडिया" का खिताब जो राजाओ को मिलता था।

महाराणा ने क्या कर दिखाया वह विश्वविदित है। अभिमानी लार्ड कर्जन की जुलूसी सवारी और बड़ा दरबार महाराणा से खाली था। कर्जनी कुचक्रो पर पानी फिर गया। उस पहली फरवरी के मध्याह्न में शाहंशाह का प्रतिनिधि कर्जन सिंहासन पर बैठकर भरे दरबार में महाराणा की खाली कुर्सी को ताक रहा था। ठीक उसी समय उदयपुर की स्पेशल ट्रेन महाराणा को हृदय में रखकर विजयनाद करती हुई स्वतंत्रता की वेदी चित्तौड़ की ओर सन्नाट से दौड़ रही थी। हिंदूपति को इस गौरव रक्षा में प्रेरित करने वाली वह कविता निम्नलिखित है

सौराष्ट्री दोहे [सिंधु राग में]

पग - पग भम्या पहाड़, धरा छाड़ राख्यो धरम ।
(ईंसू) महाराणा' र मेवाड़, हिरदे बसिया हिंद रै ॥ 1 ॥

जंगलों और पहाड़ों में दरबदर होकर पैदल भटकते फिरे और राज्य का मोह छोड़कर धर्म की रक्षा की। इसलिये ही 'महाराणा' और 'मेवाड़' ये दोनों शब्द हिन्दुस्थान के हृदय में बस गये।

घणा घलिया घमसाण, [तोई] राण सदा रहिया निडर
(अब) पेखंता फुरमाण हलचल किम फतमल ! हुव ॥ 2 ॥

भयानक घोर युद्ध हुए तब भी महाराणा सदा निर्भय बने रहे किंतु अब सिर्फ शाही फरमानों को देखते ही हे फतहसिंह ! यह हलचल कैसे मच गई ?

गिरद गजां घमसाण नहचै धर माई नहीं ।
(ऊ) माव किम महाराण, गज दो सै रा गिरद में ॥ 3 ॥

निश्चय ही जिसके मदान्मत्त हाथियों द्वारा युद्धस्थल में उड़ा हुआ गर्दा पृथ्वी में नहीं समाता था वह महाराणा (दिल्ली दरबार की जगह उसके लिये दिये गये) दोसौ गज के गिरदाव [घेरे] में कैसे समा जायेगा ?

ओरां ने आसान, हांका हरवल हालणो ।
(पण) किम हाले कुल राण, (जिण) हरवल साहां हंकिया ॥ 4 ॥

दूसरे राजाओं के लिये आसान है कि वे शाही सवारी में हकाले जाने पर आगे आगे बढ़ते चलें किन्तु वह प्रतापी गुहिलवंश उस तरह कैसे चलेगा जिसने बादशाहों को अपनी हरोल में हकाल लिये थे ?

नरियद सह नजराण, झुक करसी सरसी जिकां।
(पण) पसरैलो किम पाण, पाण छतां थारो फता॥ 5 ॥

जिनके लिये सहज है वे सब राजा लोग तो झुक झुक करके नजराने दिखा सकेंगे परन्तु, महाराणा फतहसिंह! तेरे साथ में तलवार होते हुए नजराने के लिये हाथ कैसे फलेगा?

सिर झुकिया सह शाह, सींहासण जिण सामने।
(अब) रलणो पगत राह, फावै किम तोने फता॥ 6 ॥

जिस सिंहासन के सामने बादशाहों के शिर झुके हैं उसके अधिकारी होते हुए हे फतहसिंह! तुझे पंक्ति में आसन प्राप्त करना कैसे शोभा देगा?

सकल चढावे सीस, दान-धरम जिण रौ दियो।
सो खिताब बखसीस, लेवण किम ललचावसी॥ 7॥

जिसके दिये हुए धर्मसयुक्त दान को ससार सिर पर चढाता है वह (हिन्दूपति) खिताबों की बखशीश लेने के लिए कैसे ललचावेगा?

देखेला हिंदवाण, निज सूरज दिस नेह सूं।
पण 'तारा'[1] परमाण, निरख निसासा न्हाकसी॥ 8 ॥

समस्त हिन्दू अपने सूर्य की ओर जब स्नेहसिक्त आखों से देखेंगे और उस समय वह एक तारे के रूप में दृग्गोचर होगा तो वे अवश्य ही परिताप के निश्वास डालेंगे।

देखे अजस दीह, मुलकेलो मनहीमना।
दभी गढ दिल्लीह, सीस नमतां सीसवद॥ 9 ॥

हे शीशोदिया! तेरे शिर को अपने सामने झुकता हुआ देखकर दिल्ली का वह दभी दुर्ग इस अवसर को अपन लिये अभिमान का समझकर अहकार से ही मन ही मन खूब मुस्करायेगा।

---

1 "स्टार आफ इंडिया" का खिताब जो राजाओं को मिलता था।

अंत बेर आखीह, पातल जे बातां पहल ।
(वे) राणा सह राखीह जिण री साखी सिर जटा[1] ॥ 10 ॥

महाराणा प्रताप ने अपने अंतिम समय में जो बातें पहिले कही थीं उनको अब तक सब महाराणाओं ने निभाया है और इसकी साक्षी तुम्हारे सिर की जटा दे रही है ।

'कठिण जमानो' कोल, बांधै नर हीमत बिना ।
(यो) बीरां हंदो बोल, पातल सांगै पेखियो ॥ 11 ॥

मनुष्य अपने में हिम्मत न होने पर ही यह सिद्धांत बांधा करता है कि 'जमाना मुश्किल है" – इस वीर वाणी के रहस्य को महाराणा सांगा और प्रताप हृदयंगम किये हुए थे ।

अब लग सारां आस, राण रीत कुल राखसी ।
रहो सहाय सुखरास, एकलिंग प्रभु आप रै ॥ 12 ॥

अब तक भी सबको आशा है कि महाराणा अपनी कुल परंपरा की रक्षा करेंगे । सुखराशि भगवान् एकलिंग आपके सहायक बने रहें ।

मान मोद सीसोद, राजनीत बल राखणो ।
(ई) गवरमिंट री गोद फल मीठा दीठा कठा ॥ 13 ॥

अपनी प्रतिष्ठा और प्रसन्नता को राजनीति के बल से कायम रखना चाहिये । हे केसरीसिंह ! इस गवर्मेंट की शरण में जाने से क्या कभी मधुर फल पाओगे ?

---

1 महाराणा प्रताप की की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार महाराणा सिर के बाल नहीं कटाते थे ।

मेवाड़ के महाराज कुमार भोपालसिंह[1] एवं महाराणा फतहसिंह के प्रति

दोहा (डिंगल)

मट्ठ सदा मेवाड़ री, राखी फतमल राण ।
मलीव पणारा काल मे, है बब्बर हिंदवाण ॥ 1 ॥

महाराणा फतहसिंह ने मेवाड़ की परम्परागत आनबान को सदा सुरक्षित रखा। अत इस गये-गुजरे जमाने म भी सारे भारत मे केवल वे ही एकमात्र स्वाभिमानी शेर हैं ।

स्वाभिमान साँखै नहीं, इण बेळां अगरेज ।
फोडे घर घेर्‌यो फतो, तू हथियाय अतेज ॥ 2 ॥

इस समय ब्रिटिश सरकार किसी को भी स्वाभिमानपूवक नही रहने देती। उन्होंने आपका घर फोड लिया और आप जसे निबल राजकुमार को अपने पक्ष मे मिलाकर महाराणा को चारो ओर से घेर लिया है ।

यू भाखै दुनिया अखिल, राखै मन दुख रोस ।
सुख साम्व किम सुभचहा, भाख धरम भरोस ॥ 3 ॥

इस कारण सभी लोगो के मन मे दुख और रोष है। जो आपके शुभ चिंतक हैं वे भला इसम कसे सुख मान सकते हैं ? अत स्वधम के विश्वास पर ही यह सब कुछ कह रहे हैं ।

माणहाण व्है राण री, तह अधिकारा ताण ।
तो बापो कुल-काण तज, की साध कल्याण ? ॥ 4 ॥

यदि अधिकारा की ऐंचातानी को लेकर स्वय महाराणा की ही मान हानि हाती है तो आप बापा वश की मर्यादा को तिलाजलि देकर कौनसे कल्याण की कामना कर रहे हैं ?

(सदम-टिप्पणी)

1 महाराणा फतहसिंह और महाराजकुमार भूपालसिंह पिता-पुत्र मे अधिकार प्राप्ति को ऐंचातानी खडी होकर जब परस्पर वैमनस्य बढ़ने लगा तब महाराजकुमार को लिखी गई रचना । (समय 1925 ई)

मोडैं मुख माठा मना, जे चौठे निज बाप ।
धरे सपूता धरम लख, चरणा महँ सिर थाप ।। 5 ।।

यदि कारणवश मन में न चाहते हुए भी पिता पुत्र से कभी विमुख हो जाय तो सपूत वही है जो पिता के चरणों में झुक जाय ।

प्रेम न जोखँ बाप रो, लाह् हिसाबा लाग ।
धन धन वा पूता धरा, पग पग बणे प्रयाग ।। 6 ।।

जो पितृ-प्रेम के सम्मुख अपने स्वार्थ को तुच्छ समझते हैं, ऐसे सपूत धन्य है । वे जहा जाते हैं- उनके चरण जहा जहा पड़ते हैं-तीर्थराज प्रयाग बन जाता है ।

चूडे हसतो छाडियो, सुख सपत सब साज ।
पितु-भगती रो पारखु, जग सपूत सिरताज ।। 7 ।।

राव चूडा ने तो हँसते हँसते राज्य सिंहासन और सारी सुख सम्पत्ति को ही तिलाञ्जलि दे दी । वह सच्ची पितृ-भक्ति की महत्ता को समझने वाला था इसीलिए आज भी ससार के सपूतो मे शिरोमणि माना जाता है ।

सगत रूठे सेवियो सत छोडे पतसाह् ।
पातल पख पाछा वनें, राखी कुल-धम राह् ।। 8 ।।

महाराणा प्रतापसिंह से रुष्ट होकर छोटे भाई शक्तिसिंह ने स्वधर्म त्याग कर बादशाह अकबर की सेवा स्वीकार की । लेकिन वह पुन (हल्दीघाटी के युद्ध मे) प्रतापसिंह के पक्ष मे आकर मिल गया और इस प्रकार अपने कुल धर्म को बचा लिया ।

कँवर पतै चाढयो कलश, कर जोडे व्है कद ।
पितु-भगती सिर ऊपरा, भालें कुलधरम भेद ।। 9 ।।

कुँवर अमरसिंह ने धर्म की मर्यादा पालन करते हुए पिता की आज्ञा रूपी बंधन को स्वीकार कर मानो पितृ-भक्ति रूपी मंदिर के यश का कलश चढ़ा दिया ।

उणहिज कुल म आपरो थिर झरणायो थाल ।
विरुद बडा रा बापजी, भालीजे गोपाल ।। 10 ।।

हे गोपाल सिंह ! उसी महान् वंश में आपके जन्मोत्सव पर (छुगिया में) थाल बजाये गये थे । अतः आपको अपने पूर्वजो के यश की ओर देखना चाहिए ।

सीख रखता त्याग री भीख नरक पथ भाल ।
लीख लाज बडका लयण, भल सीख भोपाल ॥ 11 ॥

त्याग की महत्ता बनाये रखने मे आपको अपने पूवजो से शिक्षा लेनी चाहिए । वे किसी प्रकार की याचना को नरक तुल्य समझते थे । फिर आप इस प्रकार अग्रेजो से अधिकार प्राप्ति हेतु याचना क्यो कर रहे हो ?

हित चिन्तक बण, हुलस हेंम, जोडयो कपटया जाल ।
तिण घेरा सू आछटे, भागीजे भोपाल ॥ 12 ॥

प्रपचियो ने अपनी स्वाथ सिद्धि हेतु झूठी हितैषिता बताते हुए यह जाल बिछाया है । हे भोपालसिंह ! आप इनको उपेक्षा कर इस घेरे से शीघ्र दूर हो जाइये ।

वृद्ध वेस माठी बखत, घाटी कठिण घणीह ।
लाठी चोरा लूटता, धोके दुखी धणीह ॥ 13 ॥

महाराणा फतहसिंह की वृद्धावस्था है और समय प्रतिकूल है जिससे उनके लिये यह घाटी पार करना निस्सदेह बडा कठिन है । ऐसे समय मे अपने हाथ से पुत्र रूपी लाठी को लूटे जाते देखकर महाराणा बहुत दुखी हैं ।

यो घर रहियो आपरो, आज लगा अकलक ।
है आशा तो हाथ हूँ, पडे न छीटा पक ॥ 14 ॥

आपका यह महान् वश आज तक तो निष्कलक रहा है ! आशा है अब आपके हाथो इस पर पितृ-द्रोह रूपी कलक के छींटे नही पडेंगे ।

मेवाडा मत मान जो, चुगला मुख चाडाह ।
पर वाडा लख पातला, हस सी रजवाडाह ॥ 15 ॥

हे मेवाड के (भावी) स्वामी ! आप इन चाटुकारो की चिकनी चुपडी बातो मे मत आइये अ यथा आपको इन खोटे करतूतो को देखकर अन्य सभी रियासतो वाल तिरस्कार से हसेंगे ।

सह सत्ता सह साहबी, पितु चरणा कर पेस ।
अदवा चावे आंगली, दूणो अजसे देस ॥ 16 ॥

यह सारी सत्ता और ठकुराई पिता के चरणो म समर्पित कर दीजिये जिससे यह चाटुकार तो आश्चय से दातों तले अगुली दबावें और देशभर मे दुगुना हप होगा ।

बाद में जब उपरोक्त उपदेश का कुछ भी असर न हुआ बल्कि महाराणा को उदयपुर से ही हटाने का उद्योग किया जाने लगा तब इस धृष्ठता पर निम्नलिखित कविता फिर राजकुमार को लिख भेजी—

हाय मेवाड़ !

दोहा

अभिनय औरंगजेब को, होत उदयपुर हाल ।
कँहू मुजरा को लेत वह, कँहू कुकिया कगाल ।। 1 ।।

मनहर

एहो एकलिंग ! अहो आपकी अगम लीला,
उदयाचल अंग पै चढाय दें अपग को ।
धाम धन मन बूझि जवनन तें भूझि-भूझि,
पीढिन लौं सह्यो दुख हँसि हँसि जग को ।
कुल अकलंक राख्यो वाह वाह विश्व भाख्यो,
चाख्यो फल हिंद पुण्य जीवन प्रसग को ।
हाय यही आज उस पावन पुहुमि[1] ही मे,
खेल्यो जात खेल गिनि गुह अवरग[2] को ।। 2 ।।

कवित्त

हिंदु तीथकर ही के घर में अँधेर छायो,
दाग को दिखायो बापा वश की महत्ता पैं ।
नाचत अधम स्वाथ न्याय नीति चोला चाढि
पाचत है पाप पुंज थूकि धर्म सत्ता पैं ।
चूंडा को पवित्र पाट पढि अवरँग पाठ,
लाग्यो आज आजमान वृद्ध बाप फत्तापैं ।
साट सुख साज कुल लाज भई ऐसी तैसी
गाज गिरो ऐसी या मवाज राज सत्ता पैं ।। 3 ।।

---

1 भूमि, 2 औरगजेब बादशाह

पूर्वलिखित निंदात्मक काव्य से सम्भव है पुत्र-मोहवश महाराणा को बुरा लगा हो अतः उनको भी एक कवित्त लिख भेजा—

कवित्त

वीर वसुधा के बीच बाहुज विरल रहे,
उनके उदार हाथ ताका अभिलाखो हो ।
कायर कुक्षत्री व्है कुबेर तोहू कामके न,
चामके खिलोन और रच हू न भाखो हो ।
तजि कुल पथ बहै वहै सहै बैनबान,
यही धम मेरो अभिमान तें न भाखा हो ।
बिरुद निबाहन में आप हो अम्ल राण,
(तो) चारण पन की टेक मैं हू कुछ राखा हों ।।4।।



चाबुक–स्पर्श[1]

(तत्कालीन राजाओं को लक्ष्य करके)

सोरठा

अवगो अब ओछीह , सोचीज सह भूपतया ।
पड़गी पख पोचीह , नीत सलोची नहँ रखो ॥ 1 ॥

हे भूपतियो ! सोचिये, समय कम रह गया है । आपका पक्ष निबल हो गया है क्योंकि आपने अपनी नीति को सही और व्यवस्थित नहीं रखा ।

खाग्यो वणका साज, रजवट बट खावे रघू ।
रहसी नहँ ये राज, आज लगा जिण विध रह्या ॥ 2 ॥

आपने राजपूती शान को खोकर बनियापन का रूप सज लिया है , परंतु अब तक जिस प्रकार रह रहे अब ये राज्य नहीं रहेंगे ।

दुख सह झले देह प्रजा पूत सम पालता ।
(अब) झूठ प्रपच सजेह , लूटीजे घर ही नवा ॥3॥

पहले सब तरह के दुख अपने शिर लेकर प्रजा का पुत्रवत आप पालन करते थे और अब झूठ एवं प्रपंचों के द्वारा उसके घर लूटे जाते हैं ।

हो न पराया हेत राजा या घर रावरो ।
खाण लगा क्यूं खेत , बाड़ रूप बणिया रह्या ॥4॥

आप गैरों (अंग्रेजों) के पक्ष में मत जाइये क्योंकि हे राजाओ ! यह घर आप ही का है । आप जिस खेत के बाड़ रूप (रक्षक) बने रहे थे उसीको क्यों खाने लगे हैं ?

पग पग जरखा पीट , नीठ आज लग यों निभी ।
पण अब परजा दीठ , खुली मीठ शंकर विना ॥ 5 ॥

पग पग पर जूते खाकर भी अब तक ज्यों त्यों कर प्रजा आपके साथ निभती रही । परन्तु अब उसका ज्ञानचक्षु शंकर के तीसरे नेत्र के समान खुल गया है ।

---

1 यह उद्बोधनात्मक सोरठे द्वितीय असहयोग आन्दोलन (1930 31) के समय राजाओं को स्वधर्म एवं युग के तकाजे का भान कराते हुए लिखे गये थे ।

परजा जितै श्रजाण, महिप हालिया मनमतै ।
बरतै मित्र प्रमाण, पंदरह बरसां पूतडो ॥6॥

प्रजा जब तक अबोध थी, आप लोग मनमाने चलते रहे। लेकिन ख्याल रखिये होशियार होने पर तो पुत्र के साथ भी मित्र के समान व्यवहार करना उचित होता है।

निरभै हित निरभेल, जे नर चाहैं राज रो ।
बस चुगला इण वेल, जेल माह पटको जिका ॥7॥

जो लोग बिना किसी लाग लपेट के निर्भय होकर राज्य का हित-साधन चाहते हैं, उनको आप चुगलखोरों की बातों में आकर जेल में ठूँस देते हो।

नभ सोभा निरखाय, ऊंचा नैणा आप रा ।
(पण) अब जहाज अथडाय, आगे भालो अधपत्यां ! ॥8॥

आपकी ऊँची निगाहें, ऊपर आकाश की शोभा देख रही है, किन्तु अधिपतियो ! जरा आगे देखो, आपका जहाज अब टकराने वाला है।

ऊपर रै आधार, पग समेट झूले पडया ।
की जाणै करतार (कद) खसक पडै खतिया कडा ॥9॥

ऊपर के सहारे के बल पर अर्थात् ब्रिटिश सर्वोच्च-सत्ता के आधार पर आप पैर सिकोड कर झूले में पड़े हुए हो, लेकिन जिस जंग खाये हुए कड़ो के भरोसे पर आप हो, वे ईश्वर जाने, न मालूम कब खिसक पड़ेंगे -- कुछ पता है ?

जीवन अहलो जाय, सहल शिकार सलाम मे ।
माटी मौज उडाय, परजा विलखै पेट मे ॥10॥

आपकी जिन्दगी दुआ-सलाम, सैर-सपाटे और शिकार मे बरबाद हो रही है, जोरावर लोग मौज उडा रहे हैं, और उधर प्रजा उदर-पूर्ति के लिये बिलख रही है।

हुकमत गी पर हात, घर में खूणें घालिया ।
बालक भी या बात, जाएा चुक्या जग मांहिनें ॥11॥

अब यह बात बच्चे तक भी जान चुके हैं कि आपकी हुकूमत पराये (अंग्रेजों) के हाथ में चली गई है और आप अपने ही घर के कोने में मताहीन बनाकर बिठा दिये गये हो।

दोहा

किया करै कठपूतली हाथ्या बैठ हुगाम ।
अजब तमाशो आज रो, देखीजै बिन दाम ॥12॥

आजकल हाथियों पर सवार होकर जो आपके जुलूस निकलते हैं, वे लोगों की निगाह में कठपुतली के खेल के समान हैं और बिना पैसों का तमाशा दिखाया जा रहा है।

साद प्रजारो सीवियो, फिट कानूना फास ।
ज्वालामुख ज्यू जाणजे सो धुंधवायो सांस ॥13॥

वाहियात कानूनों में फास कर आपने प्रजा की आवाज को सी तो दिया है परन्तु ध्यान रखना, वह घुटा हुआ श्वास ज्वालामुखी साबित होगा।

कै जगल रणवास कै, कै उडता आवास ।
जाय जमारो राज रो हालै प्रजा निसास ॥14॥

आपका जीवन जगल में (शिकार में) जनाने में (ऐशोआराम में) या आकाश विचरण में बीतता है और असहाय प्रजा यह देख देख कर निःश्वास छोड़ती है।

रूस, चीन, जरमन, तुरक; आदि हुता पतसाह ।
व सिंहासण कित गया, सोचीजे नरनाह ॥15॥

नरपतियो! जरा सोचो, रूस, चीन, जर्मनी और टर्की आदि देशों में भी जो शाहंशाह थे उनके सिंहासन आज कहां है?

परजा हो पलटाविया, अणचीत्या बिन फोज ।
काल्ह जिका घर गजता, आज मिलै नहँ खोज ॥16॥

कल तक जो पृथ्वी को रौंद रहे थे उनके तख्तो को प्रजा ने ही अकस्मात बिना सेना की सहायता के उलट दिया और आज उनका कही नाम निशान भी नही है ।

समैं पलटता जेज नहँ, जठै प्रजा जुभलाय ।
धर-धूजण बस की चलै, पल मे महल ढहाय ॥17॥

जहा प्रजा झुभला उठती है,राज्य-क्राति हो जाती है तो समय को बदलते देर नही लगती । भूकम्प होने पर क्या किसी का कुछ वश चल सकता है? क्षण-भर म महल ढह पडने है ।

सुखी समृद्ध ब्रिटानिया, जॉरज-सुत ने जोय ।
ऊहिज मारग आदरो, सुख रो नीदा सोय ॥18॥

अब तो आपको भी उचित है कि आप समृद्ध और सुखी ब्रिटन के जाज-तनय को देखो और उसी माग को ग्रहण करो और उसी के समान सुख की नीद सोओ (राज्य प्रजा को सौंप कर) ।

आछा कामा ऊधमो, धणिया निज धन रास ।
नहँ तो नेडा आवणा, महल मजूरा बास ॥19॥

स्वामियो ! अपनी धन-राशि को उत्तम कामा मे खुले दिल स खच करो वरना इन महला मे मजदूरो के निवास के दिन नजदीक आते प्रतीत हाते हैं ।

सोरठा

पितु सम ताजी प्रीत, कर राजी परजा करण ।
निम जाझी सुध नीत, है वाजी हाता हण ॥20॥

पिता के समान अभिनव प्रीति से प्रजा को खुश करने के लिय आप शुद्ध उत्तम नीति का अवलम्बन करो तो अब भी बाजी आपके हाथ मे है ।

नर सुख गाफल नींद, जाग्‌णू बडवो जागणो ।
(पण) वला चँवरी बींद, जाग हुवे जभेंडणो ॥21॥

जानता हूं कि गफलत की नींद के सुख में मनुष्य को जगाना बहुत बुरा मालूम होता है किन्तु क्या सभी नहीं जानते कि लग्न के समय पर तो दूल्हे को झटके देकर भी जगाना पड़ता है !

सोरठा

खत्रवट माहे खोट, दखे दुख पावे दुसह ।
(जद) चारण चुभती चोट, हिरदैं सबदां री हणैं ॥22॥

चारण आपके हृदय पर तभी अपने शब्दों की चुभती हुई चोट पहुंचाता है जब उसे आपके क्षात्र-धर्म में कमी नजर आती है और उससे उसको असह्य वेदना होती है ।

नृप ! नहँ व्हो नाराज, स्वीकारे सत सांपरत ।
भाखी ईहग आज, हित री बातां हत थी ॥23॥

राजाओ ! नाराज मत हो जाना । प्रत्यक्ष सत्य को स्वीकार करके ही आपके लाभ की बातें आज प्रेम के वश ही मैंने कह दी हैं ।



इतिहास-रसिक राजपूतों के प्रति

दोहा

जयचद को इतिहास पढ़ि सिर धुनले हो आज ।
अपनी करनी पे तुम्ह, धिक नहिं आवत लाज ॥

हे क्षत्रियो ! जयचन्द के इतिहास को पढ़कर तुम पश्चाताप करते हो पर धिक्कार है अपनी देशद्रोही वृत्तियों पर तुम्हें तनिक भी लज्जा नहीं आती ।

नाम लेत नृप मान को, सिलवट परत लिलार ।
कुल घाती निज कर्म पे, क्यों नहिं करत विचार ॥

राजा मानसिंह कछवाहा का नाम लेने मात्र से [उसके देशद्रोही कर्मों के कारण] तुम्हारे ललाट पर घृणा के सिलवट पड़ जाते हैं । पर तुम अपने स्वयं के कुल का नष्ट करने वाले कर्मों पर थोड़ा सा भी विचार नहीं करते ।

सीस हिलावत वाह कहि, पढ़ते चरित प्रताप ।
पै बगलें ताकत रहो खुफिया के डर आप ॥

महाराणा प्रताप के चरित्र को पढ़ते समय तुम "वाह वाह" कह कर उनकी प्रशंसा में सिर हिलाते हो पर ब्रिटिश सरकार के गुप्तचरों से भयग्रस्त होकर तुम इधर उधर बगलें झांकने लगते हो ।

राजा-प्रजा-सवाद[*]

राजा – सिरखी क्या नाहक भेलियां, बाग बधी जो ए लो,
बलहीणी जो ए लो बीटया र जागा काई पाग ? परजाजी ॥1॥

राजा मेरे राज्य की सीमा रूपी बाड़ में बंधी रहने वाली प्राणहीन भेड़ो ! व्यर्थ ही क्या बहक रही हो, क्या चींटियों के भी पर निकल आये हैं ?

प्रजा – न्याय मारग नित चालस्यो, मतकरमी जो ए ला,
सेवा-धर्मी जो ए लो भक्ति सू बैठाल्या हिवड़ा माहिं, बा-हाजी ॥2॥

हमारे प्यारे राजा ! यदि आप सदा न्याय पथ पर चलोगे, सेवा धर्मी बनकर सुशासन करोगे तो निस्सन्देह हम आपके स्वामिभक्त बन आपको हृदय में बसाएंगे ।

प्रजा – मानव जनम थी पावियो हक माहरो ए ला,
ईश्वर दीधोड़ो ए लो, लिखण बोलण अधिकार, राजाजी ॥ ॥3॥

हे राजा ! नियति-प्रदत्त, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का यह अधिकार तो हमें मनुष्य जाति में जन्म के साथ ही मिला हुआ है ।

राजा – बोलण लिखण रो काम नहिं, हक जूतिया ए लो, पशुरूपी जी ए लो,
बिरथा ही करे छे बकवाद, परजाजी ॥ ॥4॥

हे पशुवत प्रजा ! लिखन-बोलन की आजादी की दुहाई देकर व्यर्थ क्या बकवास कर रही हो । हां अलबत्ता तुम्हें जूते खाने का हक तो अवश्य मिला हुआ है ।

❀ राजस्थानी लोक गीत 'पणिहारी' की लय में निबद्ध प्रस्तुत रचना 'राजा प्रजा संवाद' ठाकुर केसरसिंह जी ने असहयोग आन्दोलन [सन् 1930 31] के समय की थी । इस रचना के पीछे उनकी कनिष्ठा पुत्री सुश्री सौभाग्यमणिजी का आग्रह ही प्रमुख कारण था । यह अत्यन्त उत्कृष्ट लोकविश्रुत और शाश्वत रचना है । इसमें राजनीति के गूढ सिद्धान्तों का निरूपण सहज, सरल, क्रान्तिकारी भाषा में किया गया है ।

प्रजा — धन जोबन दो दिन पाम्हणा, धण लोभीजी ए, लो,
मदमाताजी ए लो आखिर भूंडो हाल राजाजी ॥ ॥5॥

सत्ता के लोभी राजाजी! धन सत्ता की शक्तियों पर आपका प्रभुत्व तो फकत दो दिन का है। अमर्यादित सत्ता मद का प्रतिफल हमेशा बुरा होता है।

राजा — बडकारी कमाई माया मागम्या, धण भोली जी ए लो,
पव होगी जी ए लो म्हारा तो सुखडा रो नाही छेह, परजाजी ॥6॥

वंशानुगत मिले इस राज्यधन के बल पर हम तो निरंतर शासन सुख भोगते रहेंगे। ए असहाय और नासमझ प्रजा! हमारे अनन्त सुखों की कोई सीमा नहीं है।

प्रजा — बीजा रा नाहक हक लूटणा, नहिं सुखियारो जी ए लो
धिक धाडवी ए लो, माया बादल री छांह, राजाजी ॥ ॥7॥

हे राजा! दूसरों के हकों को हड़प कर उनका शोषण करने वाले कभी सुख नहीं पाते। ऐसे प्रजा-पीडक लुटेरों को धिक्कार है! और फिर यह तुम्हारा शासन सुख तो बादलों की छाया की तरह अस्थिर है।

राजा — जनम लियो छै धणिया वंश म, धरम भीरू जी ए लो,
श्यामधर्मी जी ए लो, ईश्वर दियो छै म्हान राज परजाजी॥ ॥8॥

राजाओं के कुल में जन्म लेकर और ईश्वर प्रदत्त राज्य सत्ता से हम तुम्हारे शासक हैं। हे प्रजा! धर्म से डरते हुए तुम्हें तो हमारा स्वामिभक्त रहना चाहिए।

प्रजा — करो छो प्रभु रो झूठो नाम, स्वारथ आधा जी ए लो,
कूडा बोला जी ए लो, कोरा भाटा जी ए लो
मालीपना तो चढाया म्हारे हाथ, राजाजी ॥ ॥9॥

स्वार्थवश नाहक ही ईश्वर का झूठा नाम लेकर हमें भ्रमित कर रहे हो। हे राजा! तुम तो कोरे मोरे पत्थर थे। यह राज्याधिकार का सिंदूरी आलेप तो हमारे ही द्वारा चढाया हुआ है।

राजा – धरा रा धणी छां जमी माहरी कुण पूछी जी ए ना,
वेगारी जी ए लो, पचायत किण काम ? परजाजी ॥ ॥10॥

राज्य के मालिक हम और यह धरा हमारी, फिर तुम्हें हमारी पंचा यत किसने सभलाई है, हे प्रजा ! तुम तो हमारी बेगारी मात्र हो।

प्रजा – पवन अगन उपजाविया, काईं क्षुद्र मानवी ए ना,
दभी पाद्या जी ए ना, अगम समन्द धरती आभ, भोलाजी ॥11॥

क्या इन पाच तत्वों (वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी और समुद्र) का सृजन आप जैसे किसी क्षुद्र मानव के हाथों हुआ है ? क्या इन सब पर आपका प्रभुत्व है ? हे नासमझ राजा ! आप दभी पुटिया पक्षी की तरह बडबोलपन से क्या काम ले रहे हो ?

प्रजा – सकल सरीखा हक रखमा, पिता पूंजी ऊपर सो,
साची समता ए लो साचो तो धणी छै सरजणहार, राजाजी ॥12॥

हे राजा ! जिस प्रकार पिता की सम्पति में सभी पुत्रों का समानाधिकार होता है, ठीक उसी प्रकार प्रकृति के सृजनहार परमपिता की इस सम्पति पृथ्वी जल, वायु आदि पर भी हमारा, आपका समान अधिकार है।

राजा – कमाई ऊपर हक माहरो, बहकायोडी जी ए लो,
बहकाई जा ए लो उडास्या खूब मन मौज परजाजी ॥ ॥13॥

किसी के बहकावे में आकर क्या बक बक कर रही हो। हे प्रजा ! तुम्हारी कमाई तो राज्य की सम्पति है और उस पर हमारा पूर्ण अधिकार है। उसे हम जिस तरह चाहे उडा सकते हैं।

प्रजा – किण दिन उठाई हलणी हाथ मे, बलहीणा जी ए लो,
आलस डूबा जी ए लो खेता में बहायो किण दिन स्वेद, विपयीजी ॥14॥

हे आलसी और पुरुषत्वहीन अय्याश राजा ! आपने कौन से दिन कंधे पर हल उठाकर खेतों में पसीना बहाया है ?

प्रजा – हाडा रो पसीनो मनत माहरी, धन म्हारो जी ए लो,
पू जी म्हारीजी ए लो, थे कुण छो मुफ्त खाणार ? राजाजी ॥ 15 ॥

रक्त पसीना एक कर कड़े परिश्रम से उपार्जित यह पू जी हमारी है। हे राजा ! इसे मुफ्त मे खाने वाले आप कौन होते हैं ?

राजा – खड्ग उठायो बडवा हाथ म, बात भूली जी ए लो,
मूरख मडनी ए लो, रगता सू छिड़की छै धरणी माय, परजाजी ॥16॥

हे अहसान फरामोश प्रजा ! हमारे पूवजो ने बहुत सारे युद्ध लडकर अपने रक्त से धरती माता का अभिषेक किया है। अरे मूर्खों ! जरा इतिहास को तो देखो।

प्रजा – स्वारथ रा आधा लडिया कूतरा, माहो माहे जी ए लो,
पापी खूनी जी ए लो हिड़काया जी ए ला,
रगता सू न निपजे भूम, राजाजी ॥ ॥17॥

हे राजा ! निजी स्वार्थों के वशीभूत हो पगलाए कुत्तो की भांति आपस म ही लडने वालो को तो मात्र पापी की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। हे राजा ! क्या रक्त से कही भूमि उत्पन्न हुई है ?

राजा – धनरा रुखाला काला नाग छा, म्हीकण हियडा री हो,
मतर भूलाणी ए लो, कुण ता लगावे म्हारे हाथ ! परजाजी ॥18॥

हे कमजोर दिल वाली, डरपोक और कर्तव्य-भ्रष्ट, प्रजा ! हम अपने राज्य रूपी धन की रक्षा करने वाले काले नाग है। भला किसकी मजाल है जो इसमे हाथ डाले ?

प्रजा – अधम भोगां मे खरची लूटिया, दिवालिया हो,
आधा एघूलाए लो, परजारी कमाई एली खोय, नीयतहीणाजी ॥19॥

तुम भोग-विलास मे अपने पूर्वजो की थाती खोकर दीवालिये हो चुके हो। अब बिना हाथ पांव के अधे कीडे मात्र रह गये हो। हे राजा ! प्रजा के खून पसीने की कमाई को व्यर्थ ही गवा रहे हो।

प्रजा – ठगा मू ठगाया रीता ठीकरा, कोरा कूडा जी ए लो,
फागट फूफाडयाजी ए लो, मूवो अपत साप न खाय, विषधारीजी॥20॥

वंचकों (अंग्रेजों) द्वारा ठगाये हुए, निरे मिट्टी के टूटे हुए पात्र हो, खाली फुफकार करने वाले हो, हे राजा ! यदि आप राज्य रूपी धन के रक्षक सर्प हो तो भी सौंपी हुई सम्पत्ति को तो सर्प भी नहीं खाता।

प्रजा – सपरोटया मारया छै छाबड माहिन, कोरा कीडाजी ए लो,
परहोटया जी ए लो, पाड्या छै दतड थैली काढ, राजाजी॥ 21॥

राजाजी ! मन से ही साप बनते हो, जबकि सपेरा (ब्रिटिश सार्वभौम सत्ता) द्वारा आपके दांतों में स्थित विष की थैली (राज्यों के कोष एवं सैन्य-शक्ति) निकाल लेने के बाद किसी टोकरी में कैद आपका अस्तित्व तो कीडों की मानिन्द है।

राजा – लूला गूंगा गहला पूतडा, राजस रासेला ए लो,
मालक वणेला ए लो, म्हारा छै अटल अधिकार, परजाजी। ॥22॥

हे प्रजा ! लाख हमारे पुत्र लगते हो, गूंगे और पागल हो फिर भी तुम्हारे तो वे स्वामी ही होंगे क्योंकि राज्य करने का हमारा अधिकार सदा अटल है।

प्रजा – मायडरा माटी घणा धाडवी धमकाणा जी ए लो,
धुत्काणा जी ए लो, बण्या ने बिलाया के ही वार, भूलाजा॥ 23॥

तुम आततायी और प्रजा-प्रपीडक लुटेरे हो। हे ब्रिटिश सत्ता द्वारा धमकाये और दुतकारे हुए राजा ! तुम्हारे जैसे शासक तो कई बार बने और नष्ट हो गये।

प्रजा – धरा रो धणी छै ईश्वर एक, धिक मानवी ए लो,
धोखा दणा जी ए लो म्हे छा उणरा साचा पूत, राजाजी॥ 24॥

हे राजा ! नाहक क्या झूठ बोल रहे हो? तुच्छ मानव की क्या औकात इस धरती का मालिक तो केवल ईश्वर है और हम प्रजा उसकी सच्ची संतान हैं।

राजा – धरा रा धणी जद म्हे नही वहकयाडी जो ए लो,
पथ भूलाणी ए लो, (तो) बणसी वाई कमला री फौज,
परजाजी ॥ ॥25॥

हे प्रजा ! ममसद से हटकर बहकी बहकी बातें कर रही हो ? यदि इस राज्य के स्वामी हम नही तो क्या तुम सोचती हो कि ये भिखारियो का टोला (स्वतत्रता ग्रादोलन म ग्रादोलनकारियो के लिए प्रयुक्त शब्द) सत्ता सभालेगा ?

प्रजा – ग्रक्ल हुवे तो थोडा सोच लो, जूना जुग्रारी ए लो,
देवत ग्राधा जी ए लो, भालो वयू हिरणां रो भूठो नीर,
गाफलजी ॥ ॥26॥

जान बूझकर भी ग्रनजान बनने वाले गाफिल राजा ! ग्रपनी ग्रक्ल से जरा सोचो। ग्रपना सभी कुछ दांव पर लगाकर ब्रिटिश सत्ता के मायाजाल की मृगतृष्णा मे फँसना क्या तुम्हारे लिए लाभदायक है ?

प्रजा – सम्हल चालो तो सुख पावस्यो भाई म्हाराजी ए लो,
सतरा प्यारा जी ए लो, बहकयोडा रहस्यो न छिन एक,
राजाजी ॥ ॥27॥

हमारे बडे भाई तुल्य राजा ! पूरे विवक से काम लोगे और सत्य की राह चलोगे तो सुखी रहोगे ग्र यथा इस तरह प्रजा के विरुद्ध बहकाये हुए (ब्रिटिश सत्ता द्वारा) रहन पर तो क्षण भर म ही तुम्हारा ग्रस्तित्व मिट जायगा।

राजा – फौजा बदूका तोपा माहरी, स्बो ग्राधली ए लो,
मारी कटा जी ए लो छिन म द्याने सबन भू ज, परजाजी ॥ ॥28॥

सन्त हमार द्वारा शक्तिबल से मारपीट कर रखी गई है ग्रधी प्रजा! य हमारी तोपा और ब दूका से लैस फौजें पलक झपकत ही तुम सभी को भून डालेगी।

प्रजा – म्हारा ही पाल्या म्हान डाकणा, दुखदेणा जी ए लो,
घरफाडा जी ए लो कृतघण जी ए लो,
काटो छा बैठण री डाल ? ग्रातमघातोजी ॥ ॥29॥

अपनी प्रजा को ही सताने वाले हे कृतघ्न राजा! हम ही लोगों द्वारा पोषित होकर हम को ही खाने पर तुले हो? जिस डाल पर बैठे हो उसी को काटने का आत्मघाती प्रयास कर रहे हो।

प्रजा – अकल-बिहूणा आरण भूलिया, अभिमानी जी रा लो,
अकल उधारा रा लो, फूटा भोगना जी ए रा,
जनता सूं न जीते जमराज, राजाजी ॥ ॥30॥

हे राजा! क्या आपकी बुद्धि नष्ट हो गयी है? क्या आप अपना सही कर्तव्य भूल गये हो? क्यों व्यर्थ ही अभिमान करते हो? क्या पराई बुद्धि (अंग्रेजों द्वारा निर्धारित नीति) पर चलते हो? तुम्हारा तो भाग्य ही फूट गया है। क्या इतना भी नहीं जानते कि जनता से तो यमराज भी नहीं जीत सकता?



रजपूताणी

(तव और अब)

दोहा

घव भागा धुधकारती, रजवट कुल हिय रश्मि ।
(अब) साड घुसाड़े सोहड़ी, "अरे बाहरे" अखिल ॥1॥

पहिले रजपूतानी अपन कुलाभिमान को धारण कर युद्ध से भाग आन वाले पति को बुरी तरह फटकारा करती थी और अब वही वीरांगना ऐसे अवसरा पर "अरे बा र" कह कर उसे अपनी बगल म घुसा लेती है।

मगल मरण मनावती, रणचण्डी रच रास ।
(अब) जीव बच्या जलसा जुड़ै, रजपूता रणवास ॥2॥

रणचण्डी का रास रचकर जहा मरण महोत्सव मनाया जाता था वहा अब प्राण बच जाने पर राजपूता के रनिवासा (अन्त पुरा) म जलसे किय जाते हैं।

राग सिन्धुवा रीझती, सुत धवडाता सोय ।
(अब) लैला मजनू नाटका, हरख जागरण होय ॥3॥

पुत्र को स्तनपान करात समय जो सिंधु (युद्धकालीन) राग से आनन्दित हुआ करती थी वही अब लैला मजनू के नाटक देखने म जागरण कर प्रसन्न होती है।

ले खागा ललकारती, धक फलसै धाडांह ।
(अब) कम्पै पड़दै कामणी, लज भय लूंगाडांह ॥4॥

कृपाण लेकर जो क्षत्राणी दरवाजे से आगे बढ डाकुआ को ललकारा करती थी वही अब पर्दे म बैठी हुई गुडो से लाज बचाने के डर स थर थर कापती है।

चलती नहँ कुलचाल थी, जलती जौहर भाल ।
(अब) "हाय" करे बलती रहै, भोजन खरचाँ भाल ॥5॥

जो कभी कुलमार्ग से विचलित नहीं होती थी और जौहर की ज्वाला में भस्मी-भूत हो जाया करती थी, वही अब घर में होनेवाली रोटी खर्च के लिये 'हाय हाय" करती हुई हृदय में जला करती है।

ऊठे नित दतो अरघ, कबँ न लज्जै कूख ।
(अब) नाम सुणताँ मरण रो, थुथकारै भर थूक ॥6॥

जो हमेशा उठकर भगवान भास्कर को इस प्रार्थना के साथ अर्घ्य देती थी कि हे सविता! मेरी कुक्षि को कभी भी लज्जित न होना पड़े। वही अब सन्तान के लिये मौत का नाम सुनने मात्र से ही अपशकुन मानकर थुथकारे डालती है।

चढती काठाँ चूड़लै, धव धर पर ढलियाह ।
(अब) खरच बँधावण ताखड़ी लवी कावलियाँह ॥7॥

पति के धराशायी होने पर जो सौभाग्यवती चितारोहण किया करती थी वही अब अपने वैधव्य के जीवन निर्वाह के लिये अर्थ प्रबंध को आतुर दिखाई देती है।

धरता पग धर धूजती धाकलगा दिगपाल ।
(तब) जणती रजपूताणियाँ, थण थी भालवँबाल ॥8॥

पहिले रजपूतानियां अपने स्तनों से ऐसे आग के टुकड़ों को पैदा करती थी कि जिनके ललकारने पर दिग्पाल और पैर बढ़ाने ही पृथ्वी प्रकंपित हो उठती थी।

(अब) पोल कढ्याँ पग लडथड़ै, धर बारै धिधियाय ।
पड़दै पूरी पदमण्याँ, जोधा किण विध जाय ॥9॥

ड्योढ़ी से निकलते ही जिनके पैर लड़खड़ाने लगते हैं और घर से बाहर होने पर जो घिघिया उठती हैं, वे पर्दे में रहने वाली कोमलांगिया योद्धाओं को कैसे जन्म दे?

रूलगो रजपूताणियाँ, खूटी रतना खाण ।
पूथलिया अब प्रेम री प्रसव रही पाखाण ॥10॥

अब वे रजपूतानिया रूल गई हैं, रत्नो की व खानें नि:शेष प्राय हो चली हैं। अब तो ये प्रेम पुत्तलिकाएं, ककड-पत्थरा (निर्जीवा) का प्रसव कर रही हैं।

है सिंघणियाँ आज लग, निरबीजाँ धर नाहिं ।
वस उजालक बाहुडी, मिलै भूपडा माहि ॥11॥

इतने पर भी "निर्बीज भूमि कबहू न होय" इस उक्ति के अनुसार आज भी सिंहनिया हैं। किन्तु कुल को उज्ज्वल करनेवाली व क्षत्राणिया मिलेंगी सिर्फ झोंपडियो म ही।

[रचनाकाल 1939 ई]



नारी-गौरव

धी जाया हिवडो धडक, हुवै अभागा हेत ।
ये दुहूँ पाख उजालणी, देव सुभागा देत ॥ 1 ॥

पुत्री के जन्म पर दुखी होने वाले निस्सन्देह अभागे हैं क्योंकि पितृपक्ष और पतिपक्ष इन दोनों पक्षों को उज्ज्वल करने वाली पुत्री तो भगवान सौभाग्यशालियों को ही देता है।

राह महल म जे रतन, अणमोल्या अकाय ।
निपजे जंगल खाण म, पारस कर पूजाय ॥ 2 ॥

जो रानियाँ राजमहलों मे सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है वे वास्तव म गरीब घरों म ही जन्म लेती हैं जैसे वन प्रदेश की खानों म मिलने वाले पत्थर की जौहरी द्वारा परीक्षा किये जाने के बाद ही पारस की तरह पूजा होती है।

बेटा पग हेठा हुआ, छाब भिखारी ढब ।
धी उठी धुर धूकला, गजण खला गरब ॥ 3 ॥ ✽

पुत्रों ने तो जब भिखमंगों की वृत्ति को धारण कर अपने गौरव को समाप्त कर लिया है तो ऐसी अवस्था म बेटियाँ ही शत्रुओं के गर्व का खंडन करने के लिए उठ खड़ी हुई हैं।

✽ इस दोहे की रचना झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की प्रशंसा म की गई थी — निम्नांकित प्राचीन दोहे का लक्ष्य बनाकर —

बेटा जायाँ कवण गुण, अवगुण कवण धियेण ।
जे ऊभा घर आपणी, गंजीजे अवरेण ॥

इसमें भारत माता की स्वतन्त्रता के लिए सशस्त्र क्रान्ति के पक्ष का समर्थन किया गया है और वह भी भारतीय नारियों के द्वारा।

पायो पाषाणी वहै पद ठाकर तें प्राण ।
प्राण प्रतिष्ठा करि सहँस, पुजा दिये पाषाण ॥ 4 ॥ ❀

गौतम की पत्नी अहल्या ने तो पाषाण का रूप धारण कर भगवान राम के पद-स्पर्श से पुन प्राण प्राप्त किये थे, परन्तु इदौर की महारानी अहल्या ने असंख्य पाषाणों (पाषाण प्रतिमाओं) में प्राण प्रतिष्ठा करके लोक में उनकी पूजा करवा दी है ।

❀ महारानी अहल्या बाई ने अपने जीवन काल में अनेक ध्वंस्त मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया था और अनेक मंदिरों में नवीन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाई । इस दोहे में उसी की ओर संकेत है ।

राष्ट्र धर्म

भारत की राजसिक-देह

राण प्राण बल राठवड़, हाडा हाडे नह।
भव्य कव्य कछवाह इम, भा भारत रजदेह ॥ 1 ॥

भारतवर्ष की राजसिक देह में मेवाड़ के महाराणा प्राण रूप में, राठौड़ शक्ति के रूप में, हाडा अस्थियों के रूप में और कछवाह सुन्दर कलेवर के रूप में विद्यमान हैं।

यज्ञ पूत पावक प्रबल, पोषक तेज महान।
साम दाम भिद दण्डयुत, चतुर्बाहु चहुवान ॥ 2 ॥

चौहान क्षत्रिय यज्ञ से पवित्र हुई प्रबल अग्नि से, महद् तेज का पोषण करने वाले हैं। साम, दाम, दण्ड और भेद उनकी चार भुजायें हैं।



राजस्थान के विभिन्न प्रदेशों की विशेषताएं

मरुधरा (मारवाड़)

दोहा

खग-धारा धोडो भडा, सिमट भरयो सह पाण।
इण थी मुरधर तरल जल, पाताला परमाण ॥

जहा पर सारा पानी अथवा बल सिमट कर तलवारों की धारों, अश्वों और वीर योद्धाओं में केन्द्रित हो गया है। फलस्वरूप मारवाड़ में पानी इतना गहरा चला गया है।

सरवत भरिया फल सर्के, थलवट टीलाँ मत्थ ।
जल ऊँडा नर नीपजै, मुरधर सह समरत्थ ॥

मरुस्थल मे रेतीले टीबो पर रस से भरे मीठे मतीरे मिलते हैं, जहा पानी इतना गहरा हे वहाँ के पुरुष बडे सामर्थ्यवान हैं।

मेवाड

गिर ऊँचा ऊँचा गढा, ऊँचा जस अप्रमाण ।
माभी धर मेवाड रा, नर खटरा निरखाण ॥

जहा ऊची ऊची पवत श्रेणिया हैं, ऊँचे किले है और जिसका गौरव ऊँचा है उस मेवाड म मनुष्य कद के छोटे हैं।

मालवा

थिरक रहे चख लख थिरा साखा श्याम समद ।
नदिया नीर अथाह नित, पीहर लच्छि पसन्द ॥

जिसकी शोभा देखकर आखे चकित हो जाती है, जहाँ फसलो का हरा समुद्र लहरा रहा है और हमेशा बहन वाली गहरी नदिया है– ऐसा मालव–प्रदेश मानो लक्ष्मी को पीहर के समान प्यारा है।

गिरि गरिमा

धन परवत रणथभणा, मणा न रतना धाम ।
सीहा सिद्धा सोहडा वीर विरचा विसराम ॥

मणियो एव रत्नो के अनन्त भडारा से सुशोभित हे पवतराज ! तुम धन्य हो ! तुम युद्ध के स्तम्भ स्वरूप हो ! सिंहो सिद्ध योगीश्वरा और वीर योद्धाओ को आश्रय देन वाले हो।



ऊ यो ही चीतोड*

दोहा

अलादीन अक्बर तणी, मिटगी सरब मरोड ।
वीरथम कथना कथै, ऊ यो ही चीतोड ॥ 1 ॥

यह वही चित्तोड दुर्ग है जहा सुल्तान अल्लाउद्दीन खिलजी और शाहशाह अकबर की विजयलिप्सा का दर्प चकनाचूर हुआ था, जिसकी गौरव-गाथा कीर्तिस्तम्भ आज भी कह रहा है ।

भाकी भड मेवाड रा, जडपडिया जी ताड ।
अक्बर औरग ओभ्कया, ऊ यो ही चीतोड ॥ 2 ॥

यह वही चित्तोड दुर्ग है जहा मेवाड के दुर्द्धर्ष योद्धा समरागण में कट कट कर मर गये और उनके इस अपरिमय शौर्य को देखकर ही अकबर और औरगजेब जैसे बादशाह स्तम्भित रह गये थे ।

चूडा सगता भक्खेंगा, चाहुवाण राठोड ।
सूरा रगतां सींचिया, ऊ यो ही चीतोड ॥ 3 ॥

यह वही चित्तोड दुर्ग है जिसकी मिट्टी के कण कण को चुण्डावत शक्तावत, झाला, चौहान और राठौड वश के शूरवीर योद्धाओं ने अपने लहू से सींचा है ।

---

* ठा केसरीसिंह को सन् 1941 म महाराणा भोपालसिंहजी ने चित्तोड किले पर जो जीर्णोद्धार का काम हुआ उसे देखने के लिए किले पर भेजा । देखकर लौटने पर उन्होंने ये दोहे सुनाये [दि 5 3 1941] । महाराणा साहब ने इच्छा व्यक्त की थी कि इन दोहों को सगमरमर पर खुदवाकर किले के मुख्य द्वार पर लगा दिए जाय । परन्तु करीब पांच माह बाद ही ठा केसरीसिंह का स्वर्गवास हो गया और यह काय अधूरा ही रह गया ।

राणा तुरकाणा तणी ठणी गजब जय होड ।
भजिया दल दिल्ली मणी, ऊ या ही चीतोड ॥ 4 ॥

यह वही चित्तोड दुर्ग है जहाँ कभी महाराणाओ और मुसलमान बादशाहो के मध्य विजयप्राप्ति की आश्चर्यजनक बाजी लगी थी परन्तु अन्ततः तुर्क सेनाओ को दिल्ली की ओर पलायन करना पडा ।

झेल झाट मेवाड री, मुगल गया मुख मोड ।
मेदपाट मुक्टामणी, ऊ यो ही चीतोड ॥ 5 ॥

यह वही चित्तोड दुर्ग है जहाँ मेवाड की सेनाओ के आगे मुगल फौजें परास्त होकर उल्टे पाव लौटी थी । इसी कारण भारत माता के मुकुट मे यह मणि रूपी मेवाड देदीप्यमान है ।

सीधी सीढी सुरग री जिणरी नहँ कँह जोड ।
गढाँ शिरोमण जग गिणँ, ऊ यो ही चीतोड ॥ 6 ॥

यह वही चित्तोड दुर्ग है जो स्वर्ग म जाने की सीधी सीढी है । (शास्त्रो की मान्यतानुसार 'हतोवा प्राप्स्यसि स्वर्गम्, युद्ध म वीरगति प्राप्त करने वाला स्वर्ग म जाता है) और सारा ससार निस्सदेह इस अद्वितीय किले को दुर्ग-शिरोमणि मानता है ।

झोक दिया तन झाल म, सतियाँ री सिरमोड ।
रँग पदमण धण राणिया, ऊ यो ही चीतोड ॥ 7 ॥

यह वही चित्तोड दुर्ग है जहा अनेकानेक वीरागनाओ ने अपने शरीर जौहर की धधकती ज्वाला म झोक दिये थे । सतियो मे शिरोमणि महारानी पद्मिनी और ऐसी ही अन्य सती रानिया धन्य हैं ।

कीरथभ तीरथ हुयो, तुरकाँ रा चित ताड ।
भँजसँ भारत आज लग, ऊ यो ही चीतोड ॥ 8 ॥

यह वही चित्तोड दुर्ग ह, जहाँ मुसलमान आक्रान्ताओ के मान मर्दन का प्रतीक कीर्तिस्तम्भ अवस्थित है और तीर्थ स्वरूप यह चित्तोड आज भी भारत का गौरव है ।

क्षात्र-धर्म

दोहा

स्वारथ-पथ चीला तुहै, पर-कारज पण-बद्ध ।
सह ठा मिलता सोहड़ा, हम न हरया लद्ध ॥1॥

जिन्हे अपने स्वार्थ साधन की किंचित भी चिन्ता न होकर सदा परोपकार में ही तत्पर रहते थे, ऐसे राजपूत पहले सब जगह मिलते थे। परन्तु अब तो वे खोजने से भी नही मिलते।

वैण सुमीठा बोलणा, निरख मजीठा नैण ।
अबे न दीठा साहुड़ा, दत्त अमीठा दैण ॥2॥

जो क्षत्रिय मधुर वचन बोलते थे एवं सज्जनों को देखकर जिनके नेत्रों में सदा आनन्द की लाली रहती थी अब ऐसे निर्मल दानवीर क्षत्रिय कहीं भी दिखायी नहीं देते।

सिर धर देता साहड़ा, निजरा वचन निभाय ।
अब लिखिया खुद ऊथपै, हाय विधाता हाय ॥3॥

राजपूत अपनी प्रतिज्ञा के पालन में अपना प्राण देने में भी संकोच नहीं करता था। परन्तु हा भाग्य ! आज वही क्षत्रिय अपने हाथों से लिखे हुए वचनों का ही उल्लंघन कर रहा है।

निजरा स्वारथ साधणा, घर घर घणा सपूत ।
कमर कसे उपकार मे, वे सूधा रजपूत ॥4॥

अपने स्वार्थ की पूर्ति करने वाले कथित सपूत तो घर घर में अनेकों मिलेंगे, परन्तु परोपकार में दृढ़ संकल्प के साथ कमर कस कर प्रवृत्त होने वाले राजपूत बिरले ही हैं।

रसिया घण रणवासरा, फँसिया फैसन फंद ।
रल अपजसिया राजवी, धसिया रहै गुलंद ॥5॥

जो जनाने अर्थात् अन्तःपुर में ही सदा आनन्द अनुभव करने वाले हैं और अत्यधिक फैशन में रहने वाले हैं ऐसे ये गिरे हुए और यशविहीन राजपूत राजा विलासिता में सर्वथा डूब गये हैं।

सोरठा

दच–पच हूदो ढोल, नर कोई नित पीट दे।
साहस सीस सतोल, साध कारज सोहड़ा ॥6॥

ढीले ढाले अरक्षित ढोल को तो कोई नित्य ही जब चाहे तब डंके की चोट लगा कर बजा सकता है परन्तु साहस के साथ जहा वीरतापूर्वक अपने मस्तक की बलि देने का काम हो, केवल बहादुर राजपूत [सुभट] ही कार्य सिद्धि कर सकता है।

दोहा

भाषा–भेषा भंडियां, रहै करटां रूप।
जणिया व जू झारियां, (पण) भणिया भू डां भूप ॥7॥

विदेशी भाषा और रहन सहन के अपनाने से राजा बहुरूपियो और नित्य रंग बदलने वाले गिरगिट के समान हो गये हैं। यद्यपि वे उन वीर क्षत्राणियो की कुक्षि से ही उत्पन्न हुए हैं परन्तु कुशिक्षा के प्रभाव से अब अपना असली स्वरूप खो चुके हैं।

पथ पाथर न्दिन पातला, रजवट हीणा रंक।
घणा लफंगा घेरिया, कलहट देश कलंक ॥8॥

जिनके दिन गिरे हुए हैं और जो राजत्व के चिन्हो से रहित हैं एव जिनको बहुत से नीच व कुटिल पुरुषो ने घेर रखा है ऐसे राजा [क्षत्रिय] निस्सदेह देश के लिए कलक है।

मूंडा जाणक मोल्हिया, पड़ब किम परभाव।
मुंछमुंडा मुलकावता, निलजा बोली नाव ॥9॥

जिनके मुंह पर किसी प्रकार की कांति नहीं है [मोलिया शब्द राजस्थानी में सबसे निकृष्ट व पुरुषार्थहीन मनुष्य के लिए प्रयुक्त किया जाता है] उनका भला किसी पर क्या प्रभाव पड़ेगा? ऐसे बिना मूंछ के मनुष्य जब मिथ्याभिमान से मुस्कराते हैं तब ऐसा लगता है मानो इन्होंने अपने कुलगौरव की नाव का ही पानी में डुबो दी हो।

रचता आहव रूकड़ा, नचता हय नाकन्द ।
अब मोटर उडता फरै, मोड मुडाला मन्द ॥10॥

जिनके तेज व सुन्दर घोडे युद्ध म जाने के लिए नाचते रहते थ किन्तु अब वे ही मूछ मुडवाए हुए निस्तेज राजा मोटरों में बैठकर व्यर्थ ही सैर-सपाटा म अपना समय गुमा रहे हैं।

लानत जयचँद लार, बाता में दै बहुडा ।
[पण] आप तणो आचार, उण थी पण अधको रहे ॥11॥

आज कल के राजपूत राजनीति सबधी बातचीत मे जयचन्द के देशद्रोह पर उसे अनेक प्रकार से धिक्कारते ह परन्तु देश के प्रति स्वय का कर्तव्य उस जयचन्द से भी अधिक हेय है।

मन चीठा मीठा बयण, फीटा हँस बिन बीत ।
ढीठा दुगुण ढूकता, दीठा अब देसोत ॥12॥

जो मन स तो अत्यन्त लोभी ह परन्तु बातचीत में बाह्य मधुरता प्रकट करते हैं, जिनका हास्य थोथा है और जो मर्यादा रहित हैं अब ऐसे ही ढीठ व दुगुणा वाले राजपूत देखे जाते ह।

खग धारा साम्हे खडी, [ताइ] उर न चढी आतक ।
जिका बहादुर जातडी, पडी थरहरे पक ॥13॥

कभी युद्ध स्थल म अनेक तलवारो का सामना करते हुए भी जिसके हृदय म किंचित् मात्र भय उत्पन्न नहीं हुआ था दुख है कि आज वही वीर राजपूत जाति पराधीनता के दलदल म पडी हुई थर-थर काप रही है।

राजपूतों की वर्तमान दशा

[चार श्रेणियां]

दोहा

जग रखवाला जे रहा, गिरदाला धर धीर।
ताला मँह जड़िया तिके, नीदाला बस नीर॥ 1॥

पृथ्वी के यशस्वी स्वामी जो कभी ससार के रक्षक थे व राजपूत आज निद्रा मग्न होने के कारण गुलामी की जजीरो से जकड़े हुए है।

धक धरता ध्रम धीजणा, मरता भर मन मोद।
भरता वे इण भूमरा, म्है थरहरता होद॥ 2॥

जो राजपूत सदा ही युद्ध मे आगे बढना जानते थे और धर्म पक्ष पर रहकर अवसर पडने पर हर्ष के साथ प्राण न्योछावर करने को तत्पर रहते थे। परन्तु हा! इस पृथ्वी के वे स्वामी आज [विदेशी सत्ता के सामने] भय से काप रहे है।

राणी जाया नित रहा, जग अगवाणी जोम।
गालाणा गह गाढडी, भोगाणी अब भोम॥ 3॥

राणियो की कुक्षि से उत्पन्न जो क्षत्रिय ससार मे वीरता के कारण सब से आगे थे, परन्तु वे ही दासियो के भोग विलास रूपी बधन मे आसक्त होकर अपने राजत्व को हमेशा के लिए भोग बैठे है और इसीलिये अब वे इस पृथ्वी का राज्य करने के अधिकारी नही रहे।

भूलाणी जणबो भवद खेटाणी धर खाट।
रजपूताणी पीड वश, पटक रही पटाट॥ 4॥

वह क्षत्राणी अब ऐसे वीरो को जन्म देना ही भूल गयी जो कभी युद्ध मे तलवार चलाकर राज्य कायम कर सकें। वह तो अब प्रसव पीडा के बाद [कायर] कीड़ों को जन्म दे रही है।

हस्तिप की अनावश्यकता

दोहा

कवित्त गुमाने कथियो, धरम सनातन धार।
रहिया नह वे राजवी, बीत चुकी वा वार ॥1॥

गुमान सिंह जी ने चारणो और राजपूतो के सनातन कर्तव्य को लक्ष्य कर चारणो की प्रशंसा मे कवित्त कहा है किन्तु न तो अब वैसे क्षत्रिय राजा ही रह और न वीरता का वह युग ही, जो अब बीत गया है।

रहता क्षत्रिय रात दिन, मद बहता मातंग।
चहता हस्तिप चारणा, जद ठहठहता जंग ॥2॥

जिस समय क्षत्रिय स्वाभिमान मे उन्मत्त हाथी की तरह मस्त रहते थे और जब कभी युद्ध-भूमि मे उनके पांव अग्रसर होने से ठिटक जाते थे तब वे शब्द रूपी अंकुश धारण करने वाले महावत चारणा की प्रतीक्षा करते थे।

चटक मटक सह चातुरी, भाषा भेषा भंड।
बिन आंकस अब बाहुडा बणिया जंबुक वंड ॥3॥

आजकल के राजपूतो मे केवल बाह्य आडम्बर और चटक मटक तथा थोथी चतुरता ही रह गयी है एव विदेशी भाषा एव भेष अपनाने से वे बहु रूपिया प्रतीत होते हैं। (चारणो के) अंकुश बिना अब ये राजपूत बिना पूंछ के लज्जाहीन शृंगाल जैसे लगते है।

बाठरडा (मेवाड़) के ठा श्रद्धास्पद गुमानसिंह जी ने चारणो की कर्तव्य परायणता की प्रशंसा मे कवित्त कहा था कि "चारण कुल हस्तिप जो न हो तो गुमान कहे क्षत्रिकुल कुंभि ताको रोकि राह लाता को', उसी के उपलक्ष्य मे ठाकुर साहब ने ये दोहे 10 2 1936 को लिखे। ठा गुमानसिंह जी का कवित्त निम्नांकित है —

हाथी बिन चारण हलै, पय घीसता पग्ग ।
तज तोमर दत ताक्वै, अलबल छैला अग्ग । 4।।

अब तो चारण बिना हाथी के पैदल ही चलता है और क्षत्रियो को स्वधम की शिक्षा देने का अकुश छोडकर विलासी क्षत्रियो के मु ह की ओर ताकता है ।

बाठरडा गुमानसिहजी कृत कवित्त

नीत भाग चालै ज्यो कु भास्थल हस्थल दे,
आप आप बोल अहो मन को बढातो को ?
कुमति कुदान भरे लाज के जजीर हरे,
छोर थान आश्रम पै जगम पै जातो का ?
काव्य रम्य नादन दे घेर रन क्षत्रिन म,
हेर हेर मम बोल तोमर लगातो को ?
चारण कुल हस्तिप जो न होत तो 'गुमान' क्हे,
क्षत्रिकुल-कु भि ताको रोकि राह लातो को ?

स्वधर्म

धन र बल घणियाप, मटल्या नर भी सावर्व ।
पोरस तणे प्रताप, कठिण वडप्पण कालिया ॥ 1 ॥

अथ सत्ता के बल पर तो निकम्मे मनुष्य भी स्वामित्व का अधिकार पा जाते हैं परन्तु हे कालिया ! अपने पौरुष के बल पर बड़प्पन प्राप्त करना निश्चय ही कठिन काम है ।

जन्मभूम जे जोय, गोरा पगतल गजती ।
खत्रवट सारी खोय, कूडा भजमें कालिया ॥ 2 ॥

जिन्होंने बिना किसी प्रतिरोध के अपनी मातभूमि को अंग्रेजों के पावों तले रौंदे जाते देख, अपना क्षात्रत्व लजाया है, हे कालिया ! वे लोग अब व्यर्थ ही थोथी शान बघार रहे हैं ।

[सदभ-टिप्पणी]

"ठि महुआ (मौतामऊ राज्य] के वयोवृद्ध ठा सा श्री खुमाणसिंहजी ने "कालिया शतक" बनाकर संशोधन के लिये मेरे पास भेजा । उसमें एक दोहा था, 'अंग्रेजा सू आय भिडिया केसर भूचमू । खोपट माहू खाय कुरब बिना इयो कालिया' । इसको मैंने अपने ऊपर ही समझा । अत उस एक मात्र पर लेखनी न लगाकर मैंने उस दोहे के सामने मार्जिन पर पाच सोरठे लिख भेजे। गुणग्राही ठाकुर साहब ने लम्बा पत्र लिखकर खेद प्रकट किया, क्षमा मांगी कि 'मुझे यह लक्ष्य में ही नहीं रहा कि यह दोहा दूसरी तरफ भी पड सकता है। मैंने यह जमन बादशाह कैसर के लिये लिखा था, किंतु अब उस पर भी ताना क्यू दू ? वह भी वीर था । हार जीत हरि के हाथ में है–अत मैंने वह दोहा सारा निकाल दिया है और ये पाच सोरठे मुझे बहुत पसंद आये, अत कापी में लिख लिये है।' इनमें से दो सोरठा "कालिया शतक" में ले लिये गये। वे पाच सोरठे ये हैं ।

[ठा केसरीसिंह द्वारा दिनांक 7-2 1932 को अपनी डायरी में लिखी

गवरमेंट री गाय, बणिया ठाकर बाजवै।
कुरब बतावै काय, करतब हीणा कालिया ॥3॥

ब्रिटिश सत्ता के आगे दीन बनकर, बनिये की तरह लेन देन म विश्वास रखने वाले भी ठाकुर कहलाते हैं। ह कालिया ! ऐसे ओछे कार्य करन वाले व्यक्ति अब अपनी कौन सी इज्जत का प्रदर्शन कर रहे ह ?

खोपट माटे खाय, गोरां पग चूम गजब।
निजला कुरबा ल्हाय, धरम बिहूणा कालिया ॥4॥

अपने स्वामित्व के सम्मान को खोकर भो आश्चर्य है कि ये शासकगण गोरे अंग्रेजो के तलुवे चाट रह हैं। हे कालिया ! ये अभागे इसके बावजूद भी गर्व करते हुए तनिक लज्जित नही होते।

केहर री कुलकाण, भिडणो सो किम भूलवै।
नाम धरम पहचाण, कोइक आणे कालिया ॥5॥

वनराज शेर अर केसरीसिंह की कुल-मर्यादा का तो टक्कर लेना है [अंग्रेजा की हकुमत से लोहा लेना अभिप्राय] उस वह किस प्रकार भूल सकता ह ? ह कालिया ! अपन नाम और जाति-धम के अनुकूल कतव्य निभाना तो विरले ही जानते ह।



विविध परमात्मा के प्रति

दोहा

पवन पान करि अहि जिये, कंकर भखि पारेव ।
घम निबाहन हार हैं, वह समरथ इक देव ।।1।।

सर्प वायु का पान करके जीवित रहता है, उसी भांति पारावत [कबूतर] भी कंकड़ खाकर जीवित रहता है । प्राणीमात्र के धर्म का निर्वाह कराने में वह एक परमपिता परमात्मा ही समर्थ हैं ।

सोरठा

नाडूल्या रै नीर, डरडावै घणा डेडका ।
समँदा बिन नह सीर, मिलै मूझ मनाक नैं ।।2।।

छोटे छोटे पोखरों के जल में पड़े हुए हजारों मेंढक सदा टर्राते रहते हैं। मेरे जैसे [विद्याव्रताय] मैनाक पर्वत के लिए यदि कोई आश्रय स्थल है तो मात्र एक परमपिता परमेश्वर रूपी महासमुद्र ही ।

टिप्पणी

—ठाकुर साहब ने सन् 1914 में गिरफ्तार होते ही यह प्रतिज्ञा करली थी कि वे मुक्त होने तक अन्नजल ग्रहण नहीं करेंगे । इससे घर वालों का चिंतित हो उठना स्वाभाविक था । स्वजनों को चिंतामुक्त रहने के लिए ही उन्होंने हजारीबाग जेल से अपने पत्र में उक्त प्रथम दोहा लिखकर परिवार के सदस्य को भेजा था ।

द्वितीय सोरठे में उस पौराणिक कथा का आश्रय लिया गया है जिसमें इन्द्र के द्वारा पर्वतों के पंख काटने हेतु प्रारम्भ किये गये अभियान के समय उसे समुद्र में ही आश्रय स्थान मिला, अन्यत्र कहीं नहीं ।

राष्ट्रवर राव गोपालसिंह जी खरवा के प्रति

रजवट वरिया नित रहे, कनधज भरियो काल।
वेलू वरियां विपत रो, गुण भरियो गोपाल ॥1॥

सदा राजपूती आन बान से रहने वाले, दुश्मनों के लिए काल स्वरूप और विपत्ति में असहायों के रक्षक - ऐसे अनेक गुणों से अलंकृत हैं, यह राठौड़ गोपालसिंह।

रह्यो लाल पांचाल में, महाराष्ट्र में बाल।
राजत राजस्थान में, गौरवमय गोपाल ॥2॥

जैसे पंजाब में लाला लाजपतराय सर्वोपरि क्रांतिकारी नेता हैं और महाराष्ट्र में लोकमान्य बाल्गंगाधर तिलक, वैसे ही राजस्थान में यह गौरव-शाली गोपालसिंह हैं।

गांधीजी के प्रति

दशरथ सुत लांघ्यो समद, पाटे घणा पहाड़।
गांधी कांचा तागे पर, चाहे जय दल चाड़ ॥

दाशरथि राम ने तो अनेकों पहाड़ समुद्र में गिराकर उसे पार किया था। पर महात्मा गांधी तो केवल सूत के कच्चे धागे (स्वदेशी वस्त्र) से ही ब्रिटिश साम्राज्य पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं।

मुंछमुंडों की एकादशी

मूंघा चुडलो मट्ल रो, मरदा मूंघी मूंछ।
सत पोरस री साख म, ए दोनू घण ऊंच ॥1॥

महिलाओ के लिए चुडा और पुरुषों के लिए मूंछे बहुत मूल्यवान हैं। नारी के सुहाग और पुरुष के वीरत्व की साक्षी म य दोनो बहुत ही महत्वपूर्ण है।

मुछमुंडा भूंडा मिनख, नरपण रो कर नास।
अजब भदर अपशकुनिया, रमिया जाणक रास ॥2॥

मूंछ मुंडाने वाले मनुष्य बडे मूर्ख हैं क्योंकि इस प्रकार वे पुरुषत्व सूचक अपनी मूछो को सफाचट करवाकर "भदर" [मृत्यु पर बाल देने वाले] हुए-से अपशकुनी लगते है मानो वे किसी रासमण्डली के पात्र हो।

माथे माग सँवारणा, मूँडे मूँछ मुंडाय।
फिर मुळकता फैशनमा, जनखा रूप जणाय ॥3॥

सर पर माग सवार हुए, मूँछे मुण्डवाकर य फैशनपरस्त निलज्जता स मुस्कराते हुए हिजड से प्रतीत होते है।

बाई क्यूं न बणाविया, दियो विधाता दोस।
नित उठ मूंछा मूंडवै सधै जगत सतोस ॥4॥

विधाता की यह भूल है कि इन्ह नारी योनि मे ही जन्म क्यो नहीं दिया क्योंकि इन्ह तो सवेरे उठते ही अपनी मूछो को साफ करने पर ही सतोष होता है।

रहै सफाचट रात दिन, बाई जिसड़ै भेस।
वरै वृद बालक बणे लाजै नहैं लवलेस ॥5॥

एसे पुरुष रात-दिन नारी जैसा स्वरूप बनाकर सदा सफाचट रहते हैं। इन्ह तनिक भी लज्जा नही आती कि ये बूढे होने पर भी पुन युवा दिखना चाहते है।

मूछाला री महफलां, मुछमुंडा न सुहाय।
जाणक मिली जमात मे, अवधूनाणी आय ।।6।।

मूछवालो की सभा मे मूछमुण्डे शोभा नही देते। वे ऐसे लगते हैं मानो साधुओ की जमात मे कोई अवधूनाणी घुस आई हो।

पाण मूछ पर पटकता, ऊफणिया आपाण।
[अब] तमख बजावै तालिया, की मुछमूंडा काण ।।7।।

पहले तो रोष प्रकट करते समय वे अपनी मूछो पर ताव देते थे लेकिन अब तो ऐसे अवसर पर ये मूछमुण्डे हिंजडो की तरह फकत तालिया बजाते हैं।

मुकना पण समता मिलै, जुड दताला जोड।
अधर घुट्या घिन अजसै, हुवै न मूछा होड ।।8।।

जिस प्रकार दतविहीन [मुकना] हाथी और दात वाले हाथी के मूल्य म समानता नही होती, ठीक उसी प्रकार मूछमुंडे भला मूछा वालो की क्या बराबरी कर सकते हैं ?

हरखे घुटिया होठरा, मिटा मूछ रा भार।
[तो] कुदरत हू ता क्यू नही, औरतिया अधिकार ।।9।।

घुटे हुए होठो वाले अपनी मूछो का भार हल्का कर बहुत हर्षित होते हैं। तो फिर प्रकृति ने ही इन्हे नारी का स्वरूप क्यो नही दिया ?

आध नीचे उतरिया, मरद मूछ मुंडवाय।
चढी आध कट चोटिया, धिया समोवड धाय ।।10।।

पुरुष तो मूछ कटवाकर अपनी श्रेणी से आधे नीचे आ गये हैं और उधर स्त्रिया अपनी चोटिया आधी कटवाकर मानो पुरुषो की बराबरी कर रही हो।

नारी चाहे नरपणो, नर नारी उणिहार।
बणी दशा विपरीत अब, विकट काल बलिहार ।।11।।

समय की विचित्र बलिहारी है कि अब विपरीत हो रहा है क्योकि नारी तो पुरुषत्व चाहती है जबकि दूसरी ओर पुरुष नारी का रूप अपनाना चाहता है।

रचनाकाल [20 2-1936]

प्रासंगिक

सोरठा

जतरा ईजतराह, भूपा केमत रा मिले ।
कारज पड़ कनराह, छूटे स्वराज हुनराहनू ॥1॥

जो केवल थोथी इज्जत के भूखे हैं उन पर थोड़ा सा पत्थरा मान हो कर स्वराज्य के रास्ते का परित्याग कर देते हैं।

मोथी मत मत राह, नरपत रा पथ द नवा ।
फंसा आपतराह, उतरा ही गल आटवें ॥2॥

नाना प्रकार के सिद्धान्तों का केवल ढोंग होवने वाले नये नये रास्तों पर चलने की सलाह, देते हैं, फलस्वरूप उतनी ही आफत गले में आती है।

मनखपणा रो मान, गुण थी दुनिया नह गिणे ।
ताखडियां इक तोल, कै नप काना दुखिया ॥3॥

दुनिया केवल गुणों में ही मनुष्यता की कीमत नहीं आंकती। यहां सम्मान पाने के दो ही रास्ते हैं या तो अति धनवान होने से या राजा का सलाहकार बनने पर।

२. पत्र – व्यवहार

- जेल के पत्र
- अन्य पत्र

सौ. चन्द्रमणि के नाम पत्र

श्रीमती सौभाग्यवती चिरजीवी वाई चद्रमणि,

प्रसन्न रहो ।

तुम्हारा पत्र मिला पढकर परम सतोष हुआ । मेरे सम्बन्ध मे तुम लोग चिताकाल न बिताकार स्वकतव्य धम पर ही मनन करो । भारत में जन्म लेने के साथ ही जो कतव्य मानव जीवन के साथ अविच्छिन्न प्राप्त होते हैं जो ऋण प्रत्येक देश सतान पर, चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री, सब पर रहता हे उसी कतव्य को पूर्ण करने, उसी ऋण से मुक्त होने में हमारा कल्याण है । मेरे हिस्से को मेरे ही लिये छोड दो । यह भगवत-परीक्षा का काल तीव्र गति से जा रहा है उत्तीणता का आधार केवल मेरे आतरिक बल पर निभर है और उस अतर मे वह परीक्षक आदि गुरु स्वयम विराजमान है । चाहे सच्चे जीवन के रहस्य को और नकद धम के मम को न जानने वाले हमारे कुटुम्ब पर आई हुई विपत्ति परम्परा को देखकर नाना प्रकार के फैसले देते हुए बिना कीमत की टीका टिप्पणी मे लोग लगे होंगे और वे वाक्य तुम्हारे कानो तक भी पहुचते होगे । पर तु तुम्हारे धय और विचारो पर मुझ सतोप है । तुम अवश्य यह जानकर सतुष्ट होगी कि भारत के एक महत्वपूण प्रदेश मे जाग्रति होने का प्रारम्भ अपने परिवार की महान आहूति से ही हुआ है । इस राजसूय यज्ञ मे हम लोगो की बलि मगलरूप हुई है । नाशवान शरीरो की तुच्छता और इस महाभारत अनुष्ठान की महत्ता मिलाकर देखने से ही यह सब प्रतीत होगा । बाहर के आत्मीय जन की कुशलता सदा चाहता हू । यह समय बडी सावधानी का है विश्वास किसी पर न करें हमारा मिलन अवश्य होगा । तुम्हारे पत्र मुझे मिल जाते हैं । स्वतत्र प्रबध है । मेरे प्रिय ईश्वर[2] का जय हो ।

---

1 ठाकुर केसरीसिंह जी बारहठ ने सन 1914 के अत म आजन्म कारावास हो जाने के पश्चात हाटा सेंटल जेल से यह पत्र अपनी पुत्री सौ चद्रमणि देवी को लिखा था । इस समय ठाकुर साहब के समस्त परिवार का सवस्व लु ठन हो चुका था-पैतक जागीर, हवेली एव लाखो की सम्पत्ति-सब कुछ छीने जा चुके थे । भाई जोरावर सिंह और कु अर प्रताप भी फरार हो चुके थे ।

2 जामाता श्री ईश्वरदानजी आशिया, मेंगटिया (मेवाड)

जामाता ईश्वरदान आशिया के नाम

1917 के पत्र की प्रतिलिपि–

Schedule XLVI –Form No 165

Jail form No 41 (old 87)

Hazaribagh Cl Jail

Prisoners Letter

हजारी बाग सन्ट्रल जल
बिहार उड़ीसा
16-8-17

प्रिय जामाता[1] ! प्रसन्न रहो ।

आपका अब एक पत्र मिला । वास्तव म आपका अनुमान सत्य है कि इन तरह मास म मुझे किसी का कोई पत्र नही मिला और न लिखने का प्रसग ही । अस्तु गृह की दुर्व्यवस्था विदित हुई । यह सब भाग्यचक्र का स्वाभाविक नियम ही है आश्चर्य क्या ? जागीर और हवेली आदि क लिये उद्योग करन म भाई[2] न कोई बात उठा न रखी होगी तथापि अभी फल प्राप्ति न हुई इसस व्याकुल होने और धैर्य खोने का कोई कारण नही है । विश्वास रखिये 'यदस्मदीय न हि तत्परेषा" समय मात्र का प्रश्न शेष है । पुरुषार्थ जारी रखिये सिद्धि दाता भगवान है । "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन, मा कर्मफल हेतु र्भू मा ते सगोऽस्त्वकर्मणि"। मैंने भी आपके आग्रह से एक प्रार्थना पत्र ए जी जी साहिब को लिखा है ।

आपने यह नही लिखा कि जब हवेली खाली कर दी गई तब घर क सब लोग शाहपुरा म किस स्थान म निवास करते है और सब सामान कहा रखा ? एव पूज्यपाद मातृस्वरूपा भुवामा साहिबा कहा है और कैसे ह ? भाई किशोर सिह जी कहा ह और क्या व्यवसाय है ? आपन मुझे पत्र मिलन व साक्षात्कार

1 श्री ईश्वरदान आशिया

2 अनुज किशोरसिंह

करने के नियम की जिज्ञासा की। अब साधारण नियम प्रति तीसरे मास पत्र मिल सकता है एव लिखा जा सकता है, एव मास तक एक बार भी प्रति तीसरे मास में हो सकता है। प्राय नैराश्य सा ही। अवश्य मेरे सम्बन्ध में आप सबको अधिक व्याकुलता होगी और विशेषत मेरे अन्नग्रहण न करने की अटल प्रतिज्ञा और साथ ही जेल के कठिन नियमों का साथ साथ स्मरण होने से। तथापि धैर्य रखिए। भगवान यथेष्ट प्रकारेण मेरे धर्म की रक्षा कर रहे हैं और दिन व्यतीत हो ही रहे हैं। "पवन पान करि प्रकृति जियें कन्दर अग्नि पावक, धर्म निबाहनहार हैं वह समरथ इक देव।" आप सबके सविस्तार वृत्त से विदित करते रहें। 'स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि' निश्चय ही भगवान इस शरीर को इसी विधि से तप कराना चाहते हैं और वह पूर्ण हो रहा है। नोचेत् निरपराधियों की यह दशा कभी नहीं होती क्योंकि वे स्वयं आज्ञा करते हैं "न हि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गति तात गच्छति" किमधिकम् विशेषु।

ह० केसरीसिंह

Contents admissible under the rules

Sd/Jailer

Passed/may be posted

Sd/-Superintendent

G P (Jails) P O No 158 11, 610-17 7-16

पुत्र रणजीतसिंह के नाम

हजारी बाग
सेन्ट्रल जेल
बिहार उडीसा प्रांत
20 अगस्त, 1918

प्रिय रणजीतसिंह,[1]

प्रसन्न रहो। भाई किशोरसिंह जी आदि मुझसे यहां मिल गये। आशा है वे सब सकुशल घर पहुंचे होंगे। उनके द्वारा प्यारे प्रतापसिंह का समाचार मिला होगा। अतः लिखो कि वह यहां और कैसे है ? देवी चन्द्रमणि एवं जमाईजी साहिब[2] की कुशलता से सूचित करो। प्रेमभाव की अतिशयता में वायमनो वाक्य का स्तब्ध हो जाना प्राकृतिक नियम है। अतः साक्षात होने पर भी मैं किसी से कुछ नहीं पूछ सका। अतः यह लिखना कि तुम्हारी पढाई का क्या प्रबंध है और क्या दिनचर्या है ? भाई किशोरसिंह जी का पत्र किस पते पर मिलेगा ?

श्रीमान वायसराय की सेवा में मेरी अपील ... श्रीमान न्यायानुसुपरिन्टेन्डेन्ट साहब तथा जेलर साहिब ने स्वीकार किया है उन्होंने कोटा स्टेट से जजमेन्ट की नकल मांगी उसके उत्तर में स्टेट ने लिखा कि 47 रु (अक्ष अस्पष्ट है) फीस जमा करने पर नकल दी जा सकती है। इस पर यहां से न्यायप्रिय जेल आफिसरों ने फिर से स्टेट को स्पष्ट लिखा है कि जब जागीर आदि सब जब्त हैं ऐसी हालत में वह फीस कैसे दे सकता है। बल्कि जेल कोड के नियमानुसार जजमेन्ट की नकल बिना किसी फीस में मिलना चाहिये। स्टेट से उत्तर मिलने पर तदनुसार कार्य किया जायेगा। यदि इतने पर भी नकल नहीं मिलेगी तो मुझे यहां के आफिसरों की न्यायपरता

---

1 ठा केसरीसिंह के प्रतापसिंह से छोटे दूसरे पुत्र
2 पुत्री चन्द्रमणि और जामाता ईश्वरदान आशिया

जामाता[❀] के नाम

हजारी बाग, सेंट्रल जेल,
17 दिसम्बर 1918 ई

मेरी सब आशाओं के आधार प्यारे जामाता !

आपका स्नेह-पूर्ण पत्र मिला। विधि विडंबित अवस्था में जिस कुटुम्ब का हृदय उच्च, स्नेहपूर्ण, कर्त्तव्यपरायणता और धैर्य आदि सद्गुणों से दैदीप्यमान रहे, उस कुटुम्ब का भविष्य कभी मंद नहीं। परीक्षा में उत्तीर्ण होने वालों को कष्ट भूषण ही नहीं प्रत्युत् ईश्वरीय आशीर्वाद है। मुझे दृढ़ विश्वास है मेरा कुटुम्ब भवादृश नर-रत्नों से मंडित है वो इस कसौटी में पूर्ण उत्तीर्ण होगा। दुख ही में सुख का बीज है, सद्गुणों का विकास है, जीवन का माधुर्य है, तबही जबकि विव्हल न हो, स्वार्थपरता न हो।

भगवत प्रेरणानुसार कर्त्तव्य के अनुरोध से श्रीमान वायसराय की सेवा में जागीर एवं सजा के सम्बन्ध में दो अपील मय अंग्रेजी भाषान्तर के भेजी गई हैं। आशा है इस माह में अब तक पहुंच जायगी। उनकी प्रतिलिपि भेजता [redacted]। भाई[1] के साथ मोतीलाल नेहरू, पुरुषोत्तमदास टंडन, मदनमोहन मालवीय आदि हाइकोर्ट के वकीलों को दिखाकर और सम्मति लेकर आगे की कार्यवाही करें। भगवान ठीक ही करेगा। रात्रि का दिन में, तम का प्रकाश में, दुख का सुख में परिणत होना प्राकृतिक नियम है, अवश्यंभावी है। निमित्त भव।

मेरा स्वास्थ्य इन चार माह से बिगड़ गया था परन्तु अब ठीक है, चिन्ता का कोई कारण नहीं। प्रताप[2] का समाचार न मिलने से चिंता अवश्य है। रणजीत[3] के पत्र में अक्षर और भाषा व अशुद्धियों को देखकर उसकी

❀ ईश्वरदान आशिया
1 अनुज ठाकुर किशोरसिंह बार्हस्पत्य
2 पुत्र प्रतापसिंह जिन्हें बनारस षड्यंत्र केस में 5 साल की सजा हो गयी थी।
3 कनिष्ठ पुत्र रणजीतसिंह

शिक्षा पर दुख होता है, क्या उसको इतना सा सम्हालने वाला भी कोई नहीं। भाई किशोरसिंह जी के पत्र का पता अवश्य लिखें। **पाचेटिया**[4] के भ्रातृगण का आधिपत्य मेरी स्मृति पर अटल है।

देवी चन्द्रमणि[5]! तुम्हारा पत्र सदा ही हृदय को स्पर्श करता है। मेरे लिये तुम्हारा आश्वासन स्वर्गीय आशीर्वाद है। तुम्हारी नरोग्यता सुनकर हृदय से चिंता की छाया हट गई। गीता का अध्ययन अवश्य करो और प्रत्यक्ष **ईश्वर**[6] की चरण सेवा में सर्वस्व भाव से समर्पण करो, जो तुमको मिला है। उससे अधिक कोई पिता अपनी पुत्री को नहीं दे सकता। मेरी जननीस्वरूपा मुग्धा मां का अनन्त पुत्र वात्सल्य एवं तप और तुम्हारी माता का उस पचाग्नि तप की तपस्विनी देवी का प्रेम ईश्वरीय कृपा के रूप में मेरा सहायक है। निशंक रहो देवी! अपने पिता का स्नेह चुम्बन स्वीकार करो। किमधिकम्,

भवतो मगलाकाक्षी पिंजराबद्ध
केसरी 'सिंह"

4 पाली जिले में स्थित प्रसिद्ध ग्राम जहां के समस्त बधुओं का ठाकुर साहब के क्रान्तिकारी कार्यों में पूर्ण सहयोग रहा था।

5 ज्येष्ठा पुत्री

6 जामाता ईश्वरदान आशिया।

जामाता* के नाम

1919 के पत्र की प्रतिलिपि –
Schedule XLVI Form No 165
Jail form No 41 (Old 67)
Hazari Bagh Jail
PRISONER S LETTER

हजारी बाग
सेन्ट्रल जेल
14-7-19

प्रिय जामाता !

कारण समझ मे नही आता कि आठ मास से आप लोगो का कोई कुशल सवाद नही मिला, यद्यपि मैं इस अवकाश म तीन पत्र भेज चुका हू तथापि एक का भी उत्तर नही।

इस मौन का कारण विशेष अवश्य ही होना ही चाहिये। अनिष्ट विशेष की आशका का उदय होना भी सहज ही है क्योकि प्राय जाती हुई विपरित दु खित हृदय पर अतिम लात मार कर ही जाती है और वह हृदयविदारक प्रहार ऐसा विषय होता ह कि उसका चिन्ह आजीवन नही मिटता। भूरिदशन यही साक्षि देता है। कही वही दैवी नियम इस ठीक अवसर पर मेरे लिये भी उपस्थित तो न हुआ है ? और उस आघात के ज्ञान से कुछ काल मुझे बचाने के लक्ष्य से ही तो कही आप लोगो का मान-व्रत न हो ? यदि यह ग्रा का सत्य ही हो, यदि इस शेषप्राय तपोयज्ञ की शेष आहूति की यही विधि विधि को अभीष्ट हो तो मैं उस नियता के आदेश को सुनने के लिए वज्र हृदय से तत्पर हू, फिर वो आदेश कितना ही दारुण क्यो न हो। अत पत्रोत्तर म विलब न करें, क्योकि प्रकृत आघात उतना दारुण नही होता जितनी की करालवदना आशका की तामसी छाया।

---

* ईश्वरदान जी आशिया, मेगटिया (मेवाड)

मेरे जीवन-नवजीवन-की यह ऊषा शांति और मगल से पूर्ण हो यही एक मगलमय प्रभु से प्रार्थना और यह रक्षाबधन मेरे समस्त कुटुम्ब की रक्षा, शांति और सुख को नवीन ग्रथी से पुनर्बन्धन करे, यही आप लोगो का आशीर्वाद।

मैं अनेक बार भाई किशोरसिंह के पत्र का पता ज्ञात करने के लिये लिख चुका हू परन्तु आपने अभी तक नही लिखा। इसी कारण म प्रबल इच्छा होते हुए भी उनको आजतक कोई पत्र न लिख सका और न उन्ही का कोई पत्र मुझे मिला। अत अवश्य लिख भेजें। न्यायकारी मुक्तिदाता भगवान् मगलमय हैं। किमधिकम्

ह केसरीसिंह

Contents admissible under the rules
Sd/Jailer

Passed may be posted
Sd/Superintendent

G J P (Jail) P O No 776 7, 200-10-4-18

[श्री ईश्वरदान जी को लिखे दिनाक 31 5-1923 के पत्र का अश]

'प्राय महापुरुषो का जीवन एस दुखा से खाली नही हाता। स्वार्थी और मूढ ससार सच्चे और अलौकिक रत्ना की परीक्षा नही करता। परीक्षा न हो सकना ही तो महान आत्माओ की उच्चता का लक्षण है। अत वे क्षुद्र प्राणियो पर सदा दया की दृष्टि से देखते है आप की तो बात ही नही। **ससार मे ऐसे आदमियो की सख्या अधिक रहती है जो माणिक्य-शिला पर मसाला पीसना चाहते हैं-उसकी स्निग्धता से झुंझलाकर उसे टंचवाने मे अपनी बुद्धिमत्ता मानते हैं।"**

मि. आर. बर्न के नाम पत्र

R Burn Esq I C S
C/o Grindlay & Co
Parliament Street, London

महोदय !

यद्यपि आफिसियल तौर से मुझे इत्तला नहीं है कि आप छुट्टी पर हैं और न यही कि एथनोग्राफी का ऑफिसियेटिंग कार्य किसके हाथ में है मगर खानगी तौर पर आपकी छुट्टी का हाल मालूम होने पर मैं यह पत्र आपको इंग्लैंड में देता हूं।

मैंने एक अरसे के तजरुबे से और जाच के बाद प्रत्येक जाति में नाम ही से उसकी उच्च कोटि और गौण कोटि जान लेने की कसौटी स्थिर की है। अपवाद को छोड़कर इस नियम के सार्वदेशिक होने में मुझे विश्वास है परन्तु मैं इस विषय को फिर भी आपके विशेष अनुभव से जांचे जाने के बाद ही पक्का समझूंगा। अतः आशा है कि आप अपने विचार परिणाम से अवश्य सूचित करेंगे। वह नियम यह है।

आप चाहेंगे तो मैं इस नियम का विशेष स्पष्टीकरण करने में भी उद्योग करूंगा-

किसी जाति के खास नाम का स्त्रीलिंग पूछिये, यदि उन नाम के आखीर में नी णी, आवे तो उसे उच्च जाति का समझना चाहिए और जब खास नाम के आगे न, ण तो उसे ई लग जाती हो इस नियम का निर्वाह होगा। जसे नाम के अखीर में स्त्रीलिंग में 'न' 'ण' या 'इ' तो उसे निम्न श्रेणी में समझो जैसे तेली, तलिन, दरजी, दरजिन, कुम्हार, कुम्हारिन, कुम्हारी, इत्यादि।

स्मरण रहे कि उपरोक्त नियम जाति के उस खास नाम के साथ ही जाचना चाहिए कि जिससे वह आम तौर पर पुकारी जाती है परन्तु उपरोक्त नियम किसी सब-कास्ट, सेक्सन या सेप्ट (Sept) या जाति के किसी उपाधि सूचक नाम के साथ सम्बध नहीं रखता —

ब्राह्मण ब्राह्मणी, राजपूत राजपूतानी,
बनिया बनियानी, इत्यादि

भवदीय
केसरीसिंह बारहठ

यह पत्र कुंअर केसरीसिंह बारहठ ने उसे उस समय लिखा था जब वे 1904–5 में कोटा राज्य के सुपरिटेन्डेन्ट एथनाग्राफी का काम कर रहे थे और श्री आर वन आई सी एस भारत सरकार में Ethnography Department के Director थे।

कुंवर ओंकारसिंह के नाम पत्र[1]

कोटा
दि 22 5 1906

श्रीमान् मित्र मूढमणि मान्यवर कंवर साहिब,

मित्रों के क्लेश से मित्र हृदय का क्लेपित होना स्वाभाविक नियम ही है। चाहिये सच्ची मैत्री।

यद्यपि यह नाचीज हृदय अपने को वैसा पात्र मानने का दावा नहीं करता क्योंकि सच्चे सद्भागी व हो सिद्ध हुए कि जिनकी अंत तक निभ गई, हम तो अभी भविष्यत् की चंचल गोद में हैं।

तथापि कल की बातचीत से शांत रात्रि में हृदय ज्वार-भाटे की लहर सा बना रहा।

जिसका भय प्रीति के प्रारम्भ ही में था वही आ उपस्थित हुआ, मैं उसे सम्मान देने को तैयार हूँ।

परंतु उसके पहले दो अक्षर निवदन कर देता हूँ।

मैं मित्र शब्द में जितना सम्मान देखता हूँ उतना हजार श्री की उपाधि में भी नहीं और अपने मित्रों को कभी उपयोगी बनूँ, उसी में जीवन साफल्य समझता हूँ।

किंतु साथ ही चाहे मुझे कोई न समझे तथापि मेरा कर्तव्य-धर्म मुझे उस स्थान के निमित्त कि जहां से अन्न-जल लिया है, अप्रिय चेष्टा से भी रोकता है।

माना कि अनुचित का साथी होना भी पाप है तथापि हजार अनुचिता पर आंखमिचौनी करके किसी मान सम्बंधी स्थान पर आंख उठाना भी पक्षापक्ष की सीढ़ी पर पैर रखना है।

जबकि उभयपक्ष स्नेह और धर्म से दुर्लघ्य है तो क्या मेरा तटस्थ भाव न्याययुक्त नहीं होगा?

यदि आपको इस जन के शुद्ध भाव पर कुछ भी विश्वास हो तो दृढ माने कि यह तटस्थता की चाहना किसी प्रकार के भय या स्वार्थ या अन्य किसी नीच प्रपच के कारण से नही—है केवल कर्तव्य चिन्ता।

यदि आयुष्य रही तो ऐसे प्रसगो को छोडकर फिर भी परीक्षा के अनेक स्थल मिलेंगे ही। यदि यही स्पष्ट है तो खैर मैं अपने सिद्धान्तो का लेकर उपस्थित हूँ।

हा देश काल ने साथ दिया तो आप कभी अनेक करडो मुठियो पर आक्रमण होते भी देखेंगे और होगे नव किसी खास व्यक्ति या स्थल के हिताहित से नहीं किन्तु यावत् प्रजाकीय हित के सिद्धान्त क्रम मे ही अकुरित होगे और वे ही महान यज्ञ के साधन हैं।

हाँ, मुझे विश्वास है कि आप उदार हृदय मेरे सिद्धान्त को निर्दोष समझ कर क्षमा करेगे। परन्तु जो ऊपरी अनुमान से प्रबल हृदयो म अविश्वास जमा है, कुछ चमक भी चुका है, उसकी सफाइ उन्ह हृदयो की वरुण परीक्षा पर छोड दी गई है, वो किस परिणाम पर पहुचेगा, देखना चाहिये।

मैं हजार भयो के सामने भी निश्चित हूँ क्योकि 'सत्येनास्ति भये क्वचित'। प्रियवर! यह किसी की शिकायत नही है। जिसकी जैसी भावना वह वसा ही फल देगा और आप उस फल ही से सब अनुमान कर लेगे। हृदय तो यही करता है कि "खाक हो जल के मगर उफ दिले नाशाद न कर, दम घुट कर निकल जाय तो फरियाद न कर"।

आप स्वय मेरे से अधिक कार्य-दक्ष बुद्धिमान और शक्तिशाली हैं। अत यदि मेरे से तुच्छ सम्मति न भी ली जाव तो आपके सामर्थ्य म कमी नही होगी।

आपका हा
केसरीसिह

यह पत्र पलायथा (कोटा) के कु वर ओकारसिंह को दि 25-5 1906 को लिखा गया था। कु अर ओकारसिह उस समय सम्भवत कोटा राज्य के इन्सपेक्टर जनरल थे। बाद म कोटा राज्य के दीवान हुए और ब्रिटिश सरकार द्वारा उनको 'सर'(Knight) और के सी एस आई क खिताब दिये गये थे। कोटा राज्य न पलायथा की खाना म हस्तक्षेप प्रारम्भ किया। उस समय कु अर ओकार सिह न केसरीसिह से अपने पक्ष मे सम्मति लेना चाहा, उस सदर्भ म यह पत्र दिया गया था।

सर ओंकारसिंह दीवान, कोटा के नाम गोपनीय-पत्र

मान्यवर !

यदि मैं राजकीय विषय में आपको अपनी सम्मति दूँ और कोई उसे मेरी गैर जिम्मेवर अनाधिकार चेष्टा माने तो ऐसा मानने वाला बिलकुल सच्चा है। मेरी अन्तरात्मा साक्षी है कि केवल आपकी और दरबार की हित और यश की कामना से ही मैंने अनेक बार बिना पूछे भी आपके सामने अपने विचार रखे हैं। मैं अपनी स्वार्थ की बात को बिलकुल अलग स्पष्ट रूप से सामने रखने का साहस रखता हूँ। यह सिक्का जमाकर कि मैं भी सलाहकार हूँ किसी से तिलभर स्वार्थ साधन का लाभ भी लिया हो या ऐसा आशा रखी हो तो ईश्वर की शपथ खाता हूँ। परन्तु यह सच है कि मेरी जगह कोई अधम स्वार्थी या प्रपंची हो तो ऐसी सलाह से हानि होना ही संभव है। जब यह उसूल के विरुद्ध है तो मुझे भी मालिक या मित्र की हानि और अपयश महसूस करते हुए भी अनाधिकार चेष्टा में कदम नहीं बढ़ाना चाहिए क्योंकि इससे व्यर्थ ही आप पर आक्षेप करने का मौका लोगों को मिल सकता है। चाहे अब मैं कुछ न कहूँ फिर भी साथ आने जाने से इसकी आवश्यकता भी नहीं देखता। लोगों की कल्पना चलती ही रहेगी। हाँ, जब कभी भी आप इस शरीर पर विश्वास करके कुछ भी पूछेंगे तो निःस्वार्थ, निष्पक्ष और निर्भय भाव से अपना हृदय सामने रखने में कभी नहीं हिचकूँगा। अपनी ओर से आगे बढ़कर अब अन्त में एक बार फिर भी हृदय पूरा खोल देता हूँ, यही मित्र धर्म है।

मैं यह खूब समझ रहा हूँ कि इस समय आपके सिर पर असाधारण बोझा है, कठिन समस्यायें सामने हैं। आपके हृदय में निर्बलता का अंश है उसे भी जानता हूँ। राज्य व्यवस्था भीतर ही भीतर बहुत सड़ चुकी है बीस वर्ष पूर्व की शांत और ठोस व्यवस्था से आज हम बहुत दूर निकल गये हैं। फिर भी अभी तक रोग असाध्य नहीं हुआ, काबू में आ सकता है, बशर्ते कि

आप हिचक हिचक कर बढने की नीति के बजाय साहस से आगे बढें और साथ ही दरबार की वर्तमान दशा का पूरा ज्ञान होकर भविष्य की चिन्ता मे अपना सब समय लगाने की दृढ इच्छा हो जाय। नोचेत् मुझे भय है कि यह घडा नाहक आप ही के सिर फूटेगा। मैं देखता हूँ इस समय आपके सामने कोई भी सच्चा सलाहकार नही है, जिसका स्वार्थ सना हुआ हो वो निर्भय सलाह कैसे देगा? प्रत्येक हैड अपने सीगे से बाहर सलाह दें तो मैं उपरोक्त डेफिनीशन से उसे भी अनाधिकार चेष्टा कहूंगा क्योंकि वह दूसरे सीगे के लिए गैर जिम्मेवार है। यहां तो खुद के सीगे की सलाह में भी प्रपच भरा रहता है और यह अभिमान कि मुझे किसी की सलाह की, मदद की जरूरत नही, बडे खतरे की चीज है क्योंकि मनुष्य सर्वज्ञ नही, पोजीशन की रक्षा मे यदि दरबार भी ऐसा ही कह तो आज ही लुटिया डूब जाय। इस पूरी परिस्थिति को सामने रखकर सोचने मे मैंने आज सारी रात बिता दी, इसी निर्णय पर आया कि आप बाबू चुन्नीलाल जी[1] पर सोलह आना विश्वास कायम करें तो आपको कदापि धोखा नही होगा। आप उनको सामान्यत भला आदमी समझते हैं परन्तु वह उसमे बहुत अधिक योग्यता रखते हैं। ऐसा सच्चा, अनुभवी विचारशील, निःस्वार्थी और शान्त दूसरा आपको कोटा मे नही मिलेगा। वे मेरे मित्र हैं, इस संशय का छोड दीजिये शक्की मिजाज कभी सफल नहीं होता। जितना सा आपने अनुमान बाध रखा है उससे आगे बढिये और स्नेह व विश्वास पूर्वक उस व्यक्ति को इतनी घनिष्टता मे ले आइये कि जिसमे वे अपने हृदय को आपके सामने पूरा खोलने मे साहस कर सकें। वर्तमान दशा उनसे लेश छिपी नही। इसीसे व अब यहा से भागने के लिये तैयार हैं जबकि दूसरे चिपटना चाहते हैं। इसी से आप उनकी निःस्वार्थता और सतोष को समझ सकेंगे। ऐसी दशा मे मुझ गैरजिम्मेवर को कुछ कहने की आवश्यकता भी नहीं होगी। आप प्राय छोटी छोटी बातो को इकट्ठी करके राय कायम करते हैं, यह भी एक नीति है, परन्तु उसी पर अटल हो जाना दूसरी बात है। नीचे के दर्जे पर चाहे वह नीति ठीक हो परन्तु प्रधान पद पर उसका उपयोग ठीक नही। पूर्ण निर्दोष

[नोट –यह गोपनीय पत्र समवतया 1933–34 मे लिखा गया था]

1 भूतपूर्व कोटा राज्य के सुयोग्य एकाउटेंट जनरल, जो ठाकुर साहब के घनिष्ठ मित्र थे।

कोई नहीं मिलेगा, निभा लेने की नीति रखनी ही पड़ेगी। इसी लक्ष्य से मैंने **घनश्यामदास**[1] का नाम लिया। मैं अब भी उसको ज्यादा मान वालों की अपेक्षा उसे योग्य व विश्वसनीय मानता हूँ।

संक्षेप में –

1) आपका वर्तमान टाइमटेबल इस पद के अनुकूल नहीं, समय व्यर्थ जाता है। घर का काम देखने के लिए सिर्फ छुट्टी का दिन रहना चाहिये। 7 या 7½ बजे प्रातः से 10 बजे तक घर पर बैठकर घर के व बाहर के लोगों को मिलने का मौका दें। बहुत सा काम जबानी निपटा दें, यथा योग्य ही मिनटों का समय दें, व्यर्थ चिपक कर कोई न बैठे।

2) अपने लिये (राजकीय) दीवान सेक्रेटरी तीन सौ से कम का नहीं रखें ऐसे को रखें जिस पर आप का विश्वास हो। वह आपकी तमाम पत्रों को बा तरतीब फुल नोटों व निर्णय के साथ तयार रखें ताकी महत्वपूर्ण विषय ही आपके लिये रह सकें। कुछ परवाह नहीं कि ये काम **अजीतसिंहजी**[2] को दिया जाय इसमें उनका अनुभव भी विस्तीर्ण होगा, काम बड़े विश्वास का और असाधारण है। खर्च से न घबराकर **विश्वम्भरनाथजी**[3] को भी ऐसा ही सेक्रेटरी दिया जाय जिसे वे चाहें।

3) दरबार के सामने उनकी मर्जी के नाम पर **गोल गोल शब्दों में कोई भी बात पेश न करें, अपना निर्णय स्पष्ट शब्दों में रखें। जहां मतभेद हो नम्रता से परिणाम अवश्य सुना दें।**

4) जहां तक हो इस पार्टीबन्दी को और उसके भयंकर भविष्य को दरबार व महाराज कुमार के सामने स्पष्ट शब्दों में रख दें। और जहां तक हो वे और आप मिलकर जैसे हो वैसे दलबन्दी को उठावें। दलबन्दी की जड़ पकड़ लेने पर यह सब सुगम हो सकता है।

---

1 भूतपूर्व कोटा राज्य के एक उच्च शिक्षा प्राप्त सुयोग्य अधिकारी।
2 दीवान आपजी, सर ओंकारसिंह के ज्येष्ठ पुत्र।
3 कोटा राज्य काउंसिल के सदस्य श्री विश्वम्भरनाथ चौरा जो भूतपूर्व दीवान सर रघुनाथदास के पुत्र थे।

5) वर्तमान व्यक्तियों में से, बशर्ते कि वे टिक जाय, बा चुन्नीलालजी को अपने परामर्श में लें। जितना आप हृदय खोलकर व्यवहार करेंगे उतना ही उस हृदय को खुलता देखेंगे।

6) दो मेंबरों की हालत बनी रहने पर, कार्य का विभाग ऐसा स्पष्ट करें कि कहीं भी दो का मतभेद न टकरावे। साहस करने पर ऐसा होना असम्भव नहीं।

7) राजपूत के नाम से कौमी पक्षपात की नीति का न छुवें, मारवाड़ आदि में यह राज्य के हित में हानिकर सिद्ध हुई है।

8) काम को छोड़ भागने की बात किसी से कहना या विचारने का यही मतलब है कि आप दरबार की नाव को मँझधार में छोड़कर बचना चाहते हैं। अब तो आफत में छोड़ना स्वामिभक्ति के विरुद्ध और घोर बदनामी उठाना है और हिचक-हिचक कर चलना खुद को फेलियोर बनाना है।

मैंने तो यह सब मित्रता के नाते निर्भय होकर लिखा है। दीवान की दृष्टि से इसे न देखें। मुझे अब कुछ कहना भी नहीं है। व्यर्थ सलाहकार बनकर आपको और अपने आपको कठिनाई में डालने की धृष्टता क्यों करूं ?

यदि स्मरण हो तो वह असाधारण घटना सिद्ध कर देगी कि आपके शब्दों पर मुझे कितना विश्वास है जबकि आपके कहते ही मैंने अपने ऊपर सारा अपराध ले लिया और मि० आर्मस्ट्रोंग[1] को लिख कर भी दे दिया। वही विश्वास आज भी अखण्ड है। आपने मुझे 36 वर्ष तक जांचा है, मैंने भी आपके सिवाय किसी राजपूत को पूर्ण मित्र नहीं पाया। आपका निर्णय क्या है, नहीं कह सकता।

---

1 मि० ए० सी० आर्मस्ट्रांग, आई० पी०, इंसपेक्टर जनरल आफ पुलिस, इन्दौर, कोटा केस 1914 के प्रोसीक्यूशन इन्चार्ज।

श्री शालिग्राम व्यास के नाम पत्र

श्री शालिग्रामजी व्यास, मुख्यमंत्री नाथद्वारा

मित्ररत्न,

आज मैं यह पत्र आपको एक अर्से के बाद लिखता हूँ। इसका प्रयोजन यह नहीं कि हमारे प्रेम और विश्वास को ताजा करने के लिये ऐसा किया जाता है। वास्तव में मेरी कल्पना में हमारा वास्तविक हार्दिक स्नेह और विश्वास सदा ही ताजा है। पत्र-व्यवहार में तो केवल प्राकृतिक जनों का प्रेम ही कायम रहता है, अथवा यों कहें कि एक बार जग हुए को दुबारा हिलाने की जरूरत नहीं, वह क्रिया तंद्रा में हुआ के लिये ही हो सकती है। आप जैसे विद्वान, गुण-रसिक और नीतिज्ञ मित्र का स्नेह में शिथिलता का अविश्वास लाना भी पाप है।

प्रश्न होगा, तब यह लेखनी क्यों उठाई गयी? सुहृद्वर्य! यह दीप मालिका का त्यौहार इसी विज्ञान पर चलाया गया है कि वर्षा के कल्याणकारी काय से भी कभी कीचड़ के छीटे उड़कर तटस्थ निर्मल पदार्थ भी कुछ आभा शून्य हो जाते है। अतः वर्षा के अनन्तर जो जिसे अपना समझता है जिसका जो प्रिय पदार्थ है, वह उस पूंछ पाछ कर पीछो उसी उज्वल स्थिति में लाकर सदा के अपने परिचित पदार्थ को नवीन दीप्ति में देखकर आनंद में लौ लगाता है। सच है वह स्नेहमयी लौ अंधेरे संसार को प्रकाशित कर देती है। यदि संसार इस अवसर पर अपने जड़ पदार्थों में भी सफाई करता है तो मैं अपने स्नेही के हृदय को भी क्यों न पूछूं? जड़ ही में संसार का सुख है तो मुझे चेतन की सफाई में कितना आनंद होना चाहिए? वस्तु की सफाई वास्तव में उसे पूर्वावस्था लाने में कुछ कष्ट भी पहुँच जाता है वैसे ही मेरी इस लम्बी व्याख्या से आपको कष्ट हो तो उसकी क्षमा चाहकर प्रवृत्त हूँ।

आपही के भेजे हुए कु सिरहमलजी एम ए, एल एल बी आदि महाशय यहा दो का एक करने के लिये आये है। उनसे मेरा भी पाच चार बार जाकर स्वय मिलना हुआ। स्वदेश का स्वाभाविक प्रेम किसी म्यूजियम मे भी काठ के मस्तकों पर बधी हुई पगडियों मे स्वदेशी बधु को ढूढता है, तो साक्षात् जन्मभूमि मेवाड के वासियो को, उनम भी विद्वान को देखकर दिल मिलन को क्यो न ललचावे ? ललचाया और मिला ! मुझे खेद है कि उन्होने मेरा परिचय उनके घरू केस जो महाराजा साहिब [या उनकी पार्टी] और सेठ साहब के मध्य मे कुछ काल पूर्व हुआ था और आप उसे भली भाँति जानते हैं के स्मरण के साथ किया। यदि मेरा शक्ल ही उस केस को-स्वामि धन को "" "स्मरण दिलाव तो क्या इलाज ? उसका फल हुआ यह कि हृदय-परीक्षा के पहिले ही आशका, भ्रम, भय और वैमनस्य उस विद्वान-हृदय म भी जम गये। नही देखा देश काल कि नही जाचा मानव प्रकृति का उत्क्रमण ! हा !! प्रबल मोहमाया प्रकृति शक्ति ! तू ईश्वर को भी मोहती है तो मानव की कहा गति !! अत सशयात्मक दृष्टि ने विद्या, बुद्धि और तर्क की शक्ति का रुख दूसरी ही ओर फेर लिया, उस राज्य भर की प्रत्येक रियासती सहज घटनाओ मे भी मेरा ही आभास दीख पडा। खेद है कि वह असर इतने ही म नही रहा प्रत्युत जहा तक मैंन सुना है यहाँ से नाथद्वारा जान वाले पत्रो मे बद करके जादू कला से मेरा वही आभास मूर्ति आप और गोस्वामी जी महाराज के सामने कल्पना राज्य मे भी खडी की गई और इष्टसिद्धि म विघ्न रूप दिखाई गई। इसक लिये आपका स्वय हृदय साक्षी दगा। नाथद्वारे की दृष्टि से कोटे को दिखाया गया। खैर यह तो आप जैसे नीति निपुण, राज्यानुभवी जब चाह तब सतोष कर सकते है कि कोटा इस समय प्रपच से सर्वथा शून्य है। यहाँ की स्थिति और व्यवस्था स्वय सिद्ध कर सकती है कि कोई कितना ही प्रबल व्यक्ति न्याय की डोरी को रूप मे नही हिला सकता। बिना जाहिरा सबध के कोई किसी बात म अपनी चू तक नही मिला सकता। सारांश यहा घुसफुस की सलाहो का राज्य नही है। प्रत्यक को दृढ विश्वास है कि राज्य दृष्टि से श्री दरबार और दीवान साहब जो कुछ करेग वह निष्पक्षपात और उचित ही होगा। अलबत्ता अपने ही हित को दखन वाली मनुष्य की काणी दृष्टि अन्यथा भाव भी बाध सकती है वह बाधे परन्तु दो आख वाला धर्म चक्षु और हृदय पक्ष धारी कोई व्यक्ति यहा ज्यादा हाथ पैर पीटने की आवश्यकता नही दखेगा।

मुझे सखेद आश्चर्य है कि, एक स्वदशी, सम्माननीय विद्वान नर रत्न न मुझे अन्यथा दिखान मे क्या लाभ माना ? क्या यह कि, एसा कहने से

यहां का कार्य कष्टसाध्य सिद्ध करके उसकी सफलता में अपना महाभारत कौशल सिद्ध करना? क्या यह कि सब को निगुरा सिद्ध करके अपनी भक्ति को सर्वोपरि बताना? क्या यह कि, कोई दूसरा भी यश का भागी न हो जाय इसके पहले पाल-बंधी करना। इस कला का अर्थ समझने में मेरी बुद्धि अल्पमति-काम नहीं देती। एस विद्वान से इन क्षुद्र लालसा और निकृष्ट मार्ग ग्रहण की आशा कदापि नहीं रखी जा सकती। किंतु कारण कुछ होना ही चाहिए। यह तो सोचा जाय कि मुझे किसी के इष्ट हेतु में विरुद्ध होने में क्या लाभ और जहाँ स्वार्थ हो वहाँ भी मेरी प्रकृति किस सिद्धान्त को पकड़े हुए है इसका ठीक निर्णय करने के पहिले ही मेरी जीवनी पर अपनी कल्पना का विजातीय राज्य जमाना कितना अनुचित? आशा तो थी कि श्रीनाथजी की सेवा में हम भी कभी उपयोगी होंगे।

मित्र हृदय में यदि कभी भेद पड़ने का प्रसंग आवे तो पूर्ण रूप से हृदय खोल देना चाहिए। ऐसे समय में पालिसी का अवलम्बन ग्रहण करना मित्रता के ही नहीं बल्कि मानव धर्म के गले पर छुरी चलाना है। अतः जो कुछ था सब शुद्ध हृदय से स्पष्ट शब्दों में कह दिया गया। अब इसके परिणाम को आप ही की दीर्घ दृष्टि पर छोड़कर सदा के लिये निश्चित होता हूँ और अपने हृदय का सांत्वन् श्री भगवद्वाक्य—गीता—ही से करता हूँ कि

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भू मा ते संगोऽस्त्व कर्मणि॥

अब मैं इस मधुर आशा की गादि में इस विस्तृत पत्र की समाप्ति करता हूँ। समय आने पर गोस्वामिवर्य आप और विद्वद्वर्य सिरहमलजी साहब मेरी तटस्थ स्थिति और निर्मल भावना का स्वरूप स्वतः देखेंगे और यथा-चेष्टा हुए या संकोच के भागी होंगे।

मैं इस दीपावली पर आपके पुरातन "स्नेह दीप" को फिर एक बार सम्मान से स्मरण करता हूँ कि जो पवित्र और नैसर्गिक होकर किसी आशा निराशा की जहरीली हवा से सदा दूर रहे। अब यदि चाहना है तो इतनी ही मात्र कि कभी सावकाश हो तो स्नेहपूर्वक स्मरण कर लिया करें।

मैं हूं आपका मंगलाकांक्षी
कंवर केसरीसिंह बारहठ

यह पत्र दि 20 अक्तूबर 1906 को कुं. केसरीसिंह ने नाथद्वारा के दीवान श्री शालिग्राम जी व्यास को लिखा था।

महाराज साहब श्री रत्नसिंह जोधपुर के नाम पत्र

कोटा,
दिनांक .. 1910

श्रीमान् मित्र शिरोमणि महाराज साहब
श्री रत्नसिंह जी महोदय, जोधपुर !

मुबारिक ! अभिनन्दन !! शाबास !!! जिस समय की कल्पना से ही चित्त में एक प्रकार का उत्साह बल और आनन्द प्राप्त होता था वही समय पुरुषार्थ बल से आज सामने उपस्थित है। मेरे "आशीर्वाद के शब्द" आपको अवश्य स्मरण होंगे। अब दो शब्द फिर से अवश्य स्मरण रखिये। मान्यवर ! समय से पहिले आनन्द मनाना किसी भी बुद्धिमान को योग्य नहीं और समय को चौबीसवें घण्टे के साठवें मिनट तक जाँचना चाहिये। अधिकार का मिल जाना सहज है परन्तु उसका यथावत पालन करना और सिद्धि पर पहुँचाना महान् दुर्घट है। जो कुछ हुआ वह प्रथम सीढ़ी है। यदि इसी के आनन्द में मग्न हो गये तो पश्चाताप का समय भी दूर नहीं होगा। जो साधक प्राथमिक सिद्धियों ही में मग्न हो जाता है उसका योग भ्रष्ट हुए बिना नहीं रहता स्मरण रहे। अभी तक आप लोगों को महान् कठिन घाटियों को पार करना बाकी है। यदि इस पहिले ही हमले की सफलता में यहीं कुछ भी आराम लेने की इच्छा की तो विपक्षियों को मदद देने के बराबर होगा और उसके बदले में वे आप लोगों को फिर से घर में बैठा कर सदा के लिए आराम (जिसकी भयंकरता को आप लोग खूब अनुभव कर चुके हैं) दे देंगे। जिस वेग से आप लोगों ने कदम बढ़ाया है उसी वेग से आगे बढ़ जाइये। इस वाक्य को सदा स्मरण रखें—

विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम्॥

अर्थात् जो व्यक्ति जबरदस्त दुश्मन को छोड़कर फिर चुप हो बैठ जाता है वह मानो घास की ढेरी मे आग लगाकर सामने हवा की रुख पर लेटता है। अब तक तो विरोधी पक्ष को अनेक मामलो म उलझा रहना पड़ता था। इसी से उसका वर्ग विभक्त हो जाने में उतनी आपत्ति नहीं थी। परन्तु वह अब सब तरह फुरसत में रहकर अपनी कुटिल नीति का सारा बल आप पर झोंक देने के उपायो म ही लगेगा और खुशी के साथ समय को ताकता रहेगा। वह आपकी हर एक छोटी से छोटी कमजोरी का लाभ लेने म भी नहीं चूकेगा। इससे हीन बल होने पर भी वह बलवान होगा और आप लोगो का विविध मार्गों पर ध्यान देने से सावधानी विभक्त हो जाने म सबल अवस्था म भी आप लोग कुदरती तौर से उस अश म निर्बल होगे। अत अपने कार्यों को ऐसी सावधानी से चलाना चाहिये कि जिसम उसे चारो ओर निराशा ही निराशा प्रतीत हो। इसके लिये प्रथम कर्म राज्य के प्रत्येक अग के मन को जीतना है, उसे मालुम होने दो कि आप न्यायी हैं दयालु हैं, क्षमाशील हैं, समर्थ हैं, निष्पक्ष है कुटिलता से रहित हैं समाधान-प्रिय हैं व्यक्तिगत-स्वातन्त्र्य के पोषक हैं और निरन्तर जाग्रत हैं। दूसरा कर्तव्य राज्य के अधिकार और स्वातन्त्र्य की शक्ति को सुरक्षित रखकर उचित मार्ग से गवर्नमेंट की अनुकूलता, विश्वास और नैतिक मैत्री का कायम रखना। तीसरा कर्तव्य अनुचित लाभ और कृपणता न करते हुए राज कोष की रक्षा और वृद्धि करना एव उसे अपव्यय से बचाना। चौथा कर्तव्य प्रपचियो को शनैः शनैः निकाल बाहर करके विश्वास पात्र, देश हितैषी, योग्य और सच्चे पुरुषो पर अधिकार की विभाग शैली से सीमा तक विश्वास रखकर उनकी वृद्धि करना। पाँचवा कर्तव्य प्रत्येक अधिकारी को स्वतन्त्र विचार प्रगट करने का अधिकार, उसके विचारो की कसौटी करने का साधन और उसे अपनी कार्यकुशलता व योग्यता का बदला पाने का दृढ विश्वास। छठा कर्तव्य, शकाशीलता एव कुटिल नीति का बल कम करके शुद्धि नीति का ही अवलम्बन करना। सातवा कर्तव्य, कार्यकर्ताओं का घनिष्ट प्रेम और परस्पर विश्वास परन्तु अन्ध विश्वास नहीं। आठवा कर्तव्य, आत्मबल को नाश करने वाले विषयभोगो की वृत्ति, मिथ्याभिमान, दुराग्रह और क्षुद्रस्वार्थ आदि का प … नवमा कर्त्तव्य, सर्वतोभावेन शांति और समाधा … अवलबन। … बातो से सवथ, बचना चाहिये कि … र साधार … प्रकार अप्रीतिभाजन हो गये थे वो … भी वु … के हृदय म दोष है। अत प्रजा की

और सान्त्वन करना, स्वयं सरकार[1] का एक मात्र जिम्मेदारी का पहिला और आवश्यक कार्य होना चाहिये। प्रजा के विचारों की उपेक्षा करना किसी भी कार्यकर्ता को न शोभा देता न यश ही देता है। इतना ही नही किन्तु प्रजा का सामान्य अभाव भी बलवान सत्ता को अनिष्ट के गढे मे धकेल देता है, यह इतिहास-सिद्ध सत्य है।

यदि आप लोग इन मुख्य मुख्य सिद्धांतो पर ध्यान रखकर साहस, उत्साह और जागृति के साथ कार्य करेंगे तो निःसदेह यश और सुख के भागी होंगे। माननीयवर! यद्यपि सर[2] जैसे अनुभवी, दूरदर्शी साहसी और कार्यकुशल नेता के हुए मे रहने से आपको सहसा आपत्तिग्रसित होने की आशंका नहीं है यह सत्य है, तथापि वह शरीर कितना ही समर्थ क्यों न हो भगवान बुद्ध के शब्दों मे वह तो "अपस्य हुत्री श्रमन बलस्य गोवस्यग्रोनिनिधन रतोना। नास्मृतिनां रितुद्रियाणां मेघा जरानाम यथैष्ठ मत्न"। उन श्रीमानों की वृद्धावस्था से होने वाली स्वाभाविक कमियो को यदि आप लोग एक दिल एक प्राण, एक मन होकर पूर्ण करने मे कचाई रखेंगे तो उसका अनिष्ट फल आप ही लोगो को भोगना पड़ेगा। इस आप्त शरीर की उपस्थिति को अहोभाग्य समझ कर लाभ ले लेना आपके जिम्मे है। प्रत्येक विषय के भविष्य की कल्पना बांध लेना लोक प्रवाह है उसी प्राकृतिक नियम से जोधपुर का वर्तमान स्वरूप भी टल नही सकता। अत प्राय वर्तमान लोक कल्पना है कि गाड़ा अधिक से अधिक सरकार के शरीर तक ही घूमने का है और जिस दिन वे नहीं रहे (ईश्वर इनको शतायु करे) उसी दिन फिर सहसा परिवर्तन होकर आप लोगो को उसी प्रथवा वैसे ही किसी विनाश चक्र मे डूबना पड़ेगा। महरबान! इस भविष्य को मिथ्या और कपोल कल्पित साबित करना ही आपका धर्म है, कर्तव्य है और पुरुषार्थ की परीक्षा मे उत्तीर्णता प्राप्त करना है। कभी न भूलें कि कोरी बातें मारने से राज्य-चक्र नहीं चलता, चलता है कार्य-शक्ति से, सुख और स्वार्थ का भोग देने से और मन तरंगो को मारकर वास्तविक कर्तव्य पालन करने से। संभव है इस लम्बे पत्र को पढ़ने से आपको श्रम प्रतीत होता होगा। अत इस बार अधिक पाठ परिश्रम देना नही चाहता। मात्र अन्त मे इतना ही स्मरण दिलाकर इस परिश्रम की क्षमा चाहूंगा कि, यह पत्र मैंने यद्यपि आपको सम्बोधन

---

1 महाराज जनरल सर प्रतापसिंह, जोधपुर राज्य के प्रधान मंत्री एवं सर्वेसर्वा। उन्हें 'सरकार' सम्बोधन से ही सर्वत्र माना जाता था।

2 सर प्रतापसिंह।

करके लिखा है तथापि मेरी यह प्रार्थना है आप उन सज्जनों सिरदारों के लिये कि जो इस शुभ प्रसंग को सद्भाग्य समझते हों। मैं आपसे और जो महरबान इस पत्र को स्वीकृत करें उन सबसे अपने विचार स्वातंत्र्य की क्षमा मांगता हूँ क्योंकि एल्लूपत्तू न करके यथार्थ विषय को आप लोगों के सामने रखना और बिना पूछे भी आपका ध्यान कर्तव्य की ओर आकृष्ट करना मेरा जाति धर्म है, मानने न मानने में आप स्वतन्त्र हैं वैसे ही साफ कह देने में मैं स्वतन्त्र हूँ। मेरे सच्चे महरबान वैद्य[1] ठाकुर साहब से व म सा विजारसिंहजी साहब से व म सा कृष्णसिंह जी से एवं जो जो इस गरीब पर कृपा और विश्वास की दृष्टि से देखते हैं उन सब सिरदारों को मेरी ओर से बहुत बहुत जैमाताजी की विनति करें। अन्त में श्री मगलमय ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह आपको मगल मार्ग दिखावें।

आशा है, आपका कृपा-पत्र बराबर आता रहेगा।

कृपाभिलाषी
केसरीसिंह बारहठ

---

1 ठाकुर विश्वनाथ सिंह वर्मा, जो महाराजा सर प्रतापसिंह के जामाता थे। इनकी जातीय सुधार कार्यों में बड़ी रुचि और सहयोग था।

श्री वी. जे. पटेल के नाम पत्र

सेवा में,

श्री विट्ठल जे भाई पटेल महाशय,
मंत्री आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी, बम्बई।

प्रिय महाशय,

कलकत्ता स्पेशल कांग्रेस से लौटते ही मैं कई रोग से मैं बहुत ही व्यथित हो गया। अभी तक मेरी हालत ऐसी नहीं कि मैं अपने सम्पूर्ण विचार विस्तृत रूप से आपके सम्मुख रख सकूँ। तथापि विषय की गम्भीरता व आवश्यकता ने मुझे विवश किया है कि मैं अपने विचारों का अत्यावश्यक भाग, संक्षेप में ही क्यों न हो आपके सामने अवश्य रखूँ, अतएव सबसे प्रथम —

1 आप लोगों कांग्रेस सब कमेटी के नेताओं ने देशी राज्यों की प्रजा को कांग्रेस में स्थान देना स्थिर कर उसकी अखिल भारतवर्षीयता को सार्थक किया है तदर्थ राजपूताना व मध्य भारत के लोगों की ओर से, मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

2 यह काम, जो इसकी महत्ता और आवश्यकता को देखते हुए बहुत पहिले होना चाहिये था, बहुत देर से हुआ है। खैर, गया वक्त फिर हाथ नहीं आता। परन्तु हमें यह विश्वास जरूर था कि देर आयद दुरुस्त आयद। किन्तु खेद है कि ऐसा नहीं हुआ।

3 कांग्रेस सब-कमेटी ने देश के जो प्रान्त बनाये हैं उनमें अजमेर और दिल्ली का एक ही प्रान्त बनाकर गवर्नमेंट का अनुसरण क्यों किया गया? मेरी सम्मति में—

(क) राजपूताना व मध्य भारत को मिलाकर अजमेर का एक स्वतंत्र प्रान्त बना देना चाहिये जिसका नाम 'राजस्थान' हो।
(ख) और दिल्ली पंजाब में मिला दिया जाना चाहिये।

4 कांग्रेस कमेटी ने जो प्रान्त रचना की है उसमें देशी राज्यों को शामिल तो कर लिया गया उन्हें भी प्रति लक्ष एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दे दिया गया है, परन्तु उसने जिन जिन प्रान्तों से जितने जितने

प्रतिनिधि आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी में लेना स्थिर किया उस समय मालुम होता है–वह देशी राज्यों की जनता को भूल ही गई। अन्यथा कोई कारण नहीं दीखता कि पहिले के समान ही अब भी अजमेर व दिल्ली को तीन ही प्रतिनिधि आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी में भेजने का अधिकार दिया जाता, जबकि राजपूताना व मध्यभारत के समस्त देशी राज्यों की प्रजा का प्रचण्ड जनसमूह भी अजमेर में ही समाविष्ट कर लिया गया।

[क] इसलिये आवश्यक तो यह है कि प्रत्येक देशी राज्य की ओर से कम से कम एक प्रतिनिधि आल इंडिया कांग्रेस कमेटी में रहे परन्तु जब तक ऐसा न हो तब तक कम से कम पचास प्रतिनिधि समस्त देशी राज्यों की ओर से आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी में रहें।

[ख] और इस हिसाब से राजपूताना व मध्यभारत के देशी राज्यों की ओर से एक एक प्रतिनिधि आने की जब तक सुव्यवस्था न हो तब तक राजपूताना व मध्यभारत की सब रियासतों की ओर से "राजपूताना मध्यभारत सभा" और मनोनीत पन्द्रह प्रतिनिधि आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी में अवश्य लिये जाय।

5 संक्षेप में का न कमेटी रिपोर्ट में, इस समय परिवर्तन करवाने के लिये देशी राज्यों के सम्बन्ध में, मेरे विचार का अत्यावश्यक भाग यही है। मेरे विचार से यदि इस प्रकार भी कांग्रेस सब-कमेटी की रिपोर्ट में सुधार नहीं किया गया तो देशी राज्यों की प्रजा को कांग्रेस में प्रतिनिधित्व देने का कोई अर्थ ही नहीं होगा।

ईश्वर ने चाहा और आप लोगों ने अवसर दिया तो कांग्रेस होने तक, कम से कम नागपुर कांग्रेस में शरीक होने योग्य स्वास्थ्य लाभ करके मैं इस विषय में अपने जीवन के अनुभव सहित अपनी सम्मति विशद और विस्तृत रूप से आप लोगों के सम्मुख रखूंगा। आशा है देशी राज्यों की प्रजा को अपने समकक्ष बनाने के सध्देतु से कांग्रेस सब कमेटी की रिपोर्ट में कम से कम उपरोक्त सुधार करवाने के लिए आप अवश्य सहमत होकर सहायक होंगे।

'राजस्थान केसरी' कार्यालय,
वर्धा सी पी
ता 16 11 1920

भवदीय
ठाकुर केसरीसिंह

महाराजा सर गगासिंहजी, बीकाने के नाम

नृपति चूड़ामणि स्वनामधन्य जगलधर बादशाह
महाराजा गगासिंहजी की कृपालु सेवा म,

राजन् !

यद्यपि यह शुभचिन्तक श्रीमानो की वीरता, दक्षता नयोचित सुयो
आदि गुण परम्परा को दीर्घकाल से सुनता आया है परन्तु इस बार को
श्रीमान् से एक घंटे की वार्तालाप से मेरे हृदय में श्रीमान् के प्रति श्रद्धा
सौगुनी बढ़ा दी। श्रीमान का उदार व्यवहार और हृदय की विशुद्धता प्रक
झलक रही थी परन्तु मुझे यह प्रथम बार ज्ञान हुआ कि श्रीमान् का
कविता के मर्म तक भी पहुँचने वाला है। इतना ही नहीं किन्तु जो **वीर-भ**
डिंगल जो इस निस्तेज विलासिता के जमाने में वीर-धर्म के साथ
अनादृत और मृत-प्राय सी हो चुकी है उसका आदर अभी आपके हृद
है। यही श्रीमानों के वीर हृदय की साक्षी है। यदि किसी चारण के हृद
चारणत्व शेष है तो उसके लिये यही वीर-क्षात्र हृदय अत्यन्त प्यारी
आकर्षक वस्तु है। मरुधरापति महाराजा मानसिंहजी ने सच ही कहा है

चारण भाई क्षत्रिया, ज्यां घर खाय तियाग।
खाय तियागा काढ़िया बाप्नू लाग न भाग॥

स्पष्ट निवेदन है कि श्रीमान् के हृदय-सिन्धु में व कैसी और की
आकर्षक शक्तियां हैं कि जिन्होंने इस उदास हृदय को भी इतना प्रभावित
किया। ईश्वर से प्रार्थना है कि इस ऊपर से विकट और भीतर से प्रमा
काल में देशी राज्यों की मान-मर्यादा की रक्षा करने के लिये श्रीमान् ः

महाराजा बीकानेर सर गगासिंहजी ने सभवत सन् 1931 में जब व
आये तो कुछ महत्वपूर्ण मामलो पर मन्त्रणा हेतु ठा केसरीसिंहजी
बुलाया, उस समय यह पत्र लिखा गया।

शक्ति को चिरायु करे क्योंकि सब तरफ से लुटिया डूबी जा रही है। सत्ता, स्वाभिमान और गौरव को समझने और बचाये रखने वाले अब इधर दूसरे नजर नहीं आते। श्रीमान् का शरीर केवल बीकानेर के लिये ही नहीं बल्कि भारत के समस्त देशी राज्यों के लिये गौरव की वल्लभ वस्तु है, अस्तु

उस समय श्रीमान् ने महाराणा साहब के वे सोरठे सुनाने की आज्ञा दी थी, परन्तु शुभचिन्तक ने केवल तीन चार ही सुनाये क्योंकि मुख्य प्रासंगिक विषय का समय इधर लेना उचित नहीं समझा। अतः अब इसके साथ वे पूरे तेरह सोरठे ही नजर भेजता हूं।

उस समय की मुख्य बातचीत के विषय में फिर भी कुछ अर्ज करना चाहता था और अपनी सम्मति भी सामने रखना चाहता था परन्तु आपजी साहब[1] के बाहर खड़े रहने के ख्याल से अधूरी छोड़कर आज्ञा लेकर उठ आया और फिर प्रसंग नहीं मिला। यदि श्रीमान् की इच्छा हो और फुर्सत हो तो आज्ञा होने पर जहां के लिये फरमावें वहीं एक दो दिन के लिये हाजिर हो सकता हूं। नोचेत् मैं जितना भी स्वामिभक्ति में निष्काम कर्त्तव्य पालन कर सका उसी में सन्तोष है बाकी "अवश्यम्भावि भावानां प्रतीकारो न विद्यते" अर्थात् जो भविष्य में निश्चय ही होने वाला है उसका कोई इलाज नहीं।

शुभेच्छु
केसरीसिंह बारहठ

---

1 सर ओंकारसिंहजी पलायथा, दीवान कोटा

पुत्र रणजीतसिंह के नाम

मणिक भवन,
कोटा दि. 5.7.1937

मेरे एक मात्र प्यारे पुत्र चि. रणजीतसिंहजी,
सुखी रहो।

मेरी आत्मा !

प्रत्येक पिता का धर्म है कि अपनी सन्तान के लिये स्थिर सुख का उद्योग करे। परन्तु तुम लोगों के लिये मैंने अपने सिर पर द्विगुणित उत्तरदायित्व समझा क्योंकि मैंने अपनी पराधीना मातृभूमि के उद्धार-यज्ञ में अपना भाग पूर्ण करने के लिये अपने आपकी आहुति दी किन्तु विपरीत वायु ने उस ज्वाला से नाहक तुम लोगों को भी झुलस दिया और घर के ही देशद्रोही स्वार्थियों ने सर्वस्व लुण्ठन करके तुम सबको सर्वथा निराधार बना दिया और मेरे सिर परिवार ऋण चढ़ा। फलतः जेल से आने के पश्चात् मेरा यही संकल्प हुआ कि कम से कम इतना तो होना ही चाहिये कि मेरी सन्तान को फिर से अपना कहने योग्य घर बन जाये और वे शान्ति से सामाजिक स्थिति में प्रतिष्ठापूर्वक जीवन बिता सकें। तुम लोगों ने प्रत्यक्ष देख लिया कि मैं किस अंश तक सफल हो सका। तुम भारत के करोड़ों भूखे परिवारों की अपेक्षा उत्तम स्थिति में हो। यह जो कुछ हुआ उसी दीनबन्धु विश्वपालक प्रभु की दया समझो। मैं तो एक निमित्त मात्र हुआ।

अब चाहता हूँ कि अपनी सन्तान अर्थात् युगलमूर्ति पुत्र पुत्रवधू, दोनों पुत्रियाँ और उनके फलफूले परिवार को हँसते खेलते छोड़कर सेवा कराने की तृष्णा को रोक कर पारमार्थिक साधन में एकान्त और निष्काम जीवन बिताऊँ।

वृद्धावस्था का कर्म हीन जीवन और व्यर्थ ममत्व सन्तान पर भार रूप न हो इसलिये शास्त्र ने कहा कि "पञ्चाशोर्ध्वं वनं व्रजेत्"। खैर तुम लोगों की

शास्त्रों में संन्यास लेने से पूर्व पुत्र से आज्ञा प्राप्त करने का विधान है। यह पत्र ठा. केसरीसिंह ने अपने पुत्र कुँवर रणजीतसिंह को जुलाई 1937 में संन्यास लेने के पूर्व लिखा था।

भली बुरी जो कुछ भी बनी सेवा करके अब मैं अपनी पैंसठ वर्ष की अवस्था में सन्यास ग्रहण करके तुम से विदा लेता हूं और अपने प्रत्येक क्षण को उस 'योगक्षेम वहाम्यहं" कहने वाले के चरणों मे समर्पण कर देता हूं। तुम मेरी चिन्ता मत करो मेरा वास्तविक गृहत्याग तो उसी दिन हो गया जिस दिन माणिक ने प्रयाण किया। किन्तु तुम लोगो की शेष सेवा पूर्ण कराना ईश्वर को अभीष्ट था अतः दस वर्ष यश निन्दा को सिर पर रख कर बिताने ही पड़े। अब मेरा सुख दुःखमय अज्ञात भविष्य मुझे जिधर खींचेगा वही मेरा मार्ग होगा। तुम मुझे सहर्ष विदाई की आज्ञा दो। प्यारे! निर्दोष तो एक वह सर्वज्ञ ही है, मानव जीवन का दोषपूर्ण होना स्वाभाविक ही है। अतः इस क्षुद्र जीवन में मेरे दोषो एवं गलतियो के कारण तुम लोगो को जो शारीरिक और मानसिक कष्ट पहुंचे हैं उनके लिये मैं पश्चातापपूर्ण हृदय से क्षमा चाहता हूं। ईश्वर तुम सबको पूर्ण शान्ति सब सुख, अटल धैर्य और उदार हृदय प्रदान करे-यही अंतिम हार्दिक आशीर्वाद है।

प्यारे लालू! अब व्यावहारिक रूप से मैं तुम्हारे लिये और अपने लिये कुछ वसीहत करता हूं उन पर ध्यान रखना और यथा-शक्ति निभाना।

(1) अन्य चारणो के समान तुम्हारे सामने स्थाई जीवन निर्वाह के लिये जमीन जायदाद नहीं है। इस अभाव का खटका हृदय से निकाल दो। संसार मे भूमि पर अधिपत्य रखने वाले मुट्ठी भर हैं और सदा सुखी भी नहीं, कर्ममय जीवन ही जीवन है। पराये परिश्रम पर मौज लेने वालो के दिन लद गये, जा रहे हैं, उस कर्महीनता की तृष्णा न करो। जीवन का आनंद और सन्तोषपूर्वक उद्योगशील बनाये रहो और अपनी संतान को भी इसी सांचे मे ढालो। भगवान की दया हुई तो भूमिपतियों से भी विशेष सुख देखोगे विश्वास रखो।

(2) जब तक दोनो बच्चे (राजेन्द्र और नरेन्द्र) स्वयं कमा कर वे स्वतन्त्र जीवन निभाने योग्य न हो जाय तब तक इनको विवाह के बंधन में मत डालना।

(3) माणिक भवन तुम लोगो के हाथ मे तभी तक सुरक्षित रहेगा जब तक इसकी पूरी सफाई सब की दृष्टि में आती रहेगी।

(4) राज सेवा ठीक ठीक करते हुए भी अपने घर की व्यवस्था और आवश्यकता का कभी उपेक्षा मत करना, जैसा कि करते आ रहे हो।

(5) माणिक भवन के सामने सड़क और तालाब के बीच की जमीन जैसे तैसे ले लेने का ध्यान रखना।

(6) राजदरबार में आने जाने पर उपेक्षा मत करना। बीच बीच में भी समय निकाल कर घंटा–आधा घंटा सायंकाल 'यादघर' सलाम करते रहना। जिनसे मेरा घनिष्ट व्यवहार रहा है उनसे बराबर मिलते रहना और स्पष्ट भाव से बात करने का साहस रखना, चाहे वो कितने ही बड़े हो। अपने आपको पराधीन व तुच्छ न समझो।

(7) पुस्तकालय की व्यवस्था और सफाई उपेक्षणीय न हो।

(8) भिखारी का पेशा करने वालों और सच्चे दीनदुखियों के भेद को समझ कर सच्चे भूखों का विमुख मत जाने दो।

(9) तुम और लल्ली स्वयं बुद्धिमान हो। अतः सांसारिक व्यवहार पर मुझे अधिक नही कहना। हा हृदय की एक बात है। मेरे पर चि श्री सौभाग्य मणि का अटल प्रेम रहा है उसके हृदय में कभी ये न खटके कि आजकल उसके माता पिता नहीं है अतः वह उपेक्षणीया हो गई है। उसमें और राजलक्ष्मी में भेद न हो। वह केवल प्रेम चाहती है, धन नही। बड़ी सरला है।

(10) सन्यास लेने पर भी मैं नही चाहता कि स्वचिन्ह मेरा शव जमीन में दबाया जाये। अवश्य हो अग्नि संस्कार कराना और मेरी प्रधान अस्थियाँ माणिक भवन की समाधि में सुरक्षित मणि अस्थियों के साथ मिला-कर फिर वे वहीं रखवा देना, किसी तीर्थ के नाम पर न फेंकी जायें।

तुम्हारा, दाता

पुनश्च

प्यारे !

सन्यास के लिये आवश्यक है कि संतान मित्र और गुरुजन प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दें। स्वा ज्ञानानन्द जी के पत्रों में भी आज्ञा स्पष्ट नहीं। मित्रों ने

स्पष्ट ही विरुद्ध सम्मति दी और बाबू सा चुन्नीलालजी की जबानी मालूम हुआ कि तुम्हारा हृदय भी तैयार नही। अतः मैं हठ नहीं रखता और अभी विधिपूर्वक संन्यास लेने को स्थगित कर देता हूं। अलबत्ता एकान्त सेवन अवश्य चाहता हूं। अभी इसी चौथ, ता. 11 को मौजबाबा की गुफा में आसन लगाऊंगा। एकान्त सेवन का काल अनिश्चित है। हां, इतनी सी गुंजायश है कि तुम लोगों की स्नेहपूर्वक प्रबल इच्छा होने पर या शारीरिक दशा असह्य होने पर फिर से तुम लोगों के निकट आ बैठने की संभावना हो सकती है।

अभी तो विदा।

केसरीसिंह



जामाता फतहसिंह के नाम

(1)

माणिक भवन,
कोटा
दि 10-7-1937

मेरे परम प्रिय जामाता फतहसिंहजी साहब !

वल्लभ !

आपका हार्दिक प्रेमभरा पत्र सबसे प्रथम कल ही हाथ में आया, मेरी अंतरात्मा उसके प्रत्येक सत्य का साक्षी देती है। आपके उस मूक प्रेम ही की महिमा है कि मैं विवश संकल्प-विकल्पों को सहसा त्याग आप ही की ओर झुक पड़ा। यदि मेरे इस सहसा निर्णय का सुन्दर सुखद परिणाम मेरी संतान के जीवन में चिरस्थाई हो, इसका श्रेय इस युगलमूर्ति की पुण्य प्रारब्धानुभूत खलित नियति को ही होगी या उस विश्वनियंता की अलक्ष्य न्याय पर। मेरे जैसा क्षुद्र मानव किसी के भविष्य निर्माण पर अभिमान करे तो उपहासास्पद ही होगा। हां उस सुखमय भविष्य की आशा से संतुष्ट होना मेरे लिये स्वाभाविक है और हूं। प्रियवर, हम सबको आपसे आपके संस्कृत परिवार पर, आशा रखनी ही चाहिए।

हां, मुझे दुख है कि मैं आपसे ऐसे क्षणों में सम्बन्धित हुआ हूं जबकि मेरी जीवन-संध्या मुझे किसी दूसरी कक्षा में बैठने का अनुरोध कर रही है और उससे हम कुछ दूर हो जाते हैं। साधना क्षेत्र में ऐसा हो सकता है फिर भी मनुष्य स्मृति, बुद्धि और ममता से सर्वथा निर्मुक्त हो नहीं सकता। अतः आप लोग फिर भी मेरे हृदय में तो दूर नहीं रहेंगे। मैं आपकी देवीस्वरूपा मातुश्री के अनुरोध के महत्व को समझता हूं और यह भी समझता हूं कि आप भ्रातृयुगल ने मेरे सामान्य व्यक्तित्व को उनके सामने अतिशयोक्ति-प्रेम के कुछ अधिक भावों में रख दिया है और मातृ हृदय कितना वात्सल्यमय और महान् होता है इसका मैंने स्वयं अपने दादी मां में, बहन मात्र या विमाता किंतु मेरे हृदय से उसी मेरी

जननी म और अब श्री सौभाग्यमणि[1] की सासु म - जिनका मैं भी माताजी ही कहता था - देखा है और विश्वास ही नही किंतु मेरी प्यारी राजलक्ष्मी[2] क शब्दो म निश्चयात्म हो गया कि यह चौथा स्थान भी मेरी दृष्टि से वही अनुभ वित होगा। यह चि राजलक्ष्मी का द्विगुणित सौभाग्य है।

हा, मैंने अपनी पारिवारिक सस्कृति म प्राचीन बीजा को सुसस्कृत किया है और कुछ आवश्यक दशकाल का सिचन किया है इसक लिये उनको कुछ जानने की इच्छा हो तो आप जामाता श्री जयकर्ण जी के द्वारा म सौ चि सौभाग्यमणि स उसके दहेज स्वरूप मे दिया हुआ "पत्र और शिक्षा" मगाकर देख सकते हैं। सत्य है उसे दहेज म सोना, चादी वस्त्र बतन के एवज मे यही एक पत्र मिला है और वह उसी से सतुष्ट हुई और है।

स याम की इच्छा थी किन्तु गुरु ने मित्रो न, सतान न और अंतिम राजा न आज्ञा न दी। कल कोटा दरबार न बुलाकर दो घटे तक एकात मे परामर्श किया। मैं हठी या दुराग्रही नही अभी स यास का सकल्प छोड दिया गया। हा, यही नदी पर उसी मोजवाबा की गुफा म एकान्त सेवन करूगा अवधि नही बता सकता। अत सभव है निकट भविष्य म पत्र न द सकू, क्षमा करना।

आपही का
केसरीसिंह

---

1 कनिष्ठ पुत्री 2 पौत्री।

(2)

कोटा
ता 11–9–40

परम प्रिय जामाता !

आपका ता 4 का प्रिय पत्र मिला। आपके उदार और सद्भावों का दर्शन कर हृदय प्रसन्न हुआ। "गुणाः प्रीतो न वस्तुनि" इस सिद्धान्त के अनुसार आपको इस शरीर में गुण दिखाई देना स्वाभाविक है क्योंकि तत्व दृष्टि से हृदयस्थ आत्मा सत् रूप से केवल अपने आपको ही जानता है और दृष्टा के रूप मे वह केवल अन्तर ही मे विविध रूपधारी मन ही को देखता है। बाह्य तो अज्ञेय ही रहा और आत्मानुभूति तक अज्ञेय ही रहेगा। यह मन कभी प्रेम का चोला पहन गुणों की सृष्टि करता है और कभी बिगड़ा तो दोषों की तरंगों पर तैरने लगता है। प्रेम और दोष एकत्र नहीं रहते। अनुभव है इस शरीर को दोषों में गढ़ा हुआ देखने वाले भी हैं। किन्तु कौन क्या कहता है इधर ध्यान देने मे तो अपने आपको नाहक राग द्वेष में रंगना है। अतः निन्दास्तुति पर समान उदासीन ही सुखी है। आपके आत्मीय भाव ने इस शरीर को अपना मान लिया यह आपही का महत्व है जिसे अपने ही अध्याहार से स्वयं देखते हैं, फिर भी धन्यवाद।

वर्तमान शिक्षा पर मेरा विचार आपसे छिपा नहीं अब आपको उसका स्वयं अनुभव हो रहा है और वह सही है।

चोरी आदि कुकर्मों पर कृष्णार्पण बनता ही नहीं क्योंकि इनमें मानसिक उत्पत्ति के साथ ही कामना [सकामना] घुली रहती है। अतः वे मूल में ही स्वार्थमय होने से अपने आपको [स्वको] अर्पण हो जाते हैं फिर दुबारा अर्पण तो आत्म-छलना है या परमात्मा को छलना है। वह छला नहीं जाता।

जीव को पूर्ण स्वरूप (मूलस्वरूप) की ओर ले जाने वाले कर्म ही सत् कहलाते हैं। उन्हीं का दूसरा नाम पुण्य है। प्रभु सत्य [सत] है उसे असत् भेंट होगा कैसे ? सत को सत् ही चाहिए "तत्कुरुष्वमदर्पणम्"

का यही रहस्य है। "कर्मण्यमेवाधिकारस्ते" का तो अर्थ है, जैसा करोगे व पाओगे, फल अटल है। स्वामी विवेकानन्द एव रामतीर्थ के वक [पुस्त मगालें और अवकाश म अवश्य देखते रह, हिन्दी म भी अंग्रेजी मे भी।

सोहं का जाप सोते उठते ही और ठीक निद्रा से पहले ये दो बार निय[मित] काल के लिये नित्य रहना चाहिये। शेष कार्यकाल में जब स्मरण हो जाय त[ब] उत्तम। नही बने तभी कोई दोष नही। नित्य और नियम साधना चाहिये ध[ैर्य] फिर वह आकर्षण स्वयं करेगा। कब करेगा यह उसी पर छोड देना। उपरोक्त दोनो समय शवासन से समस्त शरीर बिल्कुल ही ढीला छोडकर म[न] म सब विचार निकालकर जाप करना चाहिये। चाहे वह समय थोडा ही रख[ा] जाय। अच्छा हो उससे पहले तीन प्राणायाम कर लिया जाय। जैसी सुविधा [हो]। प्राणायाम मे श्वास पर जोर कभी न दें।

मुझे अपने इस विश्वास पर सन्तोष है कि आप मानव पथ पर हैं। मेरी धारणा मे मानव वही है जो 'क्या" और 'क्यो" को लेकर उत्तरोत्तर जिज्ञासामय प्राणी हो क्योंकि यह गुण पशु मे नही होता। जो मानव उस शान्त छोर पर पहुच जाता है वह फिर मानव नहीं देव है। कर्म-शून्य जिज्ञासा वास्तविक जिज्ञासा नही वह प्रमाद रूप है आत्म प्रवचना है। उस छोर पर जिज्ञासा का विराम होने पर भी कर्तव्य भाव अखण्ड ही रहेगा।

जिस कार्य को हाथ मे ले लिया उसे तो दत्तचित्त हो पूर्ण करना ही चाहिए। बी ए पास करके फिर आगे सोचे।

यहा सब प्रसन्न है। इच्छा तो है कार्तिक मे बाहर जाऊ। कहा, यह अभी निश्चित नही। देश काल की प्रतिदिन बदलती हुई परिस्थितिया निश्चय करने को स्वय रोकती हैं। कभी जा सकू। देखा जायेगा। प्रभोरेच्छा बलीयसी।

मगलाकांक्षी
केसरीसिंह

सीतामऊ (मालवा) महाराजकुमार रघुवीरसिंहजी के नाम

(1)

माणिक भवन, कोटा।
दि 9-5-37

महाभाग !

यद्यपि आप श्रीमान् से मिलने का मुझे बहुत ही कम समय मिला तथापि उतने से ही मुझे जो संतोष और आनंद हुआ, वह असाधारण है क्योंकि। जिस सौजन्यता, सरलता, पाण्डित्यपूर्ण अनुशीलन-वृत्ति एवं अनुप्राणित कर देने वाली स्वतंत्र विचारधारा की झांकी आपकी सौम्यमूर्ति के साथ हुई वह राजभवनों में दुर्लभ ही नहीं प्रत्युत असंभव सी है। ईश्वर आपको दीर्घायु और उत्तरोत्तर यशस्वी करें।

आपकी आज्ञानुसार मैंने यहां के गुलगुले परिवार के वर्तमान प्रधान व्यक्ति पं. चन्द्रकांतजी से ऐतिहासिक सामग्री के सम्बन्ध में बातचीत की, यदि किसी व्यक्ति को नकल करने के लिये भेज दिया जाय तो वे सब सामग्री दिखा देने को तयार हैं। मिसल फाइलें या कॉपी केवल देखने मात्र के लिये निश्चित् अवधि पर लौटा देने के आश्वासन पर दे सकते हैं। अब जैसी आज्ञा।

श्रीमानों की कृपा सदा ही अभिलषणीय है। इसी मास में मेरी ज्येष्ठ पौत्री का विवाह निश्चित् है। इन बच्चों पर आपका आशीर्वाद चाहिये। इस शरीर को अपना सेवक मानकर सेवा-ग्रहण से अनुग्रहित करते रहें।

शुभेच्छु मंगलाकांक्षी
केसरीसिंह

मालवा की भूतपूर्व रियासत सीतामऊ के महाराजकुमार डा. रघुवीर सिंहजी देश के मुख्य इतिहासकार हैं। उन्होंने सीतामऊ में श्री नटनागर शोध संस्थान और श्री रघुवीर शोधपुस्तकालय स्थापित किये हैं जिनके वे आनरेरी निदेशक है।

(2)

माणिक भवन
कोटा
2/2/39

राजकुमार शिरोमणि !

आपका ता 19 जनवरी का कृपापूर्ण पत्र शासन विधान सहित मिला। मैंने विधान को ध्यान पूर्वक पढ़ा। वर्तमान स्थिति में जितना विचारपूर्वक किया जा सकता से दूसरे नंबर पर किया गया है। इस साहस, दूरदर्शिता और राजनीति-पटुता.. के लिये श्रीमानों को धन्यवाद। दरबार न 35 की भाषा सुन्दर सुगठित, उदारता को लेते हुए राजनैतिक बुद्धि दक्षता का निदर्शन है उसमें राजगौरव के साथ प्रजापक्ष .. उर्मियों का सम्मिश्रण भी साहित्य कला की खूबी रखता है। । ईश्वर इस सत अनुष्ठान ... की सफलता पर पहुँचाकर श्रीमानों के सुयश के चिरस्थाई बनावे।

विश्वभर इन बड़े कहे जाने वाले मिथ्याभिमानी और परबुद्धि चालित नृपों में भी सीतामऊ के अनुकरण की 'सद्बुद्धि' दें, नोचेत यह विकट काल पूर्वोपार्जित सर्वस्व का नाम शेष कर देगा। मैंने अपने हृदय को "चारण" (त्रैमासिक पत्र) के प्रथम अंक में कुछ दोहों द्वारा प्रगट किया, उनको "क्षात्रधर्म" (अजमेर) ने भी उद्धत किये हैं, सम्भव है श्रीमानों की दृष्टि में भी आये होंगे।

परेप्सित शिक्षा के विकृत साँचे में ढलकर, अपने विषय सुखों के प्रलोभनों में डूबकर एवं ऊपरी कूटनीति के कुचक्रों में फँसकर वास्तविक राजधर्म को भूल बैठने वाले ये बड़े नरेश साहस और बुद्धिहीन हो जाने से सहज में दबोचे जाकर नाममात्र के रह गये हैं क्योंकि सर्वत्र सफेद हाथियों को बैठाकर सर्वाधिकार उन्हीं के हाथ में .. ..रखने की नीति पर गवर्नमेंट अग्रसर

हो रही है। हमारे राजाओं को इस नाशक नीति से त्राण पाने का यदि कुछ उपाय शेष है तो यही कि वे अपनी प्रजा को विधान द्वारा पूर्ण रूप से पक्ष में लेकर उसी के द्वारा यह यम मार्ग बंद करें। परन्तु कहाँ ? चलते हैं विपरीत ही। जयपुर का प्रत्यक्ष उदाहरण सामने है। मैंने इसी गत ता 30 को एक रजिस्टरी पत्र जयपुर नरेश की सेवा में भेजा है और काव्यमय विनीत प्रार्थना की है[1] उसकी प्रति इसके साथ आपके अवलोकनार्थ भेज रहा हू। राजाओं को ठीक समय पर निर्भय होकर यहा तक कि अपने लिये अनिष्टों को आमन्त्रण देकर भी, सावधान करना चारण का कुलधर्म है "स्वधर्मे निधनश्रेय" (गीता) जो ऐसा नहीं करता उस चापलूसी मात्र में दक्षता बताने वाले चारण पर धिक्कार है, होगा वही जो जगन्नियता को मंजूर है, फिर भी "कर्मण्येवाधिकारस्ते" (गीता)

उपयुक्त कारणों से विधान में यदि एक धारा प्रजा के हाथ को इसी .. .. समर्थ करने के लिये रहे कि दीवान की नियुक्ति पर परिषद् की सम्मति को दरबार उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखेंगे नियुक्ति से पहले यह विषय परिषद में रखा जाय इत्यादि।

इसमें परोक्ष रूप से राजसत्ता ही की .. है।

संभव है मेरे इस लंबे प्रलाप में आपका अमूल्य समय व्यर्थ बीते, इसके लिये क्षमा।

आपका हृदय से मालाशागी
विनीत
केसरीसिंह

---

1 देखें 'काव्य खंड'

बाबू अनुग्रहनारायणसिंह के नाम

माणिक भवन कोटा
दि 20 9 39

श्रीमान् बाबू अनुग्रहनारायणसिंहजी महाशय
मिनिस्टर बिहार गवर्नमेंट की सेवा में पटना ।

मान्यवर,

मैं आपसे स्वयं गत अगस्त के प्रारम्भ में पटना में मिला और आपके आदेशानुसार बाबू कृष्णसिंहजी प्रधानमंत्री - से स्वयं मिलकर अपने भाई ठा जोरावरसिंहजी के सम्बन्ध में फिर से हाथों हाथ प्रार्थना पत्र दिया ।

उन्होंने अब शीघ्र ही यथा शक्ति शुभ निर्णय से सूचित करने का आश्वासन दिया । आशा है उन्होंने इस डेढ़ मास के समय में पर्याप्त विचार कर लिया होगा किन्तु मुझे कोई सूचना नहीं मिली । उनका दिया हुआ समय भी समाप्त होने को आया ।

मुझे मेरे मित्र श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन ने इस सहायता के लिये आप ही के हाथ में सौंपा है । अतः मेरी दृष्टि सर्वथा आप ही की ओर है । आशा है कि मुझे दुबारा पटना तक न भागना पड़ेगा । कृपा करके अब आप प्रधानमंत्री को फिर से स्मरण दिलाकर मेरे भाई के कष्टमय जीवन पर शुभ परिणाम शीघ्र निकलवा देने में अपनी स्वाभाविक उदारता का उपयोग करें और मुझे शीघ्र सूचित करें ।

किमधिकमहानुभावेषु ।

विनीत
ठा केसरीसिंह

ठा केसरसिंह के छोटे भाई क्रांतिकारी जोरावरसिंह का अन्य चारों साथियों सहित आरा केस में फांसी की सजा दी गई थी । लेकिन वे आजीवन फरार रहे और उन्होंने पहाड़ों एवं जंगलों में जीवन बिताया । सन 1937 में ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में जन प्रतिनिधि सरकारें बनने के बाद जब बिहार में कांग्रेस सरकार बनी तो वहां के प्रधानमंत्री कृष्णसिंह एवं गृह मंत्री बाबू अनुग्रहनारायणसिंह को ठा केसरीसिंह ने पत्र लिखे । विधि की विडम्बना थी कि जिस दिन जोरावरसिंह की मुक्ति की घोषणा प्रकाशित हुई उसी दिन उस वीर पुरुष ने कोटा में प्राण त्याग दिये ।

बाबू कृष्ण सिंह के नाम

माणिक भवन, कोटा
तारीख 20 9 39

श्रीमान् बाबू कृष्णसिंहजी महोदय,

प्रधान मन्त्री, बिहार गवर्नमेंट,

पटना।

मान्यवर

मैंने अपने भाई ठाकुर जोरावरसिंहजी के—प्राचीन सन् 1914 के आरा (नीमज) केस सम्बन्धी—विषय में आपकी सेवा में दो प्रार्थना पत्र दिये उनको बहुत समय बीत चुका। गत अगस्त के प्रारम्भ में मैं स्वयं आपसे पटना में मिला और आपने आश्वासन दिया था कि आप अब शीघ्र ही मेरी प्रार्थना पर निर्णय प्रदान करके मुझे सूचित करेंगे।

आशा है उस केस सम्बन्धी सर्व कागजात मय मेरे प्रार्थना-पत्र के आपके सामने आ चुके होंगे। अतः निवेदन है कि मुझे अपने शुभ निर्णय की सूचना प्रदान करने की कृपा करें।

विनीत
ठा केसरीसिंह

श्री शिवसिंह चोयल के नाम

(1)

माणिक भवन कोटा
28-9-40

प्रिय श्री शिवसिंहजी चोयल

आपका पत्र संख्या 62 मिला। मेरा परिचय इन्दौर से बहुत कम रहा, सिवाय सर सिरेहमलजी बाफना[1] के मैं वहां किसी के विशेष परिचय में नहीं आया। यही कारण है कि स्व बक्षी खुमानसिंह जी के संबंध में मैं कुछ भी तो नहीं जानता। नाम का परिचय भी आपके पत्र से हुआ। उनके परिचितों में यदि यत्किंचित भी इस शरीर का समावेश होता तो मुझे आपके आदेश-पालन में अत्यंत प्रसन्नता होती।

जिस जाति या देश में वीर-पूजा न हो वह मृतकवत है। अत आपके इस वीर-पूजा अनुष्ठान में सफलता मिले यही मेरी हार्दिक कामना है।

मैं सन् 1911 में बिलाड़े गया और दीवानजी[2] से मिला। सीरवी जाति की वास्तविक उन्नति के लिये कृषि कालेज के मेरे प्रस्ताव को दीवानजी ने सहर्ष स्वीकार किया। यदि वह स्वर्णक्षण बना रहता तो अवश्य ही मैं आपकी जाति के सामने सेवक के नाते सिर उठाकर कुछ कर सकता। किन्तु ईश्वरेच्छा भिन्न थी। कृपा रखें।

भवदीय
ठा केसरीसिंह

1 भूतपूर्व इन्दौर राज्य के दीवान और ठाकुर साहब के घनिष्ठ मित्र।

2 बिलाड़ा (जोधपुर राज्य) के दीवान श्री प्रतापसिंह। राजपूताना में स्वदशोपयोगी शिक्षा के विराट आयोजन के संबंध में जब सन् 1911 में ठाकुर केसरसिंह बिलाड़ा गये और उद्धार की अपनी सारी स्कीम बताई तो दीवान साहब ने कहा कि वे प्राचीन स्थान 'हुप का स्थल' नामक स्थान के पास एक कृषि कॉलेज बनवा देंगे। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यशाही को इस शिक्षा संबंधी आयोजना में भी राजद्रोह की योजना की गंध आई और क्रांतिकारी देशभक्त के स्वप्न अधूरे ही रहे।

(2)

माणिक्य भवन, कोटा
9/12/1940

प्रिय शिवसिंहजी चायल

सुखी रहो।

प्रिय, तुम्हारा पत्र मिला। तुमने सीरवी शब्द का शुद्ध अर्थ पूछा है। यह शुद्ध संस्कृत शब्द है "सीरवहो"। संस्कृत में 'सीर' हल को कहते हैं जो हल का चलावे वही सीरवी। उदास होने की जरूरत नहीं कि इस अर्थ में तुम राजपूत नहीं बनते। **ब्राह्मण और क्षत्रियों का वह स्वार्थजन्य घौंस का जमाना चला गया। अब तो वास्तव में संसार के आधार-स्तम्भ सच्चे अन्नदाता कृषिकार का ही सर्वोपरित्व है, आ रहा है।** वर्ण विभाग तो आप नष्ट हो ही चुका। ऊपर के वर्ण तो परिवर्तनशील हो रहे हैं। **किसान संस्था अमर है और रहेगी।** व्यर्थ मिथ्याभिमान से ऊपर फुदकने में सार नहीं। व्यर्थ में राजपूतों में घुसकर बन जाओगे "नकिंग"। हल का बाना सामान्य नहीं। श्री कृष्ण के दादा भाई ने भी इसे ही पकड़ा था। **संसार के पेट पालन करने वाले का महत्त्वपूर्ण इतिहास उज्ज्वल है और रहेगा।**

मैंने अपने ज्ञान में जो पाया स्पष्ट लिख दिया। चाहे किसी व्यर्थ भ्रम में पड़े हुए को संतोष न हो यह दूसरी बात है।

भवदीय,
ठाकुर केसरीसिंह

(3)

माणिक भवन, कोटा
26/12/40

प्रिय शिवसिंहजी जोधपुर !

ता 24 का पत्र अभी मिला और तुरन्त ही उत्तर दे रहा हूं। तुम्हारी विचार सहमति से सन्तोष हुआ। वास्तव में सद्विचार हो वह है जिसमें आग्रह न हो और रूढ़ि के अंधेरे से ऊपर उठकर खुली आंख का प्रयोग करने की शक्ति रखता हो। आईजी[1] का हिन्दू होते हुए भी इस्लाम पीर की शिष्या होना स्वाभाविक है। इस्लाम में कौन से महात्मा नहीं होते और खास कर उस समय जबकि दोनों धर्मों के समन्वय और शान्ति स्थापन करने की लहर चल रही थी। चेले के लिए गुरू का आदर्श होना स्वाभाविक भावुकता है। किन्तु अब वह समय नहीं है। दोनों धर्मों की भिन्न संस्कृति अधिक खुल चुकी है और चूंकि संस्कार ही जाति का मूल है अतः उसमें पुनः विशुद्धि लाना आवश्यक है। दोगलापन कभी श्रेयस्कर नहीं। हां यह ठीक है कि तुम्हारी जाति में अज्ञान का पट अधिक है। अज्ञानी रूढ़ि को ही धर्म मान बैठता है और धर्म की भावना किसी को भी परिवर्तन में ठेस पहुंचा सकती है। जातीय सुधार धक्का देकर नहीं किन्तु शान्ति से समझायश करने, बार बार समझायश करने और शिक्षा से स्वयं विचार करने की शक्ति उत्पन्न करने से ही हो सकता है। अतः तुम अपनी सभा में इस विषय को नम्र शब्दों में प्रस्ताव के रूप में नहीं, किन्तु विचार के रूप में रख सकते हो क्योंकि किसी भी सीरवी के हृदय में यह नहीं है कि वह हिन्दू नहीं है। यह स्मरण रहे कि नेता में प्रधान गुण है कि वह खूब सोच विचार कर देश-कालानुसार संकल्प और साधना

---

1 सीरवी जाति की आराध्या देवी श्री आईमाता, जिनका प्रादुर्भाव मारवाड़ प्रदेश में पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ था। श्री आईमाता की प्रसिद्ध समाधि बिलाड़ा में स्थित है जहां सैकड़ा वर्षों से जल रहे अखण्ड दीपक में काजल न पड़कर केशर जैसे पीले रंग की बिंदिया ही दीपक पर लटक रहे एवं धातुमय ढक्कन के निम्न भाग पर लगती है।

निश्चित करे, फिर एक कदम और बढावें और जब तक अनुयायी उस कदम पर न आ जाय तब तक दूसरा कदम बढाने म ठहरा रहे। अपनी शक्ति के प्रदशन मे कूद जाना एक बात ह और समाज को साथ लेना इससे भिन्न।

भिन्न धम के सस्कार का परिणाम यह हुआ कि सीरवी जाति मे वृद्धि रुक कर यानि गदी हो गयी क्योकि जिन क्षत्रियो म हिमावति से हटकर समाज पालन की मूलधारा कृषि को स्वीकार की तो उसम उसके बाद भी एसी वृत्ति वाले क्षत्रिय क्यो नही मिल जात ? इस समय भी लाखो क्षत्रिय कृषि करके पेट पालते हैं। सस्कार शुद्ध हिन्दू हो जाने पर अब भी वह माग खुल सकता है। आइजी का उपदश साम्प्रदायिक रहा है और उसी का समुदाय सीरवी है। यह कोई आनुवाशिक जाति नही। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जाति को देखते हुए किसी सम्प्रदाय से युक्त हो सकता है। सम्प्रदाय जब जाति का रूप ले लेता है तभी अनयकारी या आ पतित हो जाता है। तुम्हारे दीवानजी[2] क्षमताशाली पुरुष ह। यदि उनका हृदय सुसस्कृत होकर तथ्य को अवधारण करले तो तुम्हारी जाति बहुत जल्दी उठ सकती है क्योकि उसका बढर[3] के निणय पर विश्वास है।

मैं यदि सीरवी जाति के अधिक रीतिरिवाजो को जानता होता तो कुछ अधिक प्रकाश डालता। नवयुवक समाज स्थापन करिये। चिकने और औंधे मुख पडे हुए घडो पर असर न होगा। वह जाति उत्थान मे अधिक आशवान्वित होती है जिसके सफेद बालो मे नवीन ज्योति चमकती है। नोचेद् आज के नवयुवक कल के वृद्ध होकर ही जाति की बागडोर पकडगे। अत उन्ही के हृदयो को सम्हालेंगे। आईजी सफलता देंगे। यदि आईजी महाराज आज विद्यमान होते तो पुराने वस्त्र झाडकर हिन्दू धम का उज्ज्वल आदश और प्रकाश समस्त भारत पर डालन म सवप्रधान होते। किमधिकम्॥

तुम्हारा वही
नसरोसिंह

---

2 बिलाडा के दीवान जो सीरवी सम्प्रदाय के प्रमुख पुरुष थे।

3 श्री आइमाता का बिलाडा स्थित पीठस्थान जो 'बढर" नाम से विख्यात है, जिसका अथ है मुख्य स्थान।

(4)

माणिक भवन, कोटा
ता० 28/3/41

चौधरी श्री शिवसिंहजी,

प्रसन्न रहो।

ता० 26 का पत्र मिला। दो प्रश्न थे, राम कृष्ण की मूंछें (2) 'सिंह' शब्द का नाम के साथ प्रयोग-

(1) आर्य धर्म के पुराणों में यह माना जाता है कि देवताओं की अवस्था नित्य सोलह वर्ष की रहती है अर्थात् मनुष्य के समान बाल, किशोर, तरुण, युवा, वृद्ध आदि काल परिवर्तन उनमें नहीं होता। राम-कृष्ण तो साक्षात् देवताओं के देव ईश्वर माने गये अतः उनकी सदा किशोरावस्था ही मानी गई और उस अवस्था में मूंछों का होना स्वाभाविक नहीं। नन्द, दशरथ वसु मूंछोंवाले ही अंकित किये गये हैं। धर्मशास्त्र में मृतक शौच में दशाह पर मूंछों का मुंडन विधान है जिसे भद्र होना कहते हैं। यदि सदा सफाचट ही रहते तो भद्रावस्था में कौन से बाल काटते, चोटी तो कटती ही नहीं। संन्यास विधि में भी चोटी, मूंछों का मुंडन लिखा है। नित्य ही घोटते तो विधान कैसा? आदि अनेक प्रमाण हैं कि आर्य जाति सदा से मूंछ रखने वाली थी और मूंछों के बाल महत्व माना जाता था। दण्ड विधान में भी मुंडन कराके देश बाहर करना लिखा है। यह कहना कि मुसलमानों के देखादेखी मूंछें रहने लगी सर्वथा वितंडा है। मुसलमानों में भी मूंछें रखने के आदेश नहीं बल्कि निषेध है। अलबत्ता दाढ़ी मुसलमानों की है। हिन्दुओं के मल मुच्छे प्रसिद्ध हैं। अकबर ने वैसे रखी इस पर मुल्लाओं ने ऐतराज किया। जो अपने मुंह पर बोझा नहीं झेल सकते वे सरलता से कह सकते हैं कि हमारी आंखों को यही भाता है परन्तु राम कृष्ण का नाम लेकर आर्य संस्कृति पर हरताल फेरना, किसी सभ्य को शोभा नहीं देता।

(2) प्राचीन काल में "सिंह" का प्रयोग नहीं मिलता। सिंह शब्द का अर्थ है श्रेष्ठ जैसे भगवान बुद्ध कहे जाते थे "शाक्य सिंह" अर्थात शाक्य कुल में श्रेष्ठ।

बाद मे ऐसी रुढि मे यह शब्द पड गया कि जिस शब्द के साथ श्रेष्ठ का अर्थ ही नही बैठता, वही चल निकला । बाद म सिंह जैसा पराक्रमी या साक्षात सिंह ही बनने के कारण क्षत्रियो ने इसे आँख बन्द कर अपना लिया । बाद उनकी नकल अन्य जाति मे भी चल पडी चाहे निरथक ही क्या न हो ।

जो कुछ ध्यान मे जचा वह लिख दिया, दावा नही कि जो मैंने लिखा वही सब सत्य है ।

मगलाकाक्षी
ठाकुर केसरीसिंह



श्री रामनारायण चौधरी, सेवाग्राम आश्रम के नाम

(1)

माणिक भवन,
कोटा
दिनांक 7/12/1940

प्रियवर,

आपने मुझे पहिले एक पत्र म लिखा था कि पूज्यपाद बापू कुछ निश्चित हो जान पर मुझे स्मरण करेंगे। वह हो चुका। मेरी इन सत्तर वर्ष की बूढी हड्डियो मे स्वदेश के लिये शात आहूति देने का अभी बल है, प्रबल इच्छा भी है।

निर्वैरवृत्ति से ध्येय पर आत्म बलि चढाने वाली धारणा-पद्धति वश-परम्परा स चारण रक्त म अब तक भी सजीव पाई जाय तो स्वाभाविक ही है। उसी को आध्यात्मिक शान पर चढाकर सत्याग्रह के नाम से समुज्वल करने वाले विश्व ब धु पूज्यपाद विभूति इस चारण शरीर पर विश्वास करेंगे तो उनको किसी अश म धोखा नही होगा। इसी भगवत् साक्षी को म तर म अनुभव कर रहा हू।

यह सत्य है कि आत्म-प्रतीति होने तक इस अपनी क्लास मे एक मात्र छात्र ने आजकल के आन्दोलनो का तटस्थ निरीक्षण किया। किन्तु बापू की यह रणभेरी अतिम प्रतीत होती है। वैसे ही इस जीवन-ज्योति की अतिम लौ भी ऊँचा सर कर लेने का यही क्षण चुनती है।

सदा से अखण्ड भारत का उपासक यह शरीर किसी एक विशेष प्रान्त से बद्ध नहीं। अत किसी एक रजिस्टर मे नाम न पाया जाना एक बात है और उचित वदी पर उचित बलि का चुनाव दूसरी बात है।

यदि बापू इस शरीर को अधिकारी समझ कर शान्त आहूति के लिये वरण करें तो सूचित कीजिय। मैं इस घर व परिवार से छुट्टी के लिये

विधिवत् असम्बद्ध होकर तैयार रहूं ताकि न पिछला के लिये बाधक बनूं न स्वयं कुण्ठित रहूं। तैयार होने में कुछ समय न लगेगा। हां, बापू के दर्शन की चिरकालिक अभिलाषा कुछ क्षणों को अवश्य मांगेगी।

आप कोटा के भूतपूर्व प्रसिद्ध डाक्टर गुरुदत्तजी को जानते हैं, जो अब स्वामी आत्मानंदजी के नाम से हैं। उनका दीर्घ जीवन भी समयानुकूल लोक-सेवा में बीता है धीर और गम्भीर हैं। वे भी श्री बापू की पुण्य सूचि में आने को उत्कण्ठित हैं।

स्वीकृति मिलने पर ही अपनी इच्छा प्रकट कर सकूंगा कि कदम बढ़ाने के लिये मेरे लिये यू० पी० ठीक होगा या फिर मध्यप्रांत। फिर जैसी जनरल की आज्ञा। पूज्यपाद बापू की सेवा में सादर प्रणाम निवेदन करें, यही कृपा।

भवदीय,
ठाकुर केसरीसिंह

श्री रामनारायण जी चौधरी
सेवाग्राम, आश्रम वर्धा

जब महात्मा गांधी ने 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ करने की घोषणा की तो 69 वर्षीय वयोवृद्ध ठाकुर केसरीसिंह की उसमें भाग लेने की प्रबल इच्छा हुई। यह पत्र उस समय सेवाग्राम आश्रम में बापू के पास कार्यरत राजस्थान के जनसेवक श्री रामनारायण चौधरी को लिखा गया था।

(2)

मणिक भवन कोटा
22 12 0

भाई श्री रामनारायणजी चौधरी
सप्रेम वन्दे।

प्रियवर,

आपका पत्र मिला, विदित हुआ। मैं अहिंसा को मानव धर्म का सर्वोपरि अंग समझता हूँ क्योंकि हिंसा पाशव वृत्ति है। आततायी पर अबला शक्ति की रक्षा में कदाचित् हाथ उठाने का प्रयोग अपरिहार्य हो भी तो हिंसक का हाथ तोड़कर तुरन्त उसकी सुश्रुषा में उतना ही प्रेमपूर्वक लग सकता हूँ जितना कि अपने प्रिय बन्धु के लिये। कह नहीं सकता मेरी यह अहिंसा श्री बापू की अहिंसा की सीमा में आयेगी या नहीं।

जहाँ तक देखा, हृदय में द्वेषवृत्ति का अभाव-सा ही पाया। इस सम्बन्ध में मैंने अपने आपकी परीक्षा उस समय की जब श्री बापू की अहिंसा व सत्याग्रह का स्वरूप भारत में प्रयुक्त न हो पाया था अर्थात् आज से पच्चीस छब्बीस वर्ष पूर्व जब हजारीबाग के जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट व सिविल सर्जन मि जाडन ने मनमाना जुल्म इस शरीर पर किया। तब भी किसी क्षण मेरे हृदय में उसके या अंग्रेज जाति के प्रति द्वेष उदय नहीं हुआ और सकल्प का रवता भी आज के सत्याग्रह के अनुरूप स्वभावत like a brook अविछिन्न बनी रही और मैं हिंसक का हृदय परिवर्तन करने में सफल हुआ। वही मैं अब भी हूँ। यह मैंने अपनी प्रशंसा में नहीं लिखा, केवल इतना-सा दिखाना है कि उस समय के एक कट्टर क्रान्तिवादी में भी आर्य धर्म की ज्योति बुझी नहीं थी। अस्तु अब तो उस क्रान्तिवाद को मैं अव्यवहार्य हृदयगम करता हूँ और अहिंसा के निर्मल और खुले हुए मार्ग को ही श्रेय मानता हूँ। इतना-सा खुलासा भी इसलिये कि उस समय के और इस समय के केसरीसिंह को समझने में बापू को भ्रम न हो।

हिन्दू और मुसलमानों की एकता का मैं हृदय से इच्छुक रहा हूँ और हूँ। बल्कि उसे परमावश्यक समझ, निरन्तर क्रिया रूप से सचेष्ट रहा हूँ। इतना ही नहीं प्रत्युत् मेरे लिये प्रत्येक मानव या जाति धार्मिक दृष्टि से परे नहीं और न कोई अछूत है।

उपरोक्त तीनो बातो म तो मैं अपने आपको अधिकारी समझता हू किन्तु हाँ, चौथी बात–(नियमित चर्खा कातना)–इसमे अपने आपको पिछड़ा पाता हू । यद्यपि मैं चर्खे की उपादेयता हृदय से स्वीकार करता हू और यही कारण है कि मेरे घर म बहू और बेटियां नित्य चर्खा कातती हैं, फिर भी मैं स्वय नियम–बद्ध होन म असमर्थ हू । मेरे हाथ की कानी को रग म चार पाच वर्षों स ऐसा दर्द है कि डाक्टरो की सुईया व एक्सरे भी ठीक न कर सका और वह बुढ़ापे के साथ आया हुआ और रहने वाला ही सिद्ध हुआ । इसी दर्द के कारण मेरी लिखने की प्रवृत्ति कुण्ठित हो गई । दस बीस मिनट भी सतत लिखना पड़े तो दर्द का दौरा हो जाता है और तीव्र वेदना अनुभव करनी पड़ती है । अत चर्खे मे हाथ के घुमाव की या रगो मे आकुंचन की चेष्टा नही कर सकता, यह विवशता है ।

इस शरीर के सम्बन्ध म यदि बापू को फिर भी कुछ जानना हो तो वे काशी के सुप्रसिद्ध बाबू भगवानदास जी एव प्रयाग के माननीय बाबू पुरुषोत्तम–दास जी टण्डन से पूछ सकते हैं । मैं अब अपने लिये कुछ न लिखूगा । यदि उपरोक्त त्रुटि के कारण ही मैं पूज्य बापू के चुनाव म न आ सकू तो मैं उनके इस नियमो म बाधक होते हुए भी अपने आपको पेश करने की धृष्टता नही करना चाहता । आग्रह भी नैतिक अपराध है ।

यह उपरोक्त स्पष्टीकरण आप उचित समझो तो निवेदन कर देना । यदि मौन ही ठीक प्रतीत हो तो उसम भी मेरी अनुमति है । स्वामी श्री आत्मानन्दजी भी अपनी स्थिति–विशेष के कारण नियमित चर्खा कातने के नियम को निभाने म असमर्थ ह । हां शेष बातो म प्रणबद्ध हैं ।

भवदीय,
ठा केसरीसिह

ठाकुर केसरीसिंह
को
लिखे गये पत्र

[illegible]

(1)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

हम याद जल बुझे मगर इस दिल की आग को
सीने में 'जौक' हमने न पाया बुझा हुआ।

आपका [illegible]
पुजारी
[illegible]

पुनश्च

आपकी देह–ताप की मुझे सदैव चिंता रही है और रहती है । परन्तु मेरी भावना तो सफल होती ही नहीं, यह तो किस्मत में ही लिखा कर आया हूँ । वीर प्रताप की माताजी को प्रणाम । फिर भी आगे मिलकर मेल मेलेंगे । यहां नहीं तो वहां सही ।

---

1 राजस्थान के सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री अर्जुनलाल सेठी द्वारा ठाकुर केसरीसिंह बारहठ को लिखा गया पत्र ।

2 सेठजी के पुत्र प्रकाश जिनका किशोरावस्था में ही स्वर्गवास हो गया था ।

(2)

वन्दे मातरम्   अल्ला हो अकबर

राजस्थान, मध्यभारत तथा अजमेर (मेरवाड़ा)
प्रांतीय कांग्रेस कार्यालय, अजमेर

सं०   ता० 28-5 1924

सेवाम,

श्रीयुत ठाकुर केसरीसिंह जी साहब कोटा

सलाम निवेदन है कि दास सेठी को जो कुछ भी आज्ञा देंगे वह मनसा वाचा कर्मणा स्वीकृत होगी, शिरोधार्य होगी। यदि आप मुझे दोषी ठहरायेंगे तो देहान्त प्रायश्चित तक भी सहर्ष मंजूर करूंगा।

आपका चिर सेवक
अर्जुनलाल सेठी

पुनश्च

आप अपने पधारने की तारीख सूचित करने की कृपा करें।

गाँधीजी का पत्र

आश्रम साबरमती
शनिवार, 6 3 1925

भाई केसरीसिंह जी,

आपका खत माघ कृ 5 का मैंने मेरी पास रख छोड़ा, ऐसी इच्छा से कि मैं कुछ न कुछ 'यंग इण्डिया'' में लिखूं। अब सोचता हूं कि लिखने से कुछ लाभ नहीं है। किसी ने ऐसा माना ही न था कि सब प्रतिनिधि सेठी जी के पक्ष में हैं और दोषित हैं।

आपका,
मोहन दास

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का पत्र

'प्रताप" प्रसिद्ध राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्र

❀ वन्देमातरम् ❀

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक समान है।

"प्रताप" कार्यालय
कानपुर 19-4-1931

आदरास्पद बन्धु,

नमोनम ।

आपका सन्तप्त पत्र मिला। श्रद्धाभाजन गणेशजी[1] तो हम लोगों को अनाथ करके चल गए। पर, वे अमर हैं। जिस शान से वे जिये, उसी शान से मर रहे। उनका बलिदान, साहस और धैर्य की परिसीमा का परिचायक है।

आप उनके बहुत पुराने मित्रों में हैं व आपका त्याग और आपकी तपस्या तो अभिनव भारत के लिये प्रातः स्मरणीय वस्तु है। यदि आपके सदृश महानुभावों की कृपा रही तो "प्रताप" उसी प्रकार, पूर्ववत् सेवा करता रहेगा।

भगवान मुझे बल दें कि मैं पूजनीय गणेशजी के चरण-चिह्नों का अनुसरण कर सकूं।

आशा है आप सानन्द हैं।

आपका
बालकृष्ण शर्मा

---

1 अमरशहीद गणेशशंकर विद्यार्थी

हजारीबाग सेंट्रल जेल के भूतपूर्व वार्डर (प्रहरी) राधासिंह का पत्र

मु० केसार
पो० भगवानपुर
जिला शाहबाद (आरा)
बिहार ता० 2/4/1933

रामजी सहाय नम

सोसती श्री श्रीमान् ठाकुर कसरीसिंहजी के चरणकमल म राधासिंहजी के तरफ से कोटीन सा प्रणाम पहुचे। आगे बाबु रजीतसिंह को काटीनसा आशीर्वाद पहुचे। आगे हम आप लोग के दया से अच्छे सो हैं। आपका कुशल श्री विश्वनाथ जी बनाय राखस। आगे आपका एक पत्र हमको मिला, उस पत्र को मिले बहुत दिन गुजर गया, तब से फिर एक भी पत्र आपका नहीं मिला। आप उस पत्र म लिखे थे कि मकान बनाते हैं सो मकान बना कि अब ही कुछ बाकी है। हम गरीब को आशा है कि आपका चरण कमल का दशण जरूर मिलेगा। हम अपने हृदय स आपको कभी नहीं बीसारते हैं। आप एक अपने युगल चरणा के दर्शण दे दीजिये जिसमे हम कृताथ हो जाये। आगे हम हजारीबाग से तीन महीना के छुटी मे घर गये हैं। हम 10 जून को फिर अपने काम पर हजारीबाग उपस्थित हो जायेंगे। इस पत्र का जवाब आप हमारे मकान ही पर भेजीय जरूर। आपके पत्र आन से हमको अनुभव होता है कि साक्षात आप के चरण कमला का दशण हो रहा है। मुझ गरीब को यह अभिलाषा है कि आप मुझ गरीब पर कृपा कर इस पत्र का उत्तर शीघ्र दवें।

हजारी बाग सेंट्रल जेल मे ठाकुर साहब को आजीवन कारावास की अवधि म 1915 से 1919 तक रखा गया था। जहां उनकी काल कोठरी [Solitary Cell] का वार्डर (प्रहरी) राधासिंह था जिस उन्होंने चने की दाल से अक्षरज्ञान कराया था। एक क्रांतिकारी क प्रति जेल के वार्डर की भी कितनी श्रद्धा थी, यह पत्र उसी का प्रतीक है। यह पत्र भोजपुरी मे है।

पं. माखनलाल चतुर्वेदी का पत्र

"कर्मवीर"
खंडवा
दिनांक 19-3-34

श्रद्धास्पद भाई साहब,

सादर नमन ।

बहुत दिनों बाद पत्र पाकर कृपा सुख का मूल धन पाया ।

मध्य प्रदेश की खैरागढ रियासत जमीदारी है, राज्य नहीं । इन्हें यहां फ्यूडिटरी चीफ्स कहते हैं किन्तु ये लोग कहलाते राजा ही हैं । पत्र की अधिक जानकारी मैं कुछ दिनों बाद ही लिख सकूंगा । अभी मैं दिल्ली जा रहा हूँ, साहित्य सम्मेलन में । वहां से लौटकर ही इस ओर ध्यान दे सकूंगा ।

मेरी भी बड़ी इच्छा है कि एक बार आकर आपके विमल पारिवारिक जीवन में जबरदस्ती प्रवेश करूं और कृपा लाभ लूं । झालरापाटन जाकर भाई श्री गिरिधरजी और उनके बच्चे को भी देखना चाहता हूं । देखूं कब अवसर मिलता है परन्तु जिस दिन आऊंगा, बिना खबर दिये-चोर की तरह पहुंच जाऊंगा ।

आपके स्वास्थ्य की शिथिलता का संवाद पाकर दुःख हुआ । आपके कष्टों का स्मरण ही किसी की नाड़ियों में स्फूर्ति देने के लिए काफी है ।

आपका अपना मानकर धन्य'
माखनलाल चतुर्वेदी

कविवर माखनलाल चतुर्वेदी का ठा केसरीसिंह को पत्र

श्री रमणीक ए. मेहता का पत्र

मा.. वाडा
गिरगांव, मुंबई
दि — —1938

प्रिय बन्धु

आज रोज जुदा बुक पोस्ट थी म्हारी एक नकल क्यानी प्रत आपने मोकला छुं। म्हारा जीवन नो केंटलेक अंश कोटा माये सकलित छे। जीवन नी केटलीक धन्य पलो कोटा मे व्यतीत थई छे। तेमापण केटलीक व्यक्तिनो समग पुन पुन चक्षु समीप खडो थाय छे। तेनी याद स्मरण मा सौरभ भरे छ। एवी एक व्यक्ति ने आ पुस्तक अर्पण कर्यु छे। ये व्यक्ति नो अपना हृदय मा अचल स्थान छे। स्थान अने म्हारे माटेपण तेनु स्मरण 'गलापि हृदि तिष्ठति' जेवु छे। ते व्यक्ति कोई अन्य नही पण आपना कुमार स्व प्रताप ने अर्पण कयू छ। ते जोई आपसो।

हूँ कुशल छूँ। सौ तारा आपने प्रणाम कहेवराव छ। सब मे म्हारा घटित। कार्यक्रम आपनो चालूहसे।

रमणीक मेहता

---

1 यह गुजराती भाषा की पुस्तक 'शरतचन्द्र'(सत्तावन ना स्वातन्त्र्य युद्ध नु छाया चित्र) है जिसके बगला मे मूल लेखक श्री देवीप्रसन्न राय चौधरी हैं एवं गुजराती म इसका अनुवाद स्व साधु चरितनारायण हेमचन्द्र ने किया था तथा इसका सशोधन एव सम्पादन उक्त पत्र के लेखक श्री रमणीक ए मेहता ने किया था। यह पुस्तक अमरशहीद कुंवर प्रताप सिंह को समर्पित की गई थी। समर्पण इस भांति है—
"रत्न प्रमू राजस्थान मा जन्म ग्रहण करी, देशोन्नति न... मत्र थी प्रेराई, जन्म-भूमि ना उद्धार माटे जैणे ... आत्मोत्सर्ग शहीद चि प्रताप ना अमर आत्मा ने,

महाराज कुमार रघुवीरसिंह का पत्र

रघुवीर निवास,
सीतामऊ (मालवा)
दिनांक 30-10-38

श्रद्धेय बारहठ जी ! सादर वन्दे !

आपका दिनांक 25- 0 का पत्र यथा समय प्राप्त हुआ। सब हाल जानकर दिल को चोट पहुंची। अपनी एक मात्र आशा के आधार को भी अपनी ही आंखो के सामने घुलते देखना क्या लिखू ? आगे लिखते कलम रुकती है। जी मे तूफान-सा उठता है। आपके ऊपर अब तक जो विपत्तियां आती रही हैं उनको देखते यह भावी विपदा अतीव महान और कठोर है। जब कोई दूसरा सहारा न रहा तब अपने एक मात्र सहारे को भी इस प्रकार आपद्‌ग्रस्त देखना कौन सह सकता है ? मैंने अब तक कई व्यक्तियों (महान् पुरुषों) की जीवनियां पढ़ी, उनकी सुख दु:ख वार्ता से परिचित हुआ। परन्तु अब तक इतनी विकट वार्ता का विवरण बहुत ही कम देखने को मिला। आपकी विगत विपत्ति वार्ता से परिचित रहा हू एव आपके दिल की यातनाओं का अन्दाज लगा सकता हू और जिस व्यक्ति ने सितम पर सितम सह कर भी अब तक उफ न की जरा भी विचलित न हुआ, उसको जरा भी क्षुब्ध होते देखकर जी रो देता है। सच कहता हू बारहठ जी ! यह आपकी परीक्षा का समय है और आप पर जिनकी कुछ भी श्रद्धा एव आदर है वे आपको इस विपत्ति का भी उसी धीरज और साहस के साथ सामना करते देखना चाहते हैं। आपने मुझ पर जो विश्वास एव अपनापन रख कर अपनी विपत्ति कथा की सूचना दी उसको अनुभव कर मैं द्रवित हो गया। यह आपकी उदारता है कि मुझे इस योग्य समझा कि इस महत्ती आपत्ति के अवसर पर मेरी सहानुभूति चाही और मुझे इस विश्वास के योग्य समझा कि अपनी हार्दिक भावनाओं को स्पष्ट शब्दों में उल्लेख करा सके।

श्री रमणीक ए. मेहता का पत्र

मांडवाडी
गिरगांव, मुंबई
दि - -1938

प्रिय बन्धु,

आज रोज जुदा बुक पोस्ट थी म्हारी एक नवल कथानी प्रत आपन मोकली छे। म्हारा जीवन नो कंटलेक अंश कोटा माये सकलित छ। जीवन नी केटलीक धन्य पलो कोटा मे व्यतीत थई छे। तेमांपण रटगीक व्यक्तिनो समग्र पुन पुन चक्षु समीप खडो थाय छे। तेनी याद स्मरण मा सौरभ भरे छ। ऐवी एक व्यक्ति ने मा पुस्तक अपण कयु छ। ए व्यक्ति ना आपना हृदय मा अचल स्थान छे। स्थान अने म्हारे माटेपण तेनु स्मरण 'गलापि हृदि तिष्टति" जेवु छे। ते व्यक्ति कोई अन्य नही पण आपना कुमार स्व प्रताप ने अपण कयू छ। ते जोई आपसो।

हूँ कुशल छूँ। सो तारा आपने प्रणाम कहेवराव छे। सब मे म्हारा घटित। कायक्रम आपनो चालू हशे।

रमणीक महता

---

1 यह गुजराती भाषा की पुस्तक 'शरतचन्द्र'(सत्तावन ना स्वातन्य युद्ध नु छाया चित्र) है जिसके बगला मे मूल लेखक श्री देवीप्रसन्न राय चौधरी है एव गुजराती मे इसका अनुवाद स्व साधु चरितनारायण हमचन्द्र ने किया था तथा इसका सशोधन एव सम्पादन उक्त पत्र के लेखक श्री रमणीक ए मेहता ने किया था। यह पुस्तक अमरशहीद कुवर प्रताप सिंह को समर्पित की गई थी। समपण इस भाति है—

"रत्न प्रसू राजस्थान मा जन्म ग्रहण करी, देशो नति ना मोहन मत्र थी प्रेराई, जन्म-भूमि ना उद्धार माटे जैणे हस्तेवद नो आत्मोत्सर्ग कर्यो छे, त अमर शहीद चि प्रताप ना अमर आत्मा ने उत्सर्ग"

महाराज कुमार रघुवीरसिंह का पत्र

रघुवीर निवास,
सीतामऊ (मालवा)
दिनांक 30-10-38

श्रद्धेय बारहठ जी ! सादर वन्दे !

आपका दिनांक 25- 0 का पत्र यथा समय प्राप्त हुआ। सब हाल जानकर दिल को चोट पहुंची। अपनी एक मात्र आशा के आधार को भी अपनी ही आंखों के सामने घुलते देखना " क्या लिखूं ? आगे लिखते कलम रुकती है। जी में तूफान-सा उठता है। आपके ऊपर अब तक जो विपत्तियां आती रही हैं उनको देखते यह भावी विपदा अतीव महान और कठोर है। जब कोई दूसरा सहारा न रहा तब अपने एक मात्र सहारे को भी इस प्रकार आपदग्रस्त देखना कौन सह सकता है ? मैंने अब तक कई व्यक्तियों (महान् पुरुषों) की जीवनियां पढ़ी, उनकी सुख दुःख वार्ता से परिचित हुआ। परन्तु अब तक इतनी विकट वार्ता का विवरण बहुत ही कम देखने को मिला। आपकी विगत विपत्ति वार्ता से परिचित रहा हूं एवं आपके दिल की यातनाओं का अन्दाज लगा सकता हूं और जिस व्यक्ति ने सितम पर सितम सह कर भी अब तक उफ न की, जरा भी विचलित न हुआ, उसको जरा भी क्षुब्ध होते देखकर जी रो देता है। सच कहता हूं बारहठ जी ! यह आपकी परीक्षा का समय है और आप पर जिनकी कुछ भी श्रद्धा एवं आदर है वे आपको इस विपत्ति का भी उसी धीरज और साहस के साथ सामना करते देखना चाहते हैं। आपने मुझ पर जो विश्वास एवं अपनापन रख कर अपनी विपत्ति कथा की सूचना दी उसको अनुभव कर मैं द्रवित हो गया। यह आपकी उदारता है कि मुझे इस योग्य समझा कि इस महत्ती आपत्ति के अवसर पर मेरी सहानुभूति चाही और मुझे इस विश्वास के योग्य समझा कि अपनी हार्दिक भावनाओं का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख करा सके।

अत मैं आपके साथ इस महान भावी विपत्ति क अवसर पर पूरी–पूरी हार्दिक सहानुभूति करते समय यही प्रार्थना करता हू कि इस अवसर पर आप विचलित न होवें। जिस तरह हृदय पर आघात पर आघात अब तक सहे, उसी प्रकार एक और सही। मरा विश्वास है कि यह अन्तिम परीक्षा होगी। उस परमात्मा का भरोसा एव विश्वास ही इस समय आपके सहायक होगे और मेरा यह भी विश्वास है कि आपका शीघ्र ही विपत्ति से छुटकारा होगा।

अधिक क्या लिखू ? मेरा विश्वास है कि आपको इस पत्र स कुछ सान्त्वना मिलेगी और यह भी स्पष्ट कह देना चाहता हू कि आपका पत्र पढ–कर मेरा भी चित दु खित हुआ। धीरज और धम की विपत्ति क समय ही परीक्षा होती है।

सादर,

आपका सम्मुखी
रघुबीरसिंह

ठाकुर साहब के पुत्र रणजीतसिंह को टी बी हो जान पर उन्होंने जो पत्र महाराज कुमार साहब को लिखा था, उसक उत्तर म डॉ रघुबीर-सिंहजी न यह पत्र लिखा।

जीवनी

- राजस्थान की एक विभूति: कविराजा श्यामलदासजी

राजस्थान की एक विभूति

महामहोपाध्याय

कविराजा श्यामलदासजी दधिवाडिया*

महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी के पूर्वज मारवाड (जोधपुर राज्य) के मेडता परगने मे दधिवाडा नामक ग्राम के रहने वाले देवल गोत्र के चारण थे और वे रूण के राजा सांखला राजपूतो के बारहठ थे। जब सांखलो का राज्य राठोडो ने छीन कर रूण पर अधिकार कर लिया, तब सांखला राजा अपने भानजे मेवाड के महाराणा कुंभा के पास चित्तोड चले आये, जिनको चौरासी ग्राम–सहित ताणा का परगना मिला। उसके बाद देवल चारणो के अधिकार मे दधिवाडा ग्राम कुछ अरसे तक बना रहा परन्तु राठोडो के बारहठो (राहडिया चारणो) से तकरार होने के कारण वे भी दधिवाडा ग्राम छोडकर चित्तोड चले आये। दधिवाडा ग्राम से आने के कारण जैतजी देवल के पुत्रों को मेवाड के लोग दधिवाडिया कहने लगे। उसके बाद जितने देवल गोत्र के चारण आये, दधिवाडिया ही कहलाये।

---

* कविराजा श्यामलदास ऐतिहासिक ग्रंथ 'वीर विनोद" के यशस्वी लेखक हुए हैं, जिसके कारण उनको अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली। कर्नल जेम्स टाड के "एनल्स एण्ड एंटिक्विटिज आफ राजस्थान" ग्रंथ के बाद 'वीर विनोद' राजस्थान की रियासतो का प्रथम क्रमबद्ध एवं प्रामाणिक इतिहास ग्रंथ है। यद्यपि यह विशाल ग्रंथ मूलत मेवाड के इतिहास के रूप मे लिखा गया है किंतु वस्तुत यह भारतीय इतिहास कोश है।

जैतजी के पुत्र महपाजी [महिपाल] को महाराणा सागा ने वि स 1575 वैशाख शुक्ल 7 का ढोकलिया ग्राम सासण दिया, जो अब तक उनके वशजो के अधिकार मे है । महपाजी से ग्यारहवी पीढी मे उसी ढोकलिया ग्राम मे वि० स० 1867 के ज्येष्ठ माह म कमजी का जन्म हुआ । बडे होने पर वे उदयपुर मे महाराणा स्वरूपसिहजी और फिर महाराणा शभूसिहजी के दरबार मे रहे और महाराणा इनसे प्रसन्न थे । कमजी का विवाह कृष्णगढ-राज्य मे उदयपुर नामक ग्राम के रोहडिया बारहठो के परिवार मे एजनबाई से हुआ । इन एजनबाई की सौभाग्यपूर्ण कुक्षि से कविराजा श्यामलदासजी जैसी विभूति का प्रादुर्भाव हुआ ।

कमजी के निम्नलिखित छ सन्तानें हुई । उनका क्रमश विवरण यह है-

(1) ज्येष्ठ पुत्री शृगारबाई का जन्म वि स 1888 के माघ मे हुआ । विवाह स० 1899 मे शाहपुरा राज्य के देवपुरा ग्राम (उक्त बारहठजी का खेडा) के स्वामी सोदा बारहठ ओनाड (अनाड) सिहजी के साथ हुआ । इनके गर्भ से राजपूताना के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ स्वनामधन्य बारहठ कृष्णसिहजी जैसे कुलदीपक पुत्ररत्न उत्पन्न हुए और एक पुत्री रसालबाई हुई जो कोटा राज्य मे मतरालिया ठाकुर फतहसिहजी महियारिया को ब्याही गई ।

(2) पुत्र, ओनाडसिहजी का जन्म वि स 1890 मगसिर म हुआ । ये कमजी की विद्यमानता म ही ठिकाना खेमपुर के ठाकुर शेरजी के गोद रख दिये गये । इनका देहान्त स० 1936 म हुआ । इनके पुत्र ठा० चमनसिहजी हुए और चमनसिहजी के तीन पुत्र हुए जिनम से ज्येष्ठ ठा० करनीदानजी और तृतीय ठा० खेमराजजी विद्यमान है ।

(3) पुत्र, हमारे चरित्रनायक कविराजा श्यामलदासजी का जन्म वि० स० 1893 द्वितीय आषाढ कृष्णा 7 मगलवार के दिन ढोकलिया ग्राम मे हुआ । इनका प्रथम विवाह स० 1907 म मेवाड के सावरडा ग्राम के भादा भूलजी की बेटी के साथ हुआ और दूसरा विवाह स० 1916 म

ठाकुर साहब ने बचपन से ही अपने पूज्य पितु श्री के अतिरिक्त कविराजा श्यामलदासजी से शिक्षा और सस्कार प्राप्त किए । कविराजा के प्रति उनके हृदय मे असीम श्रद्धा और आदर था । विद्वानो के आग्रह और कविराजा श्यामलदास के प्रति श्रद्धा से प्रेरित होकर ठाकुर साहब ने अपनी जीवन-यात्रा के अतिम वर्ष (1940 ई) म ऋण शोधन स्वरूप यह जीवन चरित्र लिखा था ।

मेवाड़ में भडक्या ग्राम के गाडण ईश्वरदानजी की बेटी के साथ हुआ। प्रथम विवाह से पुत्री धूलबाई का जन्म हुआ। वह प्रतापगढ़ राज्य में सचेई ग्राम के महडू स्वरूपसिंहजी को ब्याही गई। दूसरे विवाह से कई सन्तान हुई परन्तु दो पुत्रियों के अतिरिक्त शेष न बची। बड़ी पुत्री अनूपबाई उदयपुर राज्य के ग्राम पाणोड के सोदा बारहठ रामसिंहजी को ब्याही गई और दूसरी पुत्री कल्याणबाई जोधपुर के महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदानजी आशिया के पुत्र गणेशदानजी को ब्याही गई। अब न तो वे तीनों पुत्रियां विद्यमान हैं, न कोई उनकी सन्तान।

(4) पुत्र, ब्रजलालजी का जन्म सं० 1894 के पोष में और देहान्त सं० 1927 में हो गया। इनके एक पुत्र जगमालजी हुए जो निःसन्तान गुजर गए।

(5) पुत्र, गोपालसिंहजी का जन्म सं० 1897 मृगशिर में हुआ और देहान्त सं० 1937 में हो गया। इनके एक पुत्र जसकरणजी हुए। वे कविराजा श्यामलदासजी के गोद लिये गये।

(6) पुत्री, छतबाई का जन्म सं० 1902 में और देहान्त सं० 1927 में हो गया। यह मेवाड़ के ग्राम करणवास के आढा चतरजी को ब्याही गई।

यह हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि राजपूताना के असाधारण तेजस्वी निर्भीक, प्रतिभासम्पन्न, सत्य के कठोर पुजारी चारणकुल के सूयस्वरूप हमारे चरित्रनायक स्वनामख्यात कविराजा श्यामलदासजी के जन्म से गंभीर प्रकृति और स्वाभिमानी पिता कमजी की कुल-लता और ईश्वरभक्तिपरायणा, निमल-हृदया माता एजनबाई की कुक्षि उज्ज्वल हुई।

प्रायः यह देखा जाता है कि जिसकी स्मरणशक्ति तीव्र होती है उसमें विचारशक्ति की अल्पता रहती है और विचारशील व्यक्ति की स्मृति कुंठित होने का अनुभव होता है। परन्तु परमात्मा ने प्रत्युत्पन्नमति श्यामलदासजी को विशाल स्मृति और गहन विचारशक्ति दोनों ही समान रूप से जाज्वल्यमान प्रदान की थी।

श्यामलदासजी का पठनपाठन कहां और किसके पास हुआ यह मेरे ज्ञान के बाहिर है। परन्तु इतना ज्ञात है कि उनका संस्कृत का ज्ञान अच्छा था और

उनकी कविता भी चमत्कार लिये होती थी। श्यामलदासजी का स्वाभिमानी हृदय चापलूसी में पनपने वाली राजसेवा से दूर रहने में ही आत्मस्वतंत्रता का सुख अनुभव करता था, और चाहे सामान्य ही क्या न हो, समानता और सम्मानपूर्ण व्यवहार रखनेवाले स्थल की ओर ही आकर्षित होता था। यही कारण है कि पिता के आग्रह करने पर भी वे उदयपुर के महाराणा के दरबार से मुँह फेर कर अपने गुणग्राही मित्र ठिकाना मठाणा (मालवा-ग्वालियर राज्य) के रावत दूलहसिंहजी और फिर मेवाड़ के ठिकाना देलवाड़ा के राजराणा फतहसिंहजी के साथ घनिष्ठ प्रेम हो जाने के कारण अधिकतर मठाणा और देलवाड़ा ही में रहा करते थे।

वि० सं० 1927 के वैशाख में पिता कमजी का देहान्त हो गया। अतः श्यामलदासजी उदयपुर पहुँचे और पिता की जगह उत्तराधिकारी हुए क्योंकि बड़े भाई ठा० ओनाड़सिंहजी मेमपुर ठिकाने पर गोद जा चुके थे। इसी वर्ष के आषाढ़ में महाराणा शम्भूसिंहजी मातमपुर्सी के लिये श्यामलदासजी की हवेली पर पधारे। तब से ही श्यामलदासजी महाराणा की सेवा में रहने लगे।

महाराणा शम्भूसिंहजी को भक्त-कवि बारहठ नरहरिदास जी रचित **अवतार चरित्र**[1] नामक ग्रंथ बहुत पसंद था। अतः श्यामलदासजी सायंकाल में नित्य महाराणा को अवतार चरित्र सुनाया करते थे। एक बार महाराणा को तीर्थयात्रा करने की इच्छा हुई और उनके मुसाहिबों में से महता पन्नालालजी आदि ने सलाह दी कि इस यात्रा का खर्चा राज्य के खजाने पर न डालकर उदयपुर शहर के उन धनाढ्य व्यक्तियों से लिया जाय जिनके पूर्वजों ने राज्य का कार्यभार किया है और जो वर्तमान में राज्य कार्य भार चला रहे हैं। इस सलाह में उनके पारस्परिक द्वेष और बदले की भावना छिपी हुई थी जिसको सरल हृदय महाराणा न जान सके और फहरिस्त बनाने का हुक्म दे दिया। श्यामलदासजी की तीक्ष्ण दृष्टि से यह रहस्य छिप न सका। यद्यपि वे सलाहकार न थे फिर भी साहस करके एक पुर्जे पर महाराणा को संबोधन करके लिखा कि 'अब वह जमाना नहीं है कि राजा किसी को दबाकर जा और बेजा किसी का घर छीन लें। इस फहरिस्त

1 श्रीमद्भागवत के अनुरूप ही भक्ति काव्य का यह महान ग्रंथ तत्कालीन राजस्थान में बहुत लोकप्रिय था। इसका प्रथम मुद्रण श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई में हुआ था। अब यह ग्रंथ प्रायः अप्राप्य है। 'अवतार चरित्र' के प्रणेता बारहठ नरहरिदास जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंहजी प्रथम के समकालीन थे।

के निर्माण में षडयन्त्र छिपा हुआ है। हुजूर को सावधान रहना चाहिये। व्यर्थ बावेला मचेगा और पालिटिकल अंग्रेज अफसरों तक आपकी बदनामी पहुँचेगी और इसका बहुत बुरा असर होगा। मैं नहीं समझता कि इस तरह रुपया इकट्ठा करके अभी यात्रा की ऐसी कौनसी जरूरत आ पड़ी। अगर यात्रा जाना ही है तो राज्य के खर्च से ही जाना चाहिए।"

यह पुर्जा लिखकर "अवतार चरित्र" की पुस्तक में रख दिया, क्योंकि यह पुस्तक महाराणा के पास ही रहा करती थी जिसे वे स्वयं भी पढ़ा करते थे। महाराणा ने पुर्जा पढ़ लिया और श्यामलदासजी को बुलाकर कहा कि तुम्हारी सलाह बहुत नेक है। अभी यात्रा नहीं जायेंगे और न कभी ऐसा तरीका ही स्वीकार करेंगे। अब तुम पर मेरा पूरा विश्वास है हरेक मामले में तुम मुझे इसी तरह की सलाह दिया करो।

थोड़े ही दिन बाद महाराणा ने अपने प्राइवेट कागजात का बक्स श्यामलदासजी के सुपुर्द कर दिया और प्राइवेट सैक्रेटरी बनाकर काम लेने लगे। श्यामलदासजी का सितारा अभी चमकने ही लगा था कि वि० स० 1931 में महाराणा शम्भूसिंहजी का भर जवानी में स्वर्गवास हो गया। श्यामलदासजी के सामने निराशा के बादल छा गये। किन्तु वे कैसे जान सकते थे कि उनका भविष्य सितारे की जगह सूर्य को लाना चाहता है।

महाराणा सज्जनसिंह[1] गद्दी बैठे। महाराणा शम्भूसिंहजी की विद्यमानता में ही सज्जनसिंह जी उनके पास रहने लग थे अतः श्यामलदासजी के निकट सम्पर्क में आना स्वाभाविक था। सज्जनसिंहजी अल्पवयस्क होते हुए भी विलक्षण बुद्धि रखने वाले थे अतएव श्यामलदासजी के व्यक्तित्व पर मुग्ध थे। गद्दी बैठते ही उन्होंने श्यामलदासजी को उसी प्रेम से अपनाया।

इन स्वामी सेवक का पारस्परिक प्रेम और विश्वास कितना असाधारण था इसे हम आगे बतायेंगे। यहां इतना ही लिखना पर्याप्त समझेंगे कि महाराणा सज्जनसिंहजी के राज्यकाल में मेवाड़ की जो उन्नत अवस्था हुई उसमें एक मात्र श्यामलदासजी का प्रधान हाथ था, उन्हीं के मस्तिष्क का मूर्त रूप था। अतः इन दो महान् आत्माओं के राजकीय जीवन को कोई द्वैत रूप में अंकित नहीं

1 महाराणा सज्जनसिंह का जन्म 1859 ई की आषाढ वदि 4 को हुआ था। और पंद्रह वर्ष की अल्पायु में सन् 1874 की आश्विन वदि 12 को राज्य-गद्दी पर बैठे।

कर सकता, चाहे उसे "महाराणा सज्जनसिंहजी का यशस्वी राज्य-काल" कह दीजिये या संक्षेप में "कविराजा श्यामलदासजी का जीवनचरित्र" । बात एक ही होगी। अतः हम कविराजा साहिब के प्रधानमन्त्री पद के आधार पर मेवाड़ के शासन में कौन कौनसी प्रधान बातें हुई उन्हें हम संक्षेप में यहां उल्लेख कर देते हैं।

वि० सं० 1933 में 'अपील' अदालत तोड़ी जाकर 'इजलासखास' के नाम से कई मेम्बरों की एक सबसे ऊपर की अदालत मुकर्रर हुई ताकि न्याय की निष्पक्ष छानबीन पूरी तरह से हो। इसमें श्यामलदासजी को 'मुख्यमन्त्री' के नाम से सबसे ऊपर सलाहकार मुकर्रर किया गया और महाराणा के प्राइवेट सेक्रेटरी का काम भी इन्हीं को सौंपा गया। तब से ही श्यामलदासजी राज्य को समयानुकूल आदर्श बनाने की लगन से नवीन सुधारों का प्रयोग करने लगे।

(1) पुलिस के नवीन संगठन की व्यवस्था श्यामलदासजी ने स्वयं अपने हाथ में ली और सफल परिणाम पर पहुंचाई। एक घटनाचक्र से यह समझा जा सकता है —

पुलिस को यह आदेश था कि उदयपुर शहर में रात्रि के बारह बजे बाद किसी को चाहे वह कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो बिना रोशनी के न निकलने दिया जाय। महाराणा इस आदेशपालन के परीक्षार्थ बिना किसी को संकेत किये ही एक दिन बग्घी में बैठकर रात को 1 बजे बाद बाजार में निकले और बग्घी की रोशनी बुझा दी गई। जगदीश के मन्दिर से आगे बढ़ते ही ड्यूटी के कान्स्टेबल ने टोका और आखिर बग्घी के घोड़ों की लगाम पकड़ कर बग्घी रोक ली। कोचमैन ने कहा, बेवकूफ, देखता नहीं खुद श्रीजी हुजूर बिराजे हुए हैं। उसने उत्तर दिया मैं जानता हूं ये "ईश्वरस्वरूप खुद" मालिक हैं परन्तु मैं भी तो इन्हीं की राजआज्ञा का पालन कर रहा हूं जब तक बग्घी में रोशनी न की जायेगी मैं आगे नहीं बढ़ने दूंगा। पूर्व संकेत के अनुसार कोचमैन ने कहा कि रोशनी का सामान नहीं है। उत्तर मिला- तो चलिये श्यामलदासजी साहिब की हवेली पर। मैं लगाम थामे हो ले चलूंगा। खुद महाराणा ने फरमाया कि कल सजा पावेगा। पुलिसमैन ने सिर झुका कर अर्ज की कि कल मालिक सजा देंगे या लूंगा अभी तो श्यामलदासजी के हुक्म की ही तामील होगी। पुलिसमैन का नाम व नम्बर पूछा-जाकर बग्घी में रोशनी हो गई। दूसरे दिन महाराणा ने हो सब हाल श्यामलदास जी को कह सुनाया, वह सिपाही उसी दिन हवलदार बना दिया गया।

(2) पहिले कवायदी फौज नहीं थी अत जंगी फौज जुदा करके महाराणा के मामा अमानसिंह जी को उसका कमांडर इन चीफ बनाया और सैनिक शिक्षण के लिये एक अंग्रेज मि लोनागन को रखा ।

(3) इञ्जीनियरिंग का महकमा कायम करके उदयपुर शहर के भीतर और बाहिर सड़कें बनवाई गई और शहर सफाई का प्रबन्ध किया गया।

(4) मेवाड़ म सदा से उमराव सरदार जोरदार रहे हैं जो अपने अधिकारों के नाम पर मनमानी करते रहे बल्कि पिछले जमाने म इनकी उच्छृंखलता से मेवाड़ की बर्बादी भी हुई। अत संवत् 1935 में युक्तिपूर्वक सब उमराव सरदारों के साथ दीवानी एवम् फौजदारी के मुकद्दमों के अधिकारों बाबत नई कलमबन्दी (अहदनामा) की गई।

(5) मेवाड़ म 31 तहसीलें थी उनको तोड़ कर 10 जिले कायम किये गये और उन पर योग्य हाकिम नियत किये गये।

(6) मेवाड़ में चार सौ पचीस चीजों पर महसूल जकात लिया जाता था और इससे प्रजा को कष्ट था। अत वह मुआफ करके सिर्फ 9 चीजों पर महसूल कायम रखा और डाण (कस्टम्स) के महकमे का नवीन प्रबन्ध किया।

(7) महकमा जंगलात कायम किया गया।

(8) सरहदी फैसलों के लिये कर्नल डिक्जिजू की मातहती म महकमा बंदोबस्त कायम किया गया और इसी साल म मेवाड़ का दौरा करके आबपाशी आदि तरक्की के काम किये।

(9) सं० 1936 म मेवाड़ म पैमायश करा कर माल का पुख्ता बन्दोबस्त ठेकाबन्दी (सेटलमेंट) को जारी करवाया। इस प्रबन्ध को रोकने के लिये मेवाड़ के जाटों ने बड़ा हुल्लड़ मचाया और हजारों की तादाद म हल बैल लेकर राजधानी उदयपुर म आ जमा हुए और महलों के चौक म पहुंच कर हल्ला मचाया। उस समय कविराज जी ने अर्ज की कि हुजूर स्वरूप निवास के झरोखे म बिराज कर तसल्ली देने का हाथ हिलाते हुए फरमा दें कि तुम्हारी बात सुनी जायगी और मैं इनको इस हुल्लड़ पर फटकारता हूं, उनका यह क्रोध मेरे पर उतर आवेगा, बाद म समझा लूंगा। ऐसाही हुआ। कविराजाजी ने रुद्र रूप धारण करके खूब फट

कारा और आदेश दिया कि इन्हें निकालो यहां से। जब तक बड़ी पोल के बाहिर न निकल जाओगे, तुम्हारी एक बात नहीं सुनी जायगी। विवश होकर व यह कहते हुए निकल गये कि मालिक तो दयालु हैं—सुनना चाहते हैं— पर यह दुष्ट नहीं सुनने देता। फिर स्वयं उनके पड़ाव पर जा कर तसल्ली से समझा बुझा कर राज्य का निर्णय कायम रखा।

(10) इसी स० 1936 में महाराणा सज्जनसिंहजी की जयपुर यात्रा कविराजाजी के महान् संकल्प का श्रीगणेश था। कविराजाजी को भारत के देशी राज्यों की पारस्परिक फूट और द्वेष परम्परा बहुत अखरती थी क्योंकि भारत के पतन का यही कारण है। वे चाहते थे कि भारत के नरेश परस्पर विश्वास-पूर्वक मित्रता में गुंथ जायें और सब मिलकर एक सिद्धान्त व एक नीति पर चलते हुए संगठित रूप में एक दूसरे के सहायक बन जायें, तो इनका अस्तित्व फिर भी चिरस्थिर बन सकता है। पुराने द्वेषों और वैरों की धरोहर को लेकर इनमें परस्पर मिलना तो दूर पत्र व्यवहार व जबानी जुहार कहलाना तक भी पीढ़ियों से बन्द था। यह पुराना दकियानूसी ढर्रा तभी टूट सकता था जब कोई सबमें व, असामान्य साहसपूर्ण नीति पटु और प्रभावशाली नरेश विनम्र भाव से मैत्री की सिद्धि के लिए आगे बढ़े। कविराजाजी ने संकल्प की साधना का सर्वोत्कृष्ट क्षेत्र मेवाड़ ही को चुना क्योंकि भारत में जो गौरव और प्राधान्य मेवाड़ को है वह अन्य को नहीं एवं मेवाड़ पर महाराणा सज्जनसिंहजी जैसा दूरदर्शी साहसी और नीतिकुशल शासक होने से सोना और सुगंध का मेल यहीं चरितार्थ होता था। कविराजाजी की यह भावना महाराणा के विशाल हृदय में समा गई उन्हीं की बन गई। इसके लिये अन्य पात्र भी उन्होंने ढूंढ लिये वे थे—उस समय के नीति-महारथी, लब्धप्रतिष्ठ परमबुद्धिमान, यशस्वी जयपुर नरेश महाराजा रामसिंहजी, जिनके हृदय में भी ये ही भाव उठ रहे थे। दूसरे थे सरलचेता परम उदार हृदय महाराजा जसवन्तसिंहजी, जोधपुर—नरेश और उनके सुप्रसिद्ध साहसी वीर भ्राता महाराजा प्रतापसिंहजी।

वास्तव में राजपूताना में ये तीनों ही राज्य मुख्य हैं। परन्तु तीनों ही के बीच मिथ्याभिमान और वैमनस्य की धुंधली दीवार बनी चली आ रही थी। अतः कविराजाजी ने खानगीतौर से क्षेत्र तैयार किया। संकल्प का सूत्रपात हुआ था सं 1933 में होने वाले लोर्ड लिटन

के दिल्ली दरबार के समय दिल्ली मे, और साधना का प्रथम सोपान हुआ स 1936 म उदारचेता महाराणा सज्जनसिंहजी का जयपुर जाकर महाराजा रामसिंहजी का आतिथ्य-ग्रहण और मैत्री का पुनर्गठवधन करने के साथ महाराणा जयपुर से सीधे जोधपुर पहुँचे । हिंदू-सूर्य को अपने आगन मे पाकर मरुधराधीश महाराजा यशवतसिंहजी ने अपना हृदय-कमल बिछा दिया। पाठक कल्पनानेत्र से उस समय के कविराजाजी के उत्फुल्ल हृदय-कमल की पँखुडियाँ आज भी गिन सकता है ।

राजाओ की इस मैत्री साधना मे कविराजा श्यामलदासजी के साथ जोधपुर के महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदानजी का भी पूण सहयोग रहा है। बारहठ कृष्णसिंहजी तो इस राजसूय यज्ञ को निभाय रखने मे कविराजाजी के दक्षिण हस्त थे ही। सचमुच चारण जाति का यही तो आदश कतव्य है, धम है जीवन पथ है। क्षत्रिय जाति म नवजीवन सचार के लिये इससे बढ कर सजीवनी क्या होगी ?

इसी मैत्री के सिलसिले को दृढ करने के लिये ही मरुधराधीश यशवतसिंहजी एव कृष्णगढाधीश शादूलसिंहजी उदयपुर आये और महाराणा सा के साथ माथ कविराजाजी के घर पधार कर आतिथ्य ग्रहण किया। चारणो के कद्रदा अब उठ चुके ! सदेह नही यदि महाराणा सज्जनसिंहजी को ईश्वर दीर्घायु देता तो अवश्य ही कविराजाजी का वह सुनहरा स्वप्न मूर्तस्वरूप ले लेता । किन्तु इन राज्यो के चक्करदार भविष्यपथ पर पगडडी डालने मे मनुष्य की क्या सामथ्य ?

(11) सवत 1937 मे इजलास खास के स्थान पर सबसे ऊपर की अदालत 'महद्राज सभा" के नाम से मुकरर करके उसमे 17 मेंबर और एक सैक्रेटरी नियत किया गया । इन मेंबरो मे मेवाड के बडे बडे उमराव भी लिये गये । ऐसा करने मे न्याय रक्षा के अतिरिक्त राजनतिक उद्देश्य भी था। उदाहरणाथ उमरावो को न्यायपद्धति का अभ्यास हो कर उनके घर म भी न्यायरक्षा का उत्तरदायित्व आ जाये एव हरेक सरदार जो अपनी चाकरी के दिन, खाली हाजरी म बिताकर घर भागना चाहते थे, एक दिन रुकन म भी आपत्ति करते थे, किन्तु इस प्रतिष्ठापूण कतव्य म बँध जाने से उनको रहना ही पडता, आदि ।

(12) इसी सवत् 1937 के वैसाख मे कुल हिन्दुस्तान मे मदुमशुमारी हुइ । उसी सिलसिले मे मेवाड म भील जाति के मदुमशुमारी के प्रसग पर एक मूख

थानेदार की वाचालता के कारण नाहक एक बडा बवण्डर खड़ा हो गया। जब भीलो ने पूछा कि हमे क्यो गिनते हो, तो थानेदार ने कह दिया कि तुम्हारी औरते लबे के साथ लबी और नाटे के साथ नाटी का जोडा मिलाकर बदल दी जावेंगी। बस, फिर क्या था ? घास म चिनगारी पड गई। भीलो ने तुरत ही ढाल पीट कर बलवा कर दिया। मालगुजारी की ज्यादती, लूटखसोट पर रोक आदि बातो को लेकर वे क्षुब्ध-मना तो थे ही, इस मौके पर उन्होंने तत्काल हल्ला बोल दिया और उस थानेदार के साथ ही जो दूसरे अहलकार थे, सबको कत्ल कर दिया और फिर उनके मगरा जिले मे जहा भी राज का आदमी मिला, साफ कर दिया। विद्रोह की प्रचण्ड अग्नि तीन लाख भीलो मे चारो ओर बिखर गई। इस उपद्रव को दबाने के लिये महाराणा ने कविराजा को पूर्ण अधिकार देकर नवीन सुसगठित सेना के साथ मगरा जिले मे भेजा। सेना के कमाण्डर इन चीफ मामा अमानसिंहजी मिस्टर लोनागन (अग्रेज) और पुलिस के प्रधान अफसर मौलवी अब्दुल रहमान खा आदि कविराजाजी की आधीनता मे साथ दिये गये। यह उपद्रव कुछ मास तक चला, फिर भी अपेक्षाकृत बहुत कम भील मार गये और कविराजाजी ने साम दाम, दण्ड, भेद आदि नीतिपटुता से बलवा पूर्णरूप से शान्त कर दिया।

मेवाड मे भीलवाड का सिलसिला बबई प्रात तक है। अत यह अग्नि उधर न फैल जाय इसके लिए भारत सरकार चिंतित हो उठा और उसके इशारे से बलवा क्षेत्र की परिस्थिति और कविराजाजी की गति-विधि, कार्यपद्धति का निरीक्षण करने के लिए खैरवाडा की सरकारी छावनी के दो अग्रेज फौजी अफसर कविराजाजी के सेना के केम्प मे पहुचे। कवि-राजाजी ने आतिथ्य करके अपने शिविर के डेरो मे ठहरा दिया। उसी दिन भील नेताओ के साथ परामर्श होने वाला था अत निर्धारित स्थान पर कविराजा मय मामा अमानसिंहजी आदि के पहुँचे। यह तय पाया कि एक ओर राज्य की सेना एव तोपखाना और दूसरी ओर भीलो का दल खडा रहेगा। परन्तु मध्यभाग मे जहा पच इकट्ठे होगे वहां दोनो ही पक्ष कोई शस्त्र लेकर नहीं आवेगा। करीब पाच सौ भील मुखियाओ के बीच म कविराजा कुर्सी लगाकर बैठ गये और भीलो म शान्ति और सहानुभूतिपूर्वक स्वामिभक्ति और धर्मबुद्धि जागृत करते हुए राजसत्ता का वर्चस्व समझाने लगे। दो लाख से अधिक भील टिड्डी दल के समान अति दूर पहाडियो पर छाये हुए थे। उस समय

किसी दुदर स्वभाव भील ने यों ही राज्य की सेना पर तीर चला दिया और वह एक सिपाही के पैर मे लगा। असहिष्णु सिपाही ने भी सैनिक मर्यादा का उल्लघन कर सहसा बदूक का फायर कर दिया। बदूक का शब्द सुनते ही लाखो भीलो ने एक साथ ही हल्ला मचा दिया। दगा ! दगा !! की तुमुल ध्वनि से आकाश गूज उठा। परन्तु कविराजा ने खडे होकर भील मुखियाओ को कहा कि "मैं तुम्हारे बीच खडा हू, कैसा दगा ? यह किसी मूर्ख सिपाही का काम है। ठहरो, मैं उसे तुम्हारे सामने खडा करता हू, जो चाहो उसके लिये दण्ड तजवीज करो।" सब मुखियाओ ने अपनी अपनी पछेडी (ओढने का वस्त्र) आकाश मे हिलाई हल्ला शात हो गया। सिपाही लाया गया। घटना सुनी जाने पर कविराजा ने कहा कि तुम भी उस मूर्ख भील को हमारे सामने पेश करो। वह भी ढूढ कर लाया गया। पहिला अपराध उसका था अत मुखियाओ ने कहा-कि पहिले-आप इसे सजा दो। कविराजा ने कहा कि अपने मालिक दयालु हैं। हम और तुम उनकी सतान हैं। कोई पूत कपूत निकल जावे तब भी वे माफ करते हैं, उनके हुक्म से हम उसे माफ करते हैं। भील पचो ने कहा कि तो इस सिपाही को भी माफ कर दो। यह झन्डे की शांति का प्रथम शुभ दिन था। परन्तु उस दिन और क्षण की वह लाखो भीलो की प्रचण्ड किल्कारी वायु को चीरती हुई करीब एक मील से कुछ कम दूर सेना के कैम्प तक पहुची। अतिथि दोनो सैनिक अग्रेज अफसरो ने पूछा-यह हल्ला क्या है ? शिविर के रक्षको ने कहा कि सभव है भीलो ने हमला कर दिया हो। यह सुनते ही दोनो ही वीर इतने घबडाये कि कांपते हुए हाथो से जल्दी जल्दी अपने घोडो को खोल, सामान कसना भी छोडकर नगी पीठ घोडो पर चढ खैरवाडा की दिशा मे चपत हो गये। उनके दोनो घोडो की काठियाँ सामान दूसरे दिन कविराजा ने खैरवाडे पहुचा दिया और रसीद मगवा ली।

उन दोनो अग्रेजो ने खैरवाडे पहुच कर एक लबी रिपोर्ट ब्रिटिश गवर्मेंट मे भेजी कि मेवाड के आफिसर बिल्कुल बेसमझ हैं। वे हथियार छोडकर खाली हाथ दुश्मनो के बीच मे जा बैठे, उन पर भीलो ने हमला कर दिया, आदि।

इस पर गवर्मेंट की ओर से महाराणा को लिखा गया कि 'इतने अर्से तक भी मेवाड मे भीलो का बलवा नही दबा। मालूम होता है इस काम

के लिए महाराणा की शक्ति नाकाफी है। गवर्मेंट इस देरी को अपने लिये भी खतरे से खाली नहीं देखती, क्योंकि मेवाड़ से मिले हुए सरकार के गुजराती इलाके के भीलों पर भी इस बलवे का बुरा असर पड़ रहा है। इसलिए बलवा तुरन्त दबाया जाय या महाराणा गवर्मेंट से सैनिक सहायता मांगें।' महाराणा ने गवर्मेंट की उपरोक्त तहरीर को उत्तर के लिये फौजी कैम्प में कविराजा के पास भेज दी और उनके असल उत्तर को ही अपना उत्तर कहकर गवर्मेंट के पास भेज दिया जिस पर पोलिटिकल डिपार्टमेंट इस संबंध में सदा के लिये चुप हो गया। वह उत्तर यह है "महाराणा बारहसौ वर्ष से जिस शक्ति के बल द्वारा अपनी इस प्रजा पर राज्य करते आ रहे हैं वह शक्ति बल अब भी वर्तमान है। ब्रिटिश गवर्मेंट तो कल की आई हुई है, हमें उसकी मदद की कोई आवश्यकता नहीं। यह मुकाबला किसी बाहरी शत्रु से नहीं है कि जिसमें सेनाबल का प्रयोग किया जाय। महाराणा अपनी प्रजा को मारकर शांति नहीं करना चाहते। प्रजा तो पुत्र के समान शान्ति से ही समझाई जा सकती है। यदि इस विलम्ब में गवर्मेंट को अपने इलाकों का डर है तो वह अपने घर का आप प्रबन्ध करे। उसका उत्तरदायित्व इस राज्य का कदापि नहीं।"

अब सकुशल शांति स्थापन करके कविराजा उदयपुर में पहुँचे उस समय तत्कालीन ए जी जी राजपूताना भी उदयपुर में थे। महाराणा ने मय ए जी जी के शंभूनिवास महलों में दरबार करके कविराजा का स्वागत किया और खुद महाराणा ने कविराजाजी की वीरता, धीरता और कार्यकुशलता की भूरि भूरि प्रशंसा की और उसी समय कविराजाजी के पैरों में सोने के दोहरे लंगर पहिनाये जो मेवाड़ के घर में बहुत बड़ी इज्जत है। उस समय ए जी जी ने भी कविराजाजी की प्रशंसा में स्पीच दी परन्तु उसमें यह भी इशारा किया कि 'युद्ध के नियमों को न जानने के कारण सैनिक दृष्टि से कुछ गलतियां भी हुई हैं जैसे बिना शस्त्र के और बिना कैम्प का रक्षा का प्रबंध किये भीलों जैसे जंगली दुश्मनों के गिरोह में जा बैठना। भीलों ने हमला किया मगर खुदा ने आपको बचा लिया इसकी बड़ी खुशी हुई।' कविराजाजी का तेजस्वी हृदय यह आक्षेप चुपचाप कैसे सह लेता? वे तुरन्त उठे और महाराणा और ए जी जी को धन्यवाद देकर कहा कि 'मैं गवर्मेंट की कीर्ति और भलाई पर प्रसन्न होने वाला हूं इसीलिये इस चढ़ाई में एक घटना अंग्रेज जाति के लिये लज्जास्पद ऐसी हो गई कि जिससे मैं दुखी हुआ और वह यह कि मेरे शिविर में खैरवाड़ा छावनी के दो फौजी अंग्रेज आफिसर मेरे मेहमान आये, मैंने उनको

अपने सुरक्षित कैम्प में ठहराया और शान्ति के लिये शपथ लेकर आये हुए भील पचों को समझाने के लिये कुछ ही दूर गया था। वापस शिविर में आने पर मालूम हुआ कि भीलों की स्वाभाविक कठोर किलकारी सुनकर वे होश हवास खो बैठे, यहां तक कि नंगी पीठ घोड़ों पर बैठ कर तुरन्त भाग गये। मेरी आधी फौज कैंप में मौजूद थी। इनको इतना भी धय न रहा कि दस मिनिट ठहर कर वास्तविकता को सुनते। इनके घोड़ों के जीन मैंने ही खैरवाड़े पहुंचाये। उनकी इस नामर्दी का असर देखने वालों पर बहुत बुरा पड़ा क्योंकि हिन्दुस्तान पर राज्य करने वाली अंग्रेज कौम और उसमें भी फौजी अफसर यों कांपते हुए बेतहाशा भाग खड़े हों कितनी शर्म की बात है। ए० जी० जी० चुप हो गये। बाद में सुना कि उन्होंने इस तथ्य की तहकीकात की जिसके परिणाम में वे दोनों अफसर सैनिक सेवा से निकाल दिये गये।

(13) संवत् 1938 में सरकार अंग्रेजी की तरफ से महाराणा को जी सी एस आई का खिताब मिला। इसके लिये गवर्मेंट ने कहा कि महाराणा आगरा या अजमेर सरकारी जिले में आकर यह खिताब लें। परन्तु महाराणा ने बाहिर जाकर खिताब लेने से इन्कार कर दिया। तब वायसराय लार्ड रिपन ने मेवाड़ की प्राचीन राजधानी चित्तौड़ में आकर महाराणा को खिताब दिया। इस निमित्त से चित्तौड़ में बड़ा भारी जलसा हुआ जिसका सफल प्रबंध भी कविराजाजी के हाथ से हुआ।

(14) संवत 1939 में मेवाड़ के पोलिटिकल रेजिडेंट कर्नल वाल्टर ने महाराणा से अर्ज की कि रियासती कामों में मदद देने वाले तो आपको दूसरे सलाहकार भी मिल सकते हैं मगर मेवाड़ की तवारीख बनाने के लिये कविराजा श्यामलदासजी जैसा दूसरा व्यक्ति नहीं मिल सकेगा इसलिये आप कविराजा को रियासती कामों से फुरसत दे कर तवारीख बनवावें। इस पर महाराणा ने कविराजाजी को तवारीख बनाने की आज्ञा देकर फरमाया की जब कोई महत्वपूर्ण विषय होगा हम तुम से पूछ लिया करेंगे और तुम आवश्यक समझो तब आकर सलाह दे जाया करो। तब से कविराजाजी इतिहास पर दत्तचित्त हुए और महाराणा ने उनके स्थान पर सौदा बारहठ कृष्णसिंह जी (कविराजाजी के भानजे और इस लेखक के पितृ श्री) को अपना प्रधान सलाहकार बनाया जो कि कई वर्षों तक महाराणा के पूर्ण कृपा पात्र और विश्वास-भाजन रहे।

कविराजाजी के दस वर्ष के असाधारण परिश्रम से "वीर विनोद" नामक अनुपम इतिहास तैयार हुआ जिसका विशेष वृत हम आगे लिखेंगे।

(15) संवत 1941 के प्रारम्भ में मेवाड़ के रेजिडेंट कर्नल वाल्टर साहब ने कविराजाजी से कहा कि चित्तोड़ से उदयपुर तक रेल का होना आवश्यक है अतः इस तजवीज को आप महाराणा से स्वीकार करा दें। कविराजाजी ने देशकालानुसार इस प्रस्ताव को राज्य के लिये भी उपयोगी समझा और महाराणा से स्वीकार कराकर इसके लिये 22,00,000/– रुपयों की मंजूरी दिला दी और इञ्जीनियर मि० टामसन को नौकर रखकर सर्वे का काम शुरु कर दिया।

महाराणा सज्जनसिंह का स्वर्गवास हो जाने से यह रेल का काम रुक गया और बाद महाराणा फतहसिंहजी रेल बनवाने से विरुद्ध हो गये। इस विषय को लेकर महाराणा और गवर्मेंट हिंद में बरसों तक ऐंचातानी रही एवं इस हठ के कारण महाराणा फतहसिंहजी को अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पड़े। परन्तु आखिर रेल बनानी ही पड़ी। जब कविराजाजी की सलाह ली गई उन्होंने यही अर्ज की कि जिस काम को मैं पहिले उचित समझ चुका था उसे अब भी उचित समझता हूं। हुजूर की जिद अनुचित है और वह अन्त तक टिक न सकेगी वही हुआ।

(16) मेवाड़ में सार्वजनिक शिक्षा की वृद्धि के लिये कविराजाजी के हृदय में असाधारण लगन थी। अतः उन्होंने शिक्षा विभाग को भी अपने हाथ में लेकर प्रारंभिक रूप में उदयपुर में हाईस्कूल और देहात में स्कूल कायम किये। उनका संकल्प था कि वे मेवाड़ को शिक्षा के संबंध में जयपुर से भी आगे बढ़ा देंगे। यही कारण है कि सं 1937 में राज्य प्रबंध से अवकाश लेकर जब व इतिहास निर्माण में दत्तचित्त हुए तब भी शिक्षा विभाग को तो अपने ही अधिकार में रखा। महाराणा सज्जनसिंहजी भी विद्यावृद्धि के पूर्ण पक्षपाती थे। वे सुख स्वप्न देखते थे कि वह समय आवेगा जब मेरे राज्य में एक भी निरक्षर न रहेगा। यही मधुर स्वप्न कविराजाजी का था परंतु सज्जनसिंहजी का सहारा न रहने से वह स्वप्न टूट चुका। कविराजाजी का हाथ कुंठित हो गया क्योंकि महाराणा फतहसिंहजी के विचार शिक्षा के संबंध में प्रतिगामी थे। मैंने उनके मुख से अनेक बार सुना है कि आदमी जितना ज्यादा पढ़ता है उतना ही अधिक से अधिक चालाक और बेईमान बन जाता है, बेचारे मूर्ख अच्छे कि

चुपचाप आज्ञा का पालन ठीक ठीक करते हैं और अपनी तरफ से कोई प्रपंच और तिकड़मबाजी नहीं लगाते।

(17) महाराणा सज्जनसिंहजी के समय में कविराजाजी ने "सज्जन यन्त्रालय" नामक छापाखाना उदयपुर में खोला और उसमें "सज्जन-कीर्ति सुधाकर" नामक साप्ताहिक पत्र जारी किया। यह उद्योग राजपूताना में पहिला ही था।

(18) इसी प्रकार "सज्जन औषधालय" नामक हास्पिटल सर्वसाधारण के लिये कायम किया गया एवं कविराजाजी के मित्र रेवरेण्ड शेफर्ड को सहायता देकर मिशन हास्पिटल को तरक्की दी गई।

(19) संवत 1941 के कार्तिक में महाराणा सज्जनसिंह जी बीमारी की हालत में आबहवा तब्दील करने के लिये और दूसरे राजाओं से बेतकल्लुफ आत्मीय भाव का आदर्श स्थापित करने के लक्ष्य से भी जोधपुर गये और वहां करीब एक महीने ठहरे। वहां महाराणा की बीमारी बढ़ गई फिर भी वे वहीं ठहरना चाहते थे। साथ वालों ने अर्ज की कि अब उदयपुर लौट चलें, किन्तु स्वीकार न हुआ। उदयपुर में यह सूचना पहुँचने पर मेवाड़ के पोलिटिकल रेजिडेंट कर्नल वाल्टर ने कविराजाजी को कहा कि आप खुद जोधपुर जायें और महाराणा को ले आवें। वे आपके बिना और किसी की न मानेंगे। तब कविराजाजी जोधपुर गये और पौष मास के प्रथम सप्ताह में महाराणा को उदयपुर ले आये।

परन्तु महाराणा के नश्वर शरीर के साथ ही कविराजाजी के जीवन का सुख सूर्य भी अस्त होना विधि-निर्दिष्ट था। आखिर सं० 1941 पौष शु० 6 मंगलवार, मुताबिक सन् 1884 ई० ता० 23 दिसम्बर को महाराणा सज्जनसिंहजी साढ़े पच्चीस वर्ष की उम्र में दस बरस, तीन महीने नौ दिन हुकूमत करके इस असार संसार को त्याग गये। केवल मेवाड़ का ही नहीं बल्कि समस्त राजस्थान का क्षणिक चमका हुआ भविष्य फिर से उसी पुरानी धुंधली चादर के पीछे छिप गया।

यहां तक हमने महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी के प्रधान मंत्रित्व के नाते किये हुए राजकीय कार्यों का उल्लेख किया। अब यथा स्मृति उनके वैयक्तिक जीवन पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

× × × ×

महाराणा सज्जनसिंहजी और कविराजा श्यामलदासजी में जैसा परस्पर अनन्य प्रेम रहा है वैसा आज तक किसी स्वामी सेवक में न दीख पड़ा, या यों कहें कि पूर्व जन्म के बिछुड़े अनन्य प्रेमी फिर से आ मिले थे। महाराणा के व्यवहार में केवल आम दरबार के समय ही यह भान हो सकता था कि एक स्वामी है, दूसरा सेवक, नोचेत यद्यपि कविराजा का हृदय स्वामिभक्ति में सराबोर था किन्तु महाराणा का हृदय सहोदरवत् ही अनन्य मानकर अनुभव करता रहा—यहां तक कि कविराजा के परिवार को भी महाराणा ने अपना परिवार माना। यथा, कविराजा अपनी माता को 'बहूजी' कहते और अपनी ज्येष्ठा भगिनी (शृंगारबाई) को "बाई जी" कह कर माता से भी अधिक सम्मान करते। महाराणा भी जब जब कविराजाजी की हवेली पधारते तो दोनों आप्त देवियों का वैसे ही "बहूजी" और "बाईजी" कह कर सम्मान करते। कई बार हंसते हुए कहा कि 'बाईजी! आप इतनी बुद्धिमती हैं कि यदि आप पुरुष होती तो मेवाड़ का प्रधानमन्त्री आप ही होती सांवलजी तो आपके असिस्टेंट ही रहते। महाराणा सज्जनसिंहजी शुरू से ही कविराजा को प्रेमवश 'सांवलजी' कह कर ही पुकारते और महाराणा फतहसिंहजी "कविराजजी" कहते थे। महाराणा सज्जनसिंहजी कविराजाजी के सब चाकर छोकरियों को पहिचानते और नाम ले लेकर पुकारते। घर में रहते क्षण काई भी नहीं कह सकता था कि ये हिंदुआ सूर्य मेदपाटेश्वर हैं। कभी कहते, 'बाईजी! आपने तो कभी फौज की त्रिकटि (नकली युद्ध) नहीं देखी होगी। नहीं, का उत्तर मिलने पर दूसरे ही दिन श्यामलबाग के पास चौगान में वही सेना सचालन हो रहा है।

एक बार हाथियों पर सवार होकर जगदीश के चौक तक महाराणा पधारे और वहां फरमाया कि 'सांवलजी! तुम और दूसरे सरदार सीधे बाजार में कोतवाली (घंटाघर) को जाओ, हम धाणेराव की घाटी के रास्ते से पहुंचेंगे देखें कौन पहिले पहुंचता है? कविराजा की हवेली धाणेराव की घाटी पर ही है। महाराणा सीधे हवेली पहुंचे। हाथी से उतरकर हाथी को हवेली के सामने के घर के पीछे ढूंढे में छिपा दिया और आप चुपके से एक अंधेरी नाल में होते हुए गोयाण की हवेली (यह मकान भी उस समय कविराजाजी के उपभोग में था) की छत पर चले गये और दरवाजे के पहिरेवाला को हुक्म दे गये कि कविराजाजी आवें तो कुछ मत कहना। कविराजाजी ने कोतवाली पहुंच कर देखा कि दरबार नहीं पधारे। वे तुरन्त समझ गये कि मेरी हवेली पधार गये हैं। अपनी हथनी को दौड़ाकर हवेली पहुंच सिपाही को पूछा। वह कविराजा के प्रभाव में कांपने लगा परन्तु मुंह से कुछ न कहकर उस तहखाने का जीने वाली अंधेरी ओवरी (कोठरी) जो पीछे "भाणेजजी (मेरे पितृश्री)

की ग्रोवरी" कहलाने लगी-की ओर हाथ कर दिया। कविराजा उधर ही दौडते हुए छत पर पहुंचे। देखा, स्वामी विराजे हुए हस रहे है। उस छत पर लौंडियो के साडी घाघरे सूख रहे थे। कविराजा उनको बटोरते हुए कह रहे थे। इन्हें सुखाने को यह जगह ही मिली है। महाराणा ने कहा—नाराज न हो, बिचारी घर छोडकर कहां सुखाती। व थोडा ही जानती थी कि मैं यहा आ बैठू गा। फिर दोनो हसते हुए हाथियो पर सवार होकर कोतवाली का चक्कर लगाकर महलो पहुचे।

एक बार महलो म जो 'कविराजाजी की ग्रोवरी" कहलाती है वही ग्रीष्म के मध्याह्न म कविराजा अपने सैक्रेटरी दशोरा ब्राह्मण दुर्लभराम की जघा पर सिर रखकर निद्रा मे सो रहे थे और दुलभराम पखी से हवा कर रहे थे। महाराणा सुख महलो मे बिराजते थे। महाराणा को एक पुस्तक की आवश्यकता हुई जो महलो के ऊपरी भाग मे "सरस्वती भण्डार" मे थी और सरस्वती भण्डार की चाबी कविराजा के आधीन रहती थी। जहां मेदपाटेश्वर की आज्ञा से हजारो पैर दौडने को खडे रहते हैं वहा प्रेम वश स्वयं महाराणा उस धूप मे एक पुस्तक निकलवाने के लिये प्रेमी की ग्रोवरी पर पहुचते हैं, देखते है, कविराजा सोये हुए हैं। हिंदुआसूर्य को देखते ही दुर्लभराम घबराये किन्तु तुरन्त हाथ का इशारा हुआ कि खबरदार! कविराजा जगने न पावें। फिर चुपके से कहा कि अमुक पुस्तक निकाल लाओ। परन्तु दुर्लभराम की जघा पर कविराजा का सिर था अत आपने धीरे से सिर उठाकर अपनी जघा पर ले लिया और पखी लेकर हवा करने लगे। दुर्लभराम ऊपर के महलो म गये। इधर कहा दुलभराम की दुबली पतली जघा और कहा महाराणा की हृष्ट पुष्ट ऊची जघा। पखी की हवा के झोंक म भी बल कुछ दूसरा ही था। कविराजाजी की आख खुल गई, देखा स्वामी सेवा कर रहे हैं। घबडा कर उठ बैठे और कहा—कहा गया वह नालायक, मुझ जगाया तक नहीं। महाराणा ने कहा नाराज न होइय, वह मरी आज्ञा पर गया है।

एसी छोटी मोटी अनेक घटनाये है जो नवयुवक फिर भी गभीर, असाधारण तजस्वी और स्वाभिमानी नपचूडामणि महाराणा के उछलते हुए प्रेम और प्रौढ सेवक कविराजा की अगाध स्वामी भक्ति की असाधारणता को प्रकट करती है। ये ही व्यवहार असदिग्ध रूप म सिद्ध करत हैं कि महाराणा सज्जनसिहजी के यशस्वी राज्यकाल म मेवाड ने जो आधुनिक सुधारो की दुदुभि पर पहिला डका दिया उसम नवीन भाव और व्यवस्था का उद्गम था–

कविराजा का हृदय और उद्घोषणा थी गुणग्राही स्वामी की आशायें। शब्द और अर्थ के समान ये दो नहीं, एक ही थे।

स्वामी के अनन्य भक्त कविराजा के गंभीर हृदयसिंधु को भी प्रेमोद्रेक की दशा में उछलते और बहते भी मैंने देखा है, दो बार–

जब कई पीढ़ियों के बाद सं० 1939 में महाराणा सज्जनसिंहजी के महाराजकुमार का जन्म हुआ तो उसकी त्वरित बधाई को पूर्व व्यवस्था के अनुसार प्रात: तोपों के फायर (Fire) हुए। उस समय कविराजा अपनी हवेली के दरवाजे में तख्ते पर नंगे सिर बैठे हुए थे। तोप की पहली आवाज पर ही जैसे बैठे थे वैसे ही, "पगड़ी ला, पगड़ी ला" कहते हुए नंगे सिर महलों की ओर दौड़ पड़े। घड़ी की हुई पगड़ी नौकर के हाथ में है, उसका एक सिरा कविराजा के हाथ में है और अटपट लपेटे जाते हैं आगे जाते हैं। रास्ते में एक ने बधाई दी— 'महाराजकुमार हुए'। हाथ का सोने का कड़ा निकाल कर उसकी ओर फेंक दिया। महलों में घुसते ही उन्यमालजी पालेरी ने बधाई दी तो गले का सोने का गोप और कानों का मोती चोकड़ा उसे खोल दिया और आनन्दविभोर दशा में महाराणा के सामने जा खड़े हुए। एक गंभीर प्रभावपूर्ण प्रधानमंत्री का बालकवत कैसा हर्षातिरेक! महाराणा को भी परमहर्ष था, कहा–सांवल जी! एकलिंगजी (महाराणाओं के इष्टदेव शिव) ने हमको पुत्र दिया, तुम्हारे पुत्र नहीं है हम चाहते हैं तुम भी पुत्र के पिता कहलाओ। अतः जिस लड़के को गोद लेना हो उसे अभी बुलाओ। कविराजा ने अपने स्व० छोटे भाई गोपालसिंहजी के बालक के लिए कहा और वह तुरन्त हवेली से लाया गया। महाराणा ने उसके पैरों में सोने का दोहरा लंगर पहिना कर उसे उठाया और कविराजाजी की गोदी में रखकर कहा इसका नाम हम यशकरण रखते हैं।

दुःख है कि वह महाराजकुमार उसी दिन सायंकाल को संसार की झांकी भी न करके चल दिये और कविराजा की भरी हुई गोदि भी अंत में कुपुत्रता के नाम से परिगणित हुई।

ऊपर हमने जो कुछ बताया वह प्रेमोद्रेक था–हर्षातिरेक में। किन्तु दूसरी बार देखा विषाद की अतिमात्रा में, अर्थात् सं० 1941 में महाराणा सज्जनसिंहजी की अंतिम बीमारी ज्यों ज्यों बढ़ती गई वह साथ ही साथ कविराजा को भी अधमृत-सा करती गई। महाराणा की दशा असाध्यता तक पहुंचने पर कविराजा भी राजमहलों की अपनी ओवरी में अनशन से जीवनी–शक्ति को क्षीण करते हुए पड़े हुए थे। इधर महाराणा अंतिम मूर्छा में थे उधर कविराजा

विषादजन्य मूर्छा मे थे। महाराणा सज्जनसिंहजी के स्वर्गवास[1] से लगा आघात उनके हृदय के लिये कितना असह्य और भयकर था उसे हम क्या स्वय कविराजाजी भी शब्दो म न बता सके, कविराजाजी ने अपना जीवन–सुख चौपट कर दिया उसी पर से कुछ अनुमान पाठक लगा सकते हैं। महाराणा सज्जनसिंहजी उस मूर्छा से न उठे। किन्तु विषाद की मूर्छा कब तक ठहरती? कविराजा आखिर उठे परन्तु उनके आनन्द और ओजपूर्ण जीवन की ज्योति सदा के लिये मूर्छित हो गई। रग की पगडी बाधना और मद्य–मास का सेवन सदा के लिये परित्यक्त हुआ।

इसी स 1941 मे कविराजाजी की माता एजनबाई अपनी ज्येष्ठ पुत्री शृगारबाई आदि के साथ तीर्थयात्रा को गई। प्रयाग काशी, अयोध्या, गया आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए बीमार हुई और कार्तिक कृष्णा 5 को 71 वर्ष की आयु पाकर मथुरा मे पचत्व को प्राप्त हुई।

कविराजा श्यामलदासजी की कीर्ति को अमर करने वाले मेवाड के बृहत् इतिहास ग्रथ "वीरविनोद" की बुनियाद तो महाराणा शभूसिंहजी के समय मे ही लग गयी थी, परन्तु महाराणा सज्जनसिंहजी की शासन प्रतिष्ठा का भार कविराजा पर आ जाने से इस ग्रथ का कार्य रुका रहा। हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं कि स० 1939 मे पोलिटिकल रेजिडेंट मेवाड, कर्नल वाल्टर न महाराणा सज्जनसिंहजी से सिफारिश की कि कविराजाजी का 'वीरविनोद' निर्माण के असाधारण काय की पूर्ति के लिये अवकाश दिया जाये। कविराजाजी ने थोडे ही समय मे मेवाड के शासन को देशकालानुसार नवीन सुसगठन म डाल कर और गवर्मेंट हिन्द क साथ मैत्री को भी दृढ करन म जो अपनी अनुपम प्रतिभा का परिचय दिया इससे गवर्मेंट का पोलिटिकल विभाग मन ही मन तो मुग्ध था।

कविराजाजी की योग्यता और कर्मकुशलता से प्रसन्न होकर गवर्मेंट हिन्द ने सवत 1935 म उनको "कैसरे हिन्द" का तमगा इनायत किया। तब मेवाड के रेजिडेन्ट कर्नल इम्पी (Impey) न रेजीडेसी म दरबार कर वह तमगा कविराजाजी को अर्पण करते हुए कहा था कि आपने महाराणा साहब को समय समय पर बहुत उत्तम सलाह दी है और राज्य को उन्नति की ओर अग्रसर करने मे प्रबध–पटुता पूर्वक परिश्रम उठाया है जिसस प्रसन्न होकर गवर्मेंट हिन्द आपको यह तमगा देती है।

---

1 महाराणा सज्जनसिंहजी का स्वर्गवास दि० 23 दिसम्बर सन् 1884 को हुआ।

परन्तु महाराणा शम्भूसिंहजी एवं सज्जनसिंहजी की नाबालगी में सर्वेसर्वा रहकर मनमानी घरजानी करने का मजा उठाने वालों को कविराजाजी के समय चंचु प्रवेश करने की सुविधा न रहने से वह मजा न रहा। अतः इस तरह एक ढेले में दो लक्ष्य साधने में चतुर अंग्रेज जाति अपनी नीति को जरजरी का लोटन बना लेने में दक्षहस्त होने से इस खूबी के साथ कविराजाजी का ध्यान दूसरी ओर बटाने में सफल हुई। मिस्र वाल्टर साहब ने वही काम किया जो एक अंग्रेज मित्र कर सकता है। परन्तु महाराणा सज्जनसिंहजी और कविराजा श्यामल-दासजी में अन्तरा डालने वाला एक ईश्वर का ही समय हाथ अमोघ हो सकता था, मनुष्य का नहीं। अतः महाराणा सज्जनसिंहजी के स्वर्गवास हो जाने पर ही राजसंन्यासी कविराजाजी ने अपना पूर्ण ध्यान और समय "वीर विनोद" के निर्माण में लगाया।

आधुनिक शास्त्रीय पद्धति से इतिहास को प्रमाणीभूत बनाने में जिन जिन साधनों की आवश्यकता होती है वे सब जुटाये गये। देश का कौना-कौना छान कर प्राचीन प्रशस्तियाँ, सिक्के, ताम्रपत्र, पट्टे परवाने, भाट एवं जागाओं की बहियाँ, प्रकाशित अंग्रेजी फारसी, अरबी, हिन्दी, संस्कृत ग्रंथ और अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रंथों का पता लगा कर उन्हें खरीदा गया उनकी प्रतिलिपियाँ, कराई गई, किंवदंतियों को भी संग्रहित किया, लुप्तप्राय विध्वस्त खण्डहरों की खुदाई होकर आदि तथा मध्ययुग पर प्रकाश डालने वाली हिंदू, बौद्ध, जैन आदि देवों की खंडित मूर्तियों का संग्रहालय बनाया गया इस संकलन कार्य के प्रति-फल में आज भी उदयपुर का इतिहास-संग्रहालय समस्त राजपूताने में प्रधान माना जाता है। उपरोक्त ठोस बुनियाद के ऊपर ही 'वीरविनोद' का रम्य भवन रचा गया। इतिहास कार्यालय कविराजा के निजी बाग (श्यामल बाग) में स्थापित हुआ। कविराजाजी स्वयं सपरिवार उस बाग में ही रहते और जब उदयपुर शहर की हवेली में रहना होता तो नित्य भोजन करके दिन के नौ बजे बाग में चले जाते और सायंकाल को हवेली लौटते। इतिहास कार्यालय में हिंदी संस्कृत अंग्रेजी उर्दू फारसी, अरबी आदि भिन्न भिन्न भाषाओं के विद्वान वेतनभोगी थे। वे कविराजाजी को अपनी अपनी भाषा के ग्रंथ सुनाते रहते। उत्कीर्ण लेख पढ़ने के लिए गोविंद गंगाधर दशपांडे ब्रिटिश गवर्मेंट की ओर से नियुक्त हुए जो शिलालेख-ताम्रपत्रादि पढ़ने में सहायता करते। कविराजाजी की स्मरण शक्ति इतनी तीव्र थी कि एक बार सुन लेने पर कभी नहीं भूलते भूल जाने वाले पंडितों को बताते कि यह बात इस तरह अमुक ग्रंथ के अमुक प्रकरण में है। सब सुन कर अपना इतिहास 'वीरविनोद' स्वयं लिखाते थे।

अंग्रेजी विभाग के लिये प्रथम, हाई स्कूल उदयपुर के सैकण्ड मास्टर के पुत्र रामप्रसादजी बी० ए० रखे गये थे। ये बहुत ही सुयोग्य, प्रतिभाशाली विद्वान थे। वे कविराजाजी ही की सिफारिश से मेयो कालेज में सैकण्ड मास्टर बन कर अजमेर गये। उसके बाद जबकि "वीरविनोद" लगभग समाप्त होने पर था, स० 1944 में प० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा सामान्य वेतन से रामप्रसादजी के स्थान पर नियत किये गये। यद्यपि यह वैसे विद्वान न थे फिर भी ऐतिहासिक शिक्षा प्राप्त करने की पूरी लगन वाले थे, अत कविराजा सा० इनसे प्रस न थे। यही कारण है कि "वीरविनोद" ग्रंथ तैयार होकर छपने के लिये उदयपुर के सज्जन यंत्रालय में गया तब कविराजा सा० ने इनको अपने आधीन 'विक्टोरिया हाल" में जो पब्लिक लाइब्रेरी और ऐतिहासिक म्यूजियम के रूप में है, उसका लाइब्रेरियन एवं मैनेजर बना दिया और महाराणा फतहसिंहजी से अर्ज करके उत्तरोत्तर तरक्की देते रहे। यद्यपि महाराणा गौरीशंकरजी को "बड्या" (पागल) कहा करते थे परन्तु कविराजाजी की गुणग्राहकता को नहीं टाल सकते थे। संक्षेप म, प० गौरीशंकरजी के भाग्य का कविराजाजी ने ही निर्माण किया। कविराजाजी से प्राप्त की हुई कृपा, शिक्षा, सुविधा और सामग्री से इन्होंने पर्याप्त लाभ उठाया और प्रसिद्धि पाई और आखिर कविराजाजी की सिफारिशों के परिणाम में ही लार्ड मिंटो के जमाने में स० 1964 म ये क्यूरेटर होकर अजमेर पहुँचे।

कविराजा सा० के अधीनस्थ सज्जन यंत्रालय प्रेस में "वीर विनोद" छपता था। प्रूफ तैय्यार होने पर मैं उसे महाराणा फतहसिंहजी के नजर करता, वे स्वयं पढ़ते। अंत में मेरे हाथ से स्वीकृति लिखी जाने पर वह छपने के लिए चला जाता। इस प्रकार महाराणा फतहसिंह जी ने इसे आद्योपान्त पढ़ा। किन्तु अपनी ओर से कुछ परिवर्तन न किया। सत्य और प्रमाणसिद्ध ग्रंथ में अंगुली रखने भी तो कहा? 'वीरविनोद" की ग्यारहसौ प्रतियें छपती थी। महक्माखास के हुक्म मुताबिक उनमें से एक हजार प्रति राज्य की थी और एक सौ प्रतियां कविराजा साहब के निज के लिये ताकि वे अपने मित्रादिकों को यथेच्छ दे सकें। इन प्राइवेट निजी प्रतियों म से तीन प्रतियां कविराजा के हाथ से ही बाहिर जा चुकी थी अर्थात् ज्योंही फर्मा छप कर तैय्यार हुआ त्यांही उसकी एक प्रति मेरे पितु श्री को मिल जाती और दूसरी मास्टर रामप्रसादजी बी ए को। रामप्रसादजी थोड़े ही समय बाद अजमेर म गुजर गये और उनके पास पहुँचा हुआ "वीरविनोद" का हिस्सा आखिर बनारस को नागरी प्रचारिणी सभा के हाथ लगा और सुरक्षित हो गया। तीसरी प्रति प० गौरीशंकर जी ओझा को मिलने

लगी। कविराजा के बीमार हो जाने के बाद जो जो प्रकरण ओझाजी को न मिले उनका इन्होंने मेरे यहां की प्रति से लिखकर पूर्ण कर लिया। कविराजा सा का संकल्प था कि "वीरविनोद" छपकर वितरित हो जाने के बाद संयास ले लेंगे। किन्तु ईश्वर की इच्छा दूसरी ही थी। वे सं० 1949 आषाढ शु० 11 के दिन सहसा पक्षाघात रोग के प्रबल आक्रमण में आ गये और प्रायः डेढ़ दो वर्ष वही दशा रही। इस समय का लाभ लेकर कविराजा के विरोधी प्रपंचियों ने फिर से वही षडयंत्र चलाया कि "वीरविनोद" छपकर तय्यार होने ही वाला है, खाली भूमिका और टाइटल पेज आदि सामान्य बातें शेष हैं। ग्रंथ की प्रसिद्धि विलायत तक हो चुकी, अमेरिका और जर्मनी तक के विद्वान मांग रहे हैं। ऐसे ग्रंथ की समाप्ति पर श्री जोहुजूर को बहुत बड़ी उदारता दिखा कर कविराजाजी को पुरस्कार देना ही पड़ेगा। यह ग्रंथ राज्य का इतिहास है। भिन्न भिन्न उमरावों के भिन्न भिन्न पुश्तैनी अधिकार एवं मान-सम्मान आदि की इसमें पुष्टि है। ये प्रमाण ही राज्य की यथेच्छ नीति को कुंठित कर देंगे, आदि आदि। ऊंघते को बिछौने के समान, लोभी, एवं अपने उमरावों को अपंग बनाने वाले महाराणा को उपरोक्त अर्ज का पिछला भाग पसंद आया और तुरन्त आज्ञा दी कि सज्जन यंत्रालय में से "वीरविनोद" की कुल प्रतियां-यहां तक कि उसके प्रूफों की रद्दी तक उठा कर महलों में लाई जायं और ताले में बंद हों, चाबी खुद हमारे पास रहेगी। आज्ञा का पालन हुआ और "वीरविनोद" ग्रंथ जीवित समाधि में चला गया। यदि ये तीन प्रतियां न निकल गई होतीं तो अवश्य ही वह पिछोला तालाब के जल में अपना कलेवर मिला सदा के लिये विलीन हो जाता। "वीरविनोद" की इस समाधि का लाभ रूपान्तर देकर किसी ने उठाया है तो वे प० गौरीशंकर हीराचंद ओझाजी हैं। इसमें हम उनका दोष नहीं पाते क्योंकि वीरविनोद कविराजाजी की कृपा से उन्हें प्राप्त हो गया था फिर भी अब, जबकि वर्तमान उदारचेता महाराणा भूपालसिंहजी ने वीरविनोद को 60/- रुपये की न्योछावर पर फिर से अनुप्राणित और स्वतंत्र कर दिया है, पं गौरीशंकरजी को भी अपने गुरु उपकारी एवं परोक्ष रूप से समृद्धिदाता कविराजाजी के चरणों में श्रद्धांजली चढ़ाने में हिचक नहीं होनी चाहिये, क्योंकि उनका सरल हृदय और प्रतिष्ठित पांडित्य स्वयं जानता है कि 'कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः'।

वीरविनोद' के अतिरिक्त कविराजाजी ने ऐतिहासिक गहरी छानबीन करके दो पुस्तिकायें और लिखी थीं—"पृथ्वीराज रासो की नवीनता' और 'अकबर के जन्मदिन में संदेह'। ये दोनों ही पुस्तिकायें रायल एशियाटिक

सोसायटी बगाल व बवई आदि प्रसिद्ध सस्थाओ से समादृत हुई । "पृथ्वीराज रासो की नवीनता को लेकर प० मोहनलाल विष्णुलाल पडया ने, जो कविराजा की कृपा से ही उदयपुर मे महद्राज सभा के सैक्रेट्री के पद पर पहुचे थे केवल स्वाथ-साधन के लिय प्रपच किया । उन्होने बेदले रावजी तख्तसिहजी को समझाया कि आप चहुआए हैं और चहुवाण जाति का गौरव महाराज पथ्वीराज के नाम से है । खास कर आप तो महाराज पथ्वीराज ही के उत्तराधिकारी वश मे हैं । यदि "रासो की कथा झूठ सिद्ध हो जाय तो स्वय महाराजा पथ्वीराज का अस्तित्व ही अन्धकार मे चला जायगा । रासो से ही उनकी कीर्ति है और कविराजाजी ने रासो को प्रमाणो से कल्पित ठहरा दिया । यदि आप रुपये खच करें तो मैं कविराजाजी के लेख का खण्डन करके रासो की सत्यता प्रमाणित करदू । बेदले रावजी इस चक्मे म आ गये और पाच हजार रुपये प मोहनलालजी पडया को दे दिये । पडयाजी के पास रासो की एक पुरानी पोथी थी जिस पर लिखा था 'भाखा रासा' 'प' को 'ख उच्चारण की ओर लिखने की पुरानी पद्धति के अनुसार उसे "भीखारासा" नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ मानकर उसी क यत्र तत्र उदाहरणो द्वारा स 1944 म 'पथ्वीराज रासो की प्रथम सरक्षा" नामक एक पुस्तक लिखी और उसे बगाल रायल एशियाटिक सोसाइटी मे भेजा । किन्तु उसको यह कह कर सोसाइटी स वापस कर दी गई कि इसमे तथ्य नही है । फिर भी उन रुपयो को पचाने के लिये अपनी उसी पुस्तक के अश ट्रैक्ट रूप मे छपा छपाकर बांटत रहे । आखिर सब भेद खुल गया और पडयाजी ने कविराजाजी से क्षमा मागी । कविराजाजी न कहा-यदि कोई मुझे गालिया देकर भी अपनी पेट भराई करे तो मुझे बुरा नही लगता । मेरी हानि तो न हुई और न तुम कर ही सकत क्योंकि मरा वह लेख न किसी स्वाथ से था, न द्वेष से । तुमन बेदले रावजी स रुपये ठगे हैं अत उ ही से माफी मागो । तुम्हारे चेष्टा करने पर भी मेरी और बेदले रावजी की मत्री और स्नेह म कोई अन्तर नहीं आया ।

× × × ×

एजेन्ट गवनर जनरल राजपूताना, कनल वाल्टर ने अपनी यह राय सब रईसो के सामने रखी कि अजमर मेयोकॉलेज मे राजपूताना के रईस व उमराव सरदार जो पढाये जाते हैं उनको जो हिस्ट्री (तवारीख) पढाई जाती है वह दूसरे-दूसरे मुल्क व जिलो की है और ये छात्र अपने घर के इतिहास स अनभिज्ञ ही रहते हैं यह ठीक नही । इसलिये राजपूताना की एक एसी तवारीख बनाई जावे जिसमे राजपूताना की कुल रियासतो का सक्षेप मे ऐतिहासिक वृत आ जाये । वही इतिहास मेयो कॉलेज और हर एक रियासत के मदरसा म पढाया

जाया करे। इस सम्मति को सब राजाओं ने स्वीकार की और इसके लिये अनुभवी इतिहासवेत्ता तजवीज करने का भार कर्नल वाल्टर पर ही छोड़ा गया। कर्नल वाल्टर साहब ने इसके लिए सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति कविराजा श्यामलदासजी को ही चुना और महाराणा फतहसिंहजी की स्वीकृति लेकर खुद वाल्टर सा० ने कविराजा को कहा। परन्तु कविराजा ने जवाब दे दिया कि मैं "वीरविनोद" नामक वृहत इतिहास बना रहा हूं अतः मुझे इतनी फुरसत नहीं। लेकिन मेरे इतिहास महकमे में एक व्यक्ति मौलवी मुहम्मद उबेदुल्ला फरहती को यह काम दे देता हूं और मैं मदद देकर उसे दुरुस्त करवाता रहूंगा। तब मौलवी मुहम्मद उबेदुल्ला फरहती ने, जो कविराजाजी को अरबी और फारसी की तवारीख सुनाया करते थे, कविराजाजी की मदद से "तवारीख तुहफे राजस्थान" नामक पुस्तक लिखी और वह उदयपुर के मुद्रणयन्त्रालय में छपवा दी गई और बिक्री का हुक्म हो गया। कुछ किताबें बिक भी गई। बाद में कुछ लोगों ने महाराणा से अर्ज की कि इस किताब में उदयपुर के संबंध में बेजा लिखा गया है। इस पर महाराणा ने किताब का बिकना बंद करके मौलवी मुहम्मद उबेदुल्ला फरहती से जवाब तलब किया कि तुमने रियासतों के सिलसिले में शाहपुरा को रियासत मानकर उसका हाल क्यों लिखा? शाहपुरा मेवाड़ का मातहत है। लिखना ही था तो हमारे दूसरे उमरावों का हाल क्यों नहीं लिखा? इसका उत्तर मौल्वी मुहम्मद उबेदुल्ला फरहती ने इस प्रकार दिया कि मेवाड़ के दूसरे उमरावों के ठिकाने महाराणा के दिये हुए हैं और शाहपुरा ठिकाना दिल्ली के बादशाह की तरफ से दिया हुआ है और उसका एक परगना फूलिया अंग्रेज सरकार की मातहती में मौजूद है इसलिए उसका हाल लिखना जरूरी हुआ। महाराणा ने कविराजाजी से भी उस किताब के संबंध में पूछा तो कविराजाजी ने अर्ज की कि इतिहास की दृष्टि से उसमें कोई दोष नहीं। कर्नल वाल्टर ने भी महाराणा को खूब समझाया मगर एक भी बात महाराणा के गले न उतरी और उन्होंने 'तवारीख तुहफे राजस्थान' की जितनी जिल्दें छपी थी उनको बटारकर एक मकान में बंद करके दाखिल दफ्तर करवा दी। मेरे पितृ श्री बारहठ कृष्णसिंहजी ने भी अर्ज की कि मैंने भी इस किताब को अच्छी तरह से देखी है। लिखने वाला मुसलमान होने से चंद फिक्रे तआस्सुब से लिख दिये हैं वे निकाल दिये जा सकते हैं। मगर इस तवारीख को ही नेस्त नाबूद कर देना हुजूर की नाहक जिद है। वह 'तवारीख तुहफे राजस्थान' आज भी किसी बंद कोठरी में पड़ी सड़ रहा है।

महाराणा स्वरूपसिहजी एक लोभी और क्रूर शासक थे। किसी का यश एव स्वाभिमान उनके लिये अप्रिय था। उनके समय मे महियारिया चारण चतरजी अपने असाधारण शारीरिक बल से प्रसिद्ध हो रहे थे। महाराणा के दरबार म बैठे हुए सिलहट की ढाल को दोनो हाथो की चुटकी मे लेकर चीर देना आदि बहुत से शारीरिक शक्ति के अपूव प्रदशन दिखा चुके थे। इस बल के जोश मे वे जबान के भी मु हफट थे दबते किसी से नही। इन बातो से महाराणा अप्रस न थे। इत्तिफाक से चतरजी के हाथ से सदेह मे दो तीन खून हो गये। महाराणा स्वरूपसिहजी ने उन्हें पकडवाकर आजीवन कारावास की सजा देकर दण्ड भोगने के लिये गवर्मेंट को सौंप दिया, क्योंकि वह बला उदयपुर की जेल म अधिक टिक सकने वाली नही थी। अत चतरजी चुनारगढ (यू पी) मे पहुँचा दिये गये। बाद मे जब महाराणा सज्जनसिहजी का समय आया, कविराजाजी ने अज की कि महाराणा स्वरूपसिहजी ने महियारिया चतरजी का ठिकाना भी जब्त कर लिया और आजीवन कारावास का दड दकर चुनार भेज दिया। व बरसो से कद भोगत हुए बुडढे हो गये हैं, हुजूर के समय म एक चारण कैद म पडा हुआ सडता रहे यह विचारने योग्य है। फौरन ही चतरजी की कारामुक्ति का आदेश गवर्मेंट मे भेज दिया गया और वे छूटकर उदयपुर आ गये। लेखक ने उनका देखा है लबा कद बुढापे म भी लोह के दड सदश्य कठोर और माटी हड्डिया लाल आखो से खिरता हुई वीर रस की अग्नि एक विचित्र भैरवीमूर्ति थी। दरबार मे सलाम हुई। चतरजी ने अज की कि अब यहा चित्त नही लगता, व दाबन वास करू गा। एक रुपया रोज आजीवन कर दिया गया और व अपने मुक्तिदाता कविराजा के चरण स्पश करके व दावन चले गय।

इसी प्रकार उक्त महाराणा स्वरूपसिहजी ने चाढियो से स्वामिभक्त और सम्मानित एक मेहता (बडर) परिवार को "हरामखोर" कह कर मेवाड स देश निकासन दे दिया था। उस परिवार को भी कविराजा श्यामलदासजी ने महाराणा सज्जनसिहजी से अज करके फिर से उदयपुरवासी बनाया और उसके तीनो भाइयो – महता अक्षयसिहजी उम्रसिहजी और केसरीसिहजी का बडी बडी हुकूमतो पर हाकिम बना कर भेजे। आज उन्ही की सतान महता जीवनसिहजी जसवतसिहजी और उनके सुपुत्र मेवाड के शासन में महत्वपूर्ण भाग ले रहे हैं। कु तेजसिहजी मिनिस्टर हैं और उनसे छोटे कु डाक्टर मोहनसिहजी 'बार एट ला, भारतीय विद्वानों से सम्मानित एव भगवती सरस्वती का वरद पुत्र होकर उदयपुर के नाम को अधिक उज्जवल करने वाली

"विद्याभवन" जैसी विशाल और नवजीवन से अनुप्राणित शिक्षण संस्था की स्थापना एवं व्यवस्था पर अपने अनुपम त्याग से अमर प्राण-रूप बन रहे हैं। विभिन्न राज्यों के दीवान पद पर होते हुए भी अपना जीवन ध्येय विद्याभवन ही को बना रखा है। कविराजाजी की गुणग्राहकता और कृपा का डाला हुआ वह अंकुर आज लहलहा विशाल वृक्ष के रूप में लहरा रहा है। यहां मुझे कविराजा बांकीदासजी आशिया का वह दोहा जो अपने पोषक रायपुर ठाकुर अर्जुनसिंहजी ऊदावत को सुनाया गया था, याद आता है—

माली ग्रीसम मांहि-पोख सुजल द्रुम पालियो ।
जिण रो जस किम जाय अति घण वूठां ही अजा ।।

अर्थात् हे ठाकुर अर्जुनसिंह ! माली ने उस ग्रीष्म की प्रचंड आंच में लूओं से बचाते हुए सुजल से सींच सींच कर कठिनता से जिस वृक्ष का पालन किया है वह वृक्ष उस माली के उपकार को कैसे भूल सकता है— चाहे आज वर्षा ऋतु के मेघ उमड़ घुमड़ कर मूसलाधार ही बरस क्यों न रहे हों।

जाति हितैषी और गुणग्राही कविराजा ने महाराणा सज्जनसिंहजी के दरबार को अपनी विद्वता और वाक्पटुता के विलक्षण गुण से अलंकृत और आनन्दपूर्ण करने वाले - हास्य रस की मूर्ति उज्जवल शाखा के चारण फतहकरणजी जैसे सुरभित सुमन का चयन किया। संदेह नहीं कि फतहकरणजी की प्रतिभा राजनीति के शुष्क और कंटीले पथ को छोड़ संस्कृत भाषा के गम्भीर तल में दर्शन, साहित्य, ज्योतिष आदि दुर्लभ रत्नों के अन्वेषण में ही अनुप्राणित हुई और वे चारण जाति में एक उज्जवल रत्न सिद्ध हुए।

× × × ×

भारतवर्ष की जागृति के जन्मदाता सुविख्यात स्वामी दयानन्द सरस्वती शास्त्रार्थ में दिग्विजय करते हुए सं. 1939 के श्रावण मास में उदयपुर पहुँचे। प्रत्येक विद्वान का प्रथम सम्मान करने वाले कविराजाजी स्वामीजी के नाम से पहिले से परिचित थे और उनकी अनुपम विद्वता और प्रतिभा पर मुग्ध थे। अतः उन्होंने स्वामीजी को सादर सज्जन निवास बाग में नवलखा प्रासाद में ठहराया और महाराणा सज्जनसिंहजी से भेंट कराई। महाराणा सज्जनसिंहजी ने भी ऋषिमूर्ति स्वामीजी के उपदेशों से प्रभावित हो पं. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या को लिखन पठन का कार्य करने के लिये उनकी सेवा में नियुक्त किया और सात मास उनको उदयपुर में रखा। लेखक के पितृ श्री बारहठ कृष्णसिंहजी को अपना सहपाठी रखकर महाराणा स्वामीजी से मनुस्मृति पढ़ते थे।

उन्ही दिनो महाराणा के सभापतित्व मे परोपकारिणी सभा [1] की स्थापना की गई। यद्यपि कविराजाजी राज्य काय मे व्यस्त थे तो भी समय समय पर स्वामीजी से मिलते रहते थे। कविराजाजी की सत्यप्रियता और निःशकता पर स्वामीजी मुग्ध थे। एक दिन स्वामीजी ने कहा कविराजाजी! हम तुम्हारी चारण पाठशाला के छात्रो को भोजन करावेंगे। कविराजाजी चारण छात्रो को लेकर नवलखा गये और स्वामीजी के समक्ष सब छात्रों ने भोजन किया जिनमें इन पक्तियो का लेखक भी एक था और उस भव्य मूर्ति के दर्शन कर कृतकृत्य हुआ था। स्वामीजी की उस घन-गर्जन सदृश गम्भीर ध्वनि के ये शब्द आज भी मेरी स्मृतियो मे एक निधि है कि "बच्चा! तुम जन्म से तो चारण हो परन्तु खूब विद्याध्ययन करके सच्चे चारण बनना।

एक दिन स्वामीजी जब नवलखा के अगले कमरे म बैठे थे महाराणा सज्जनसिंहजी, कविराजा श्यामलदासजी तथा मेरे पूज्य पितृ श्री बारहठ कृष्णसिंहजी उनके दर्शन के लिये गये। बातें करते करते स्वामीजी ने मासाहार के दोष बताये। कविराजाजी ने इस पर आपत्ति उठाई और कहा कि मास खाने से मनुष्य के शरीर में शक्ति आती है। स्वामीजी ने कहा, मास की अपेक्षा दूध अधिक शक्ति देता है मैंने सारी आयु मास के कभी हाथ नही लगाया और चाहे अब मेरी आयु कविराजाजी से बडी है तो भी यदि आप दो को मैं अकेला कलाई से पकड लू तो आपको इसका छुडाना कठिन हो जाये। इस पर कविराजा ने उत्तर दिया कि इसका कारण दुग्धाहार नही किन्तु

---

1 इस सम्बन्ध म "बारहठ कृष्णसिंह का जीवन चरित्र और राजपूताना का अपूर्व इतिहास" के प्रथम भाग म निम्न रूप स उल्लेख किया गया है।
" ... पश्चात् अपने बाद अपने कायम मुकाम एक सभा मुकर करके महाराणा सज्जनसिंह को सभापति बनाकर सभा का नाम "परोपकारिणी" रखा जिसम और भी कई मेम्बर मुकर किये। इसके साथ ही स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपना वसीयतनामा (नियमपत्र) बनाया जिसम लिखा कि मेरे देहान्त के बाद मेरे स्थानापन्न किसी को नही बनाया जावे। यह 'परोपकारिणी सभा' ही मेरे स्थानापन्न होकर वेद विद्या पढाना व अनाथो का पालन करना अच्छे सत्य वक्ता विद्वानो को उपदेशक रखकर वेद मत का प्रचार करना आदि परोपकारी काय करावें। इन नियमो के पालन का कुल भार महाराणा सज्जनसिंह पर छोडकर स्वामी दयानन्द सरस्वती फागुण महीना मे शाहपुरा गये।"

आजन्म ब्रह्मचर्य है। यह होते हुए भी महाराणा सज्जनसिंहजी के परलोक सिधारने के सं 1941 से लेकर अपने देहांत पर्यन्त कविराजाजी शाकाहारी ही रहे। प्रत्येक सोमवार को कविराजाजी अपनी दाढ़ी के बालों पर रंग करते थे। उस दिन घर में मांसादि बनते और इष्ट मित्रों का भोजन भी वहीं होता। यह क्रम महाराणा सज्जनसिंहजी के स्वर्गवास तक बना रहा, बाद शाकाहारी हुए।

स्वामीजी के उदयपुर निवास काल में उनके पट्ट शिष्य पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा भी उदयपुर आये और ठहरे। वे तभी से कविराजा श्यामलदासजी के भी प्रीतिपात्र हुए। इसके बाद भी श्यामजी अपनी धर्मपत्नि भानुमति बाई के साथ कविराजाजी से मिलने के लिये उदयपुर आये थे। भानुमति बाई भी विदुषी थी। दोनों पति पत्नी का व्यवहार कविराजाजी के घर में पारिवारिक सा रहा। एक बार कविराजाजी ने कहा-श्यामजी! तुम्हारे सन्तान नहीं है? श्यामजी ने कहा कि हम दोनों, स्त्री-पुरुष का संकल्प है कि सन्तान उत्पन्न न करेंगे।

प्रश्न–क्या यह हाथ की बात है?

उत्तर–हां हां, यह भी एक साइंस है। वह हमारे शास्त्रों से भी प्रमाणित सत्य है। हम दोनों उसे जानते हैं।

प्रश्न–क्यों नहीं?

उत्तर–न होने से तो संसार खाली रहेगा नहीं किन्तु यदि कुपुत्र हो जाये तो मेरे नाम को कलंकित कर सकता है और तब तो हमारी कमाई भी मिट्टी में मिल जाय। ऐसे संदिग्ध मार्ग पर हम जावें ही क्या? हम अपनी कमाई का देश के लिए स्वयं सदुपयोग करेंगे सन्तान की क्या जरूरत?

इन ही श्यामजी को मैं सं० 1951 में मुसाहिब की हैसियत से एक हजार रुपये मासिक वेतन पर तीन वर्ष की शर्त से उदयपुर लाया। उस समय कविराजा रोगशैय्या पर थे। श्यामजी पांच वर्ष उदयपुर में रहे और सब झगड़े साफ करके महाराणा फतहसिंहजी को विजयी बनाया। बाद में गवर्मेंट आफ इण्डिया से बिगड़ जाने के कारण अपनी सम्पत्ति लेकर श्यामजी सपत्नीक विलायत चले गये और क्रांतिकारी देशभक्त प्रसिद्ध हुए।

× × × ×

आशुकवित्व, विलक्षण स्मृति और अनुपम अवधान शक्ति के उपलक्ष में भारतमार्तण्ड की उपाधि से विभूषित पं० गट्टूलालजी भारत की विभूतियों में चिरस्मरणीय हैं। सं० 1944 में वे उदयपुर आये। महाराणा फतहसिंहजी ने उनको महलों में बुलाकर अवधान कराया। इसके लिये कविराजाजी की प्रमुखता में विद्वत्-मण्डली इकट्ठी हुई। जर्मन, फारसी अरबी हिन्दी डिंगल, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, लेटिन, ग्रीक फ्रेंच, बंगला मराठी, गुजराती आदि सोलह भाषाओं के विद्वानों ने अपनी अपनी भाषा के एक एक छंद को सोलह टुकड़ों में विभक्त कर बिना अनुक्रम सुनाया और कहते गये कि मेरे छंद में यह पद अमुक संख्या पर है। सोलह ही पंडितों ने यह प्रश्न-पद्धति ली और बीच बीच में घड़ी भी बजती रही। गट्टूलालजी ने प्रथम तो प्रत्येक को जिस क्रम से सुना उसी क्रम से वे पद सुना दिये और फिर सब के छंद रीति से पूर्ण कर यथा तथ्य सुना दिये एवं बीच में क्रमशः घड़ी के कितने टकोरे हुए वह भी कह दिया। फिर शतघटिकावधान हुआ अर्थात् एक घड़ी में सौ श्लोक नवीन बनाये, समस्यापूर्ति भी की। कविराजाजी ने विलोमगति की समस्या दी थी। फिर तीन पंडितों ने भिन्न भिन्न विषय और रस के तीन चरण (पद) कहकर गट्टूलालजी को कहा कि श्लोक का चौथा चरण आप ऐसा बनावें जिससे इन तीन चरणों का विरोध मिट कर पूरे श्लोक का एक आशय हो जाये। यह कठिन समस्या भी एक ही मिनिट में पूर्ण कर दी गई। इस तरह से कई प्रकार से उनकी अवधान शक्ति की विलक्षणता सिद्ध हुई। महाराणा ने पं० गट्टूलालजी को एक हजार रुपये पारितोषिक रूप में दिये। मेवाड़ रेजिडेन्ट कर्नल स्मिथ ने कविराजाजी से कहा कि हम भी यह सब देखना चाहते हैं। आप रेजिडेंसी पर भी ऐसा ही प्रबंध करें। पं० गट्टूलालजी का शतावधान रेजिडेंट सा० के यहां भी हुआ और गट्टूलालजी की इस धारणा शक्ति पर सब चकित हुए। यह पं० गट्टूलालजी जन्मान्ध, दुबले पतला शरीर काला रंग और कम्मूरत व्यक्ति थे।

× × × ×

राजपूताने में सबसे प्रथम 'राजस्थान-समाचार'' नामक साप्ताहिक पत्र चलाने वाले मनीषि समर्थदानजी अनेक बार उदयपुर में कविराजा साहब के पास आते रहे। प्रथम मुलाकात में कविराजाजी को यह मालूम नहीं था कि समर्थदानजी पासवानिये हैं। अतः कविराजाजी के सामने भोजन आने पर उन्होंने अपने शामिल भोजन करने के लिये समर्थदानजी को मनुहार की। समर्थदानजी ने बिना हिचकते हुए कहा कि मैं आपके थाल पर बैठने का अधिकारी नहीं क्योंकि पासवानिया चारण हूं। सत्य पर मुग्ध होने वाले कविराजा ने उठ कर समर्थदानजी को छाती से लगा लिया और कहा, तुम

हजार असला से अच्छे हों। उसी दिन से कविराजा श्यामलदासजी की बहुत प्रतिष्ठा करने लगे और महाराणा साहब तक भी उनको पहुंचा कर 'राजस्थान समाचार' के लिये आर्थिक सहायता देते, दिलाते रहे।

कविराजा सा. के स्नेही और मित्रों के विस्तृत समुदाय में जिनके नाम मुझे अब स्मरण हैं, वे ये हैं डॉ. रेवेरेण्ड शेपर्ड (उदयपुर), म. म. कविराजा मुरारिदानजी (जोधपुर), कोठारी बलवंतसिंहजी, प्रधानमंत्री मेवाड़, बारहठ कृष्णसिंहजी (शाहपुरा), राजराणा फतहसिंहजी (देलवाड़ा), ठा. सा. मनोहरसिंहजी (सरदारगढ़) डा. अकबर अलीजी (महाराणा की चार पीढ़ियों तक पर्सनल डाक्टर)।

× × × ×

कविराजाजी पर महाराणा सज्जनसिंहजी की कृपा होते ही एक दिन उन्होंने फरमाया कि सांवलजी! तुम जितनी आवश्यकता समझो अपनी तनख्वाह बता दो, मैं उतनी ही मासिक तनख्वाह स्वीकार कर लूंगा। कविराजाजी ने अर्ज की कि घर हिसाब लगाकर अर्ज करूंगा। दूसरे दिन अर्ज की - मुझे पौने चार सौ रुपये मासिक काफी होते हैं। यद्यपि महाराणा कृपण थे, फरमाया-कि यह तो बहुत कम है, बड़ा परिवार है नाम भी बड़ा है अतः ऊपरी खर्च भी अधिक होगा, घर के लोग जेवर वगैरह भी चाहेंगे। कविराजाजी ने अर्ज की मैं हुजूर के खजाने को पराया नहीं मानता, नहीं चाहता कि इसमें से ले ले कर घर भरूं, ज्यादा जरूरत ही आ पड़ेगी तो मालिकों से मांग लूंगा, अभी इतना ही काफी है और जेवर की तो सीमा ही हो नहीं सकती। वह भी एक लोभजनित संचय है। मेरा घर तो साधारण गृहस्थी का सा बना रहे इसी में शान्ति है। जरूरी जेवर तो मेरी जायदाद की बचत से ही बनते रहेंगे जबकि घर का कुल खर्च मालिक बख्श ही देते है। तब से ही पौने चार सौ रुपये मासिक मिलने लगे जो महाराणा फतहसिंहजी ने कविराजाजी के स्वर्गवास के बाद उनके पुत्र यशकरणजी के नाम पर भी कई वर्षों तक, जब तक कि कविराजाजी की धर्मपत्नि विद्यमान रही, बहाल रखे।

× × × ×

कविराजाजी ने चारण जाति के सुधार के लिये उदयपुर में तीन बार कौमी कायदे बनाये जिन पर मेवाड़ के प्रधान चारण व्यक्तियों के हस्ताक्षर हुए। पहिली बार सं. 1936 के वैशाख में दूसरी बार सं. 1937 चैत्र शुक्ला 6 को और तीसरी बार सं. 1945 के आश्विन में। किंतु पारस्परिक फूट, ईर्ष्या और संगठन की कमी और जो कुछ हो उसको तोड़ने के सहज दोषों और पापों से अभागी जाति उन कल्याणकारी चेष्टाओं से लाभान्वित न हुई।

सं 1945 के कार्तिक में कविराजाजी ने कर्नल वाल्टर सा, ए जी जी के सभापतित्व में "देश हितकारिणी" नामक सभा स्थापित की जिसके मेंबर मेवाड़ के सब बड़े उमराव सरदार बने। वह भी कुछ ही दिन चली क्योंकि महाराणा फतहसिंह जी प्रतिगामी विचारों के थे।

× × × ×

कविराजाजी की सत्यता, स्पष्टता और राजभक्ति ने महाराणा सज्जनसिंहजी को इतना प्रभावित किया कि वे राजपूत जाति और राजपूत राज्यों के लिए समस्त चारण जाति को ही ईश्वरीय देन समझने लगे। उनके ऐतिहासिक अनुशीलन ने हृदय पर यह अमिट मुद्रा लगा दी कि यदि राजपूत जाति के पतन को रोकना हो तो पहिले चारणों को सुशिक्षित करना चाहिये। अच्छे बुरे व्यक्ति तो प्रत्येक जाति में होते ही हैं परन्तु राजपूत जाति के हक में चारण जाति से बढ़कर निर्भीक सलाहकार, पूर्ण विश्वस्त और शुभचिंतक नहीं मिल सकता। इसी बात को उन्होंने महाराजा जोधपुर जसवंतसिंहजी और महाराजा कृष्णगढ़ शार्दूलसिंहजी को भी अनेक बार कहा। इसी विश्वास और संस्कार में कारण चारण बालकों को पढ़ाने के लिये महाराणा सज्जनसिंह जी ने कविराजाजी की प्रार्थना पर क्षत्रियों की वार्षिक आमदनी का दशमांश त्याग में देना नियत करके यह नियम बांध दिया कि सौ रुपयों की जीविका पर दश रुपये हुए उनमें से पांच चारणों के लिये हों और वे जिला हाकिमों की मारफत मंगवा कर उदयपुर में चारण पाठशाला के नाम से मदरसा बनवा कर उसमें चारणों के लड़कों की पढ़ाई में खर्च किये जावें। तदनुसार सं 1937 में पाठशाला और छात्रालय कायम हुआ उसमें छः मास्टर जिनमें "पृथ्वीराज चरित्र" नामक ग्रंथ के कर्ता स्व रामनारायणजी दूगड़ भी एक थे, नियत किये गये। मास्टरों एवं पाठशाला व छात्रालय के अन्य नौकरों का वेतन पठन पाठन की समस्त सामग्री छात्रों का भोजन-वस्त्र आदि समस्त खर्च राज्य एवं त्यागकोष से दिया जाने लगा और जब तक पाठशाला एवं छात्रावास का स्वतंत्र भवन न बन जाय तब तक यथावश्यकता बड़े उमराव सरदारों आदि की उदयपुर की हवेलियों से काम लिया जाता रहा। सबसे पहिले सोदा बारहठों के ग्राम रावछा के बारहठ पहाड़जी की हवेली में इसका श्रीगणेश हुआ। उन छात्रों में यह लेखक भी एक था।

प्रत्येक सोमवार को जहां महाराणा साहब की इच्छा होती वहां चारण छात्रों सहित एक सभा होती जिसमें उदयपुर के साहित्य रसज्ञ ठाकुर मनोहरसिंह जी डोडिया (सरदारगढ़) आदि बड़े उमराव एवं कवि श्रेष्ठ स्वामी

गणेशपुरीजी[1] डिंगल के प्रतिनिधि महियारिया मोड़सिंहजी, विद्वद्वर उज्जवल फतहकरणजी और शहर के अन्य कविगण भी शामिल होते। सभा पतित्व का आसन स्वयं महाराणा साहब ग्रहण करते और रस अलंकारों की छानबीन में भाग लेते हुए निज कविता भी फरमाते। सब छात्रों को भोजनान्तर माला आदि प्रदान की जाकर सभा विसर्जन होती। यह सिलसिला प्रायः तीन चार साल तक चलता रहा।

उस समय एक सौ से अधिक चारण छात्र एकत्रित हो चुके थे क्योंकि बालकों को जुटाने का भार कविराजाजी पर था। ये दिन चारण जाति के लिये महाभाग्य के थे। परन्तु ईश्वर की सृष्टि में उलूकस्वभाव आदमी भी उत्पन्न होते ही हैं। इतनी सुविधा होने पर भी पाषाणजीवन अनेक चारण अपने बालकों को उदयपुर नहीं भेजते थे। विवश होकर कविराजाजी जिला हाकिमों द्वारा पुलिस व जागीरी सवार भेजकर लड़कों को पकड़वा मंगाते। उस समय का दृश्य दुःख और करुणा से भरा हुआ था। दुःख था चारणों की मूढ़ता पर, करुणा थी बालकों की रुदनध्वनि को शत गुणित करने वाले घर के भीतर माता, भुआ, बहिन आदि और बाहिर पिता भाई, दादा आदि के वृद्ध क्रंदन पर। बालक का एक हाथ होता सवार के हाथ में और दूसरा होता बाप आदि के हाथ में। इस ऐंचाताती में ग्रामीण सहस्रों गालियां पड़ती कविराजाजी के नाम पर। उनके घर और वंश पर आग रखी जाती और रोम रोम में कीड़े पटके जाते। इस हाय तोबा का शोर ग्रामवासियों को इकट्ठा कर लेता परन्तु सवार राज का है और लड़का भी पकड़ा जाता है पढ़ाने के लिये, अतः कोई क्या करता? इनमें कुछ अपनी बुद्धि पर अभिमान वाले भी थे जिन्होंने अपने लड़कों को दूसरे राज्यों में अपने सबंधियों के यहां भेज देने की चतुराई की थी। हां, उत्तमोत्तम भोजन, वस्त्र और सेवा का मुफ्त का प्रबंध सुनकर कुछ मारवाड़ी बंधु छात्रालय में भरती होने को बिना ही बुलाये ऐसे आ पहुंचे थे जिनके हाथों में लंबी नै का हुक्का था और चेहरे पर थी दाढ़ी मूंछों की सघन झाड़ी में छिपे हुए श्याम होठों के साथ प्राप्त हुए बुढ़ापे की पगडंडियां बतने वाली झुर्रियां।

कविराजा साहब और मेरे पितृ श्री बारहठ कृष्णसिंहजी की प्रबल इच्छा थी कि चारण जाति अज्ञानकाल में अपनाई हुई गंदी वृत्ति और त्याग को

1 स्वामी गणेशपुरीजी द्वारा विरचित "कर्ण पर्व" वीर रस की अति उत्कृष्ट रचना है।

त्याग कर अपनी पूर्व प्रतिष्ठा को प्राप्त करें। परन्तु लोभी, क्षुद्र-हृदया और अविद्या में फंसी हुई जाति से उस समय यह आशा रखना विडम्बना मात्र थी। अतः विवश होकर यही सोचा कि कम से कम मेवाड़ में मिलने वाले त्याग की रकम को एकत्र करके चारण पाठशाला एवं छात्रालय में लगाई जावे ताकि आगे चलकर यह संस्था स्वावलंबी बन जाय। यही प्रबंध किया गया। महाराणा सज्जनसिंहजी ने फरमाया कि इस संस्था को आदर्शरूप बनाना चाहता हूं ताकि जयपुर, जोधपुर आदि के रईस भी ऐसा ही करें। इस विचार के अनुसार यह तै पाया कि पाठशाला और छात्रालय के स्वतंत्र मकान बनवाये जावें। इसके लिये महाराणा साहब ने अपने प्रिय सज्जननिवास नामक बाग के पास ही जो शहर से मिला हुआ है साढ़े पांच बीघा के करीब जमीन माफी में प्रदान की जिसमें एक विपुल-जला बावड़ी भी है। साथ ही फरमाया कि इस मकान के लिये मेवाड़ के उमराव, सरदारों से चंदा इकट्ठा करो, जितना चंदा इकट्ठा करोगे उतने ही रुपये राज्य से दे दिये जायेंगे किन्तु मकान के लिये एक लाख से कम रुपये न हो। कविराजाजी को किसी से कुछ मांगने की चिढ़ सी थी परन्तु जाति सेवा के लिये चंदा मांगना स्वीकार किया। इनके प्रभाव और समझाने की खूबी से सब बड़े उमरावों, सरदारों व सजातियों ने उत्साह और उदारता से अच्छा चंदा दिया। थोड़े ही अरसे में करीब चालीस हजार रुपये इकट्ठे हो गये और पाठशाला का निर्माण प्रारंभ हो गया।

जब सं 1941 के चैत्र में जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंहजी और कृष्णगढ़ के महाराजा शार्दूलसिंहजी उदयपुर में महमान होकर आये तब महाराणा दोनों अतिथि नरेशों के साथ पाठशाला का प्रारंभिक निर्माण देखने गये। वहां उन्होंने जोधपुर महाराजा से कहा कि यह मकान तैयार हो जाने पर मैं आपको फिर उदयपुर बुलाऊंगा और इसका उद्घाटन आपके हाथ से होगा। इसी प्रकार आप भी जोधपुर में चारण पाठशाला निर्माण करावें, मैं उसका उद्घाटन करूंगा। महाराजा ने बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार किया।

किन्तु चारण जाति ! 'ते हि नो दिवसा गताः।' महाराणा सज्जनसिंहजी का असामयिक स्वर्गवास हो जाने के कारण उन चालीस हजार रुपयों में से ही तीस हजार लगाकर जितना बन सका उतना पाठशाला भवन खड़ा करवा दिया और शेष रुपये बैंक में रखवा दिये जिनमें से अवशेष की इति भी कविराजाजी के स्वर्गवास के बाद कविराजा मुरारिदानजी आशिया द्वारा डूंगरपुर, बांसवाड़ा चारणों को मेवाड़ के चारणों की तरफ से मदद के रूप में दी गई।

यह मधुर स्वप्न टूट गया। जमा जमाया मण्डप छिन्न भिन्न हो गया। इधर तो चारण जाति के लिये त्यागमूर्ति मुख्य कारण माता पिता मौत पाकर अपने प्रथम लडको को मना ले गये, उधर आमीन्द टिकाने का रावत अर्जुनसिंह, जो अपने समय का महान धूर्त, दुष्ट प्रकृति और राजद्रोही होते स कविराजा श्यामलदासजी से जलता था उसे भी मौका मिला। सरदारो को बहकाकर उसने त्याग की रकम पाठशाला के लिए देना बन्द ही करवा दिया। राज्य का हाथ भी शिथिल हो चुका। परिणाम, पक्षी उड गये और सूखा सरोवर रह गया।

परन्तु विद्या के महत्व पर मुग्ध कविराजा अपनी सन्तान को पठन-पाठन से वंचित कैसे रखते ? दस रुपये मासिक कविराजजी ने, दस रुपये मासिक बारहठ कृष्णसिंहजी ने और दस रुपये मासिक सेमपुर ठाकुर चमनसिंहजी ने घर से देना तय करके तीस रुपये मासिक तनख्वाह पर काशी से दक्षिणी ब्राह्मण पं. गोपीनाथजी शास्त्री को बुलाकर हम छः बालको कविराजाजी के दत्तक पुत्र यशकरणजी, बारहठ कृष्णसिंहजी के पुत्र केसरीसिंह (लेखक) और किशोरसिंहजी, ठाकुर चमनसिंहजी के पुत्र करनीदानजी और भैरवसिंहजी और कविराजाजी के साढू के पुत्र आशिया चालकदानजी का अध्ययन के लिये उनके सुपुर्द किया। इन छात्रो की दो श्रेणिया थी। प्रथम श्रेणी में यह लेखक और चालकदानजी, दूसरी में उपरोक्त शेष चारो। पहिले हम कविराजाजी की वाटिका श्यामलनिवास बाग ही में रहते और पढते। संस्कृत का ही प्रधान पठन पाठन रहता था।

यह स्थिति कविराजा साहब व बारहठ कृष्णसिंहजी को संतोषप्रद न थी अतः आखिर उन्होने महाराणा फतहसिंहजी से अर्ज की कि 'हमारे लडको को तो हम अपने खर्च से पढा लेवेगे परन्तु मदरसा पाठशाला बन्द हो जाने से चारणो के दूसरे लडके मूर्ख रह जावेंगे। इसमे हुजूर की भी बदनामी होगी कि महाराणा सज्जनसिंहजी ने कृपा करके मदरसा जारी किया था वह महाराणा फतहसिंहजी के जमाने मे बंद होकर चारणो के लडके मूर्ख रह गये। इसलिये ज्यादा नही तो सिर्फ शिक्षको की तनख्वाह के लायक खर्च राज्य से कर बख्शें, बाकी खुराक पुस्तकें आदि का खर्च लडको के माता पिता देंगे। मदरसा जारी हो जाने से हुजूर के हाथ से चारण जाति का बडा उपकार होगा।' महाराणा को यह बात पसंद आई और सं 1943 पौष शुक्ला 2,अपने जन्म दिन के उत्सव पर महाराणा फतहसिंहजी पाठशाला के मकान में पधारे और उसका

उदघाटन किया एव मास्टरो की तनख्वाह के लिये दो रुपय रोज सदा राज्य से मिलते रहने का आदेश दिया। हम उसी दिन से उक्त पाठशाला भवन म मय प गोपीनाथजी शास्त्री के आ गये। ठा चमनसिहजी के तृतीय पुत्र खेमराजजी और मेरे कनिष्ठ भ्राता जोरावरसिहजी भी पीछे से यहा भर्ती हो गये और पढते रहे। स 1944 के बाद बीच बीच मे कविराजाजी ने अपने वल्क प गौरीशकरजी ओझा को भी बालको को अग्रेजी पढाने के लिये नियत किया था। किन्तु इस व्यवस्था मे मेवाडी चारणो का अपने बालको को पढने के लिये भेज कर खर्चा बर्दाश्त करना उस समय असभव था।

स 1946 के अत मे प्रथम श्रेणी के दोनो छात्र उत्तीर्ण होकर पाठशाला छोड चुके-चालकदानजी स्टेट प्रेस (सज्जन यत्रालय) के मैनेजर हो गये और मेरा विवाह हो कर मैं महाराणा फतहसिहजी की सेवा म चला गया। स 1951 मे मेरे दोनो भ्राता किशोरसिहजी और जोरावरसिहजी जोधपुर चले गये और वहा हाईस्कूल मे पढने लगे। कविराजाजी के देहात के बाद यशकरणजी ने पढना छोड दिया और बाद म खेमपुर वाले तीनो भाइयो ने भी पाठशाला से अवकाश ग्रहण किया। शास्त्री गोपीनाथजी हाई स्कूल मे हैड पडित हो गये और चारण पाठशाला पर फिर से ताला पड गया।

मेवाड के योग्य चारणो ने समय समय पर इस पाठशाला को जारी करने के प्रयत्न किये परन्तु एक तरफ तो महाराणा फतहसिहजी की विद्या प्रचार से विमुखता और दूसरी ओर कविराजाजी के अयोग्य उत्तराधिकारी यशकरणजी की स्वार्थपरता एव उनके निकटस्थ सहयोगियो की अहम्मन्यता-कि पाठशाला का यह मकान और बाडी कविराजा श्यामलदासजी की सपत्ति है और उस पर हमारा ही एकाधिपत्य है-इस ऐंचातानी मे पाठशाला पर ताले पडे ही रहे। फिर भी वर्तमान पीढी के उत्साही जाति-हितैषियो की सच्ची लगन के सतत प्रयत्न के परिणाम स्वरूप उस पाठशाला का रूपातर श्री भूपाल चारण छात्रालय स्थापित हो गया है। वर्तमान महाराणा भूपालसिहजी ने उस पाठशाला के मकान और बाडी को तो राजकीय मोटर गैरेज बनवाने के लिये जब्त कर लिया और उसके बदले मे मकान की कीमत के तीस हजार रुपय और उतनी ही जमीन सूरजपोल बाहिर हवाले म प्रदान कर दी जिसमे छात्रालय बन जाने पर स 1994 चैत्र कृष्णा 8 गुरुवार को स्वय पधारकर उसका उदघाटन किया और ढाई सौ रुपय वार्षिक राजकीय सहायता मिलते रहने की आज्ञा प्रदान की। तब से यह 'श्री भूपाल चारण छात्रालय"

चल रहा है। परन्तु चल रहा है उसी स्वार्थी और मिथ्याभिमानी मवाली खिसखिस और ऐंचातानी में।

× × × ×

कविराजा श्यामलदासजी को अनुभव हुआ कि जातीय सुधार के लिये हुए स्थानीय कार्य पारस्परिक द्वेष के कारण सहज ही टूट जाते हैं और जब तक चारण जाति की चिरसंगिनी राजपूत जाति में सुधार न हो तब तक चारण जाति भी नहीं उठ सकती, और यह कार्य व्यापक रूप से और स्थायी तभी हो सकता है जब राजपूताना के एजेंट टू दी गवर्नर जनरल इस कार्य को हाथ में ले लें। कर्नल वाल्टर साहब कविराजाजी के मित्रों में से थे और व उस समय राजपूताना के एजेन्ट टू दी गवर्नर जनरल के पद पर पहुंच चुके थे। अतः कविराजाजी ने यही उपयुक्त समय देख कर वाल्टर साहब को समझाया कि समय पाकर सुधार तो होगा ही किन्तु आप ही इसका प्रारंभ करें तो राजपूत और चारण जाति के हितचिन्तकों के साथ आपका नाम चिरस्थायी हो जावेगा आदि। कर्नल वाल्टर तैयार हो गये और राजपूताने के रईसों को लिखकर हरेक रियासत के बड़े दर्जे के प्रतिष्ठित और योग्य उमराव क्षत्रियों और चारणों को अजमेर में एकत्रित किये एवं सं 1944 चैत वदी 13 को 'वाल्टर कृत राजपुत्र हितकारिणी सभा' के नाम से स्थायी संस्था कायम की जिसने राजपूत और चारण इन दो जातियों के लिये शादी गमी आदिक जातीय सुधारों पर कायदे बनाये।

× × × ×

महाराव रामसिंहजी के जमाने में सं 1945 में आर्य समाज के प्रसिद्ध व्यक्ति स्वामी नित्यानंद सरस्वती और स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती के बूंदी जाने पर, महाराव ने अपने भूतपूर्व महामात्य एवं भागवत की अर्थ भावार्थ प्रकाशिका टीका और न्यायप्रदीप आदि ग्रन्थों के रचिता पंडितवर गंगासहाय, पंडित नवनदाचार्य, पंडित हरिदास और पंडित तांताचार्य से उनका शास्त्रार्थ कराया और हारजीत का निर्णय होने से पहले उन दोनों को अपमानित करके बूंदी राज्य की सीमा से बाहर निकलवा दिया। यही नहीं उसी वर्ष के माघ मास में वाल्टर कृत राजपुत्र हितकारिणी सभा का अजमेर में अधिवेशन होने पर, महाराव की आज्ञा से बूंदी राज्य के प्रतिनिधियों ने [illegible] रखा कि हमारे महाराव सा. ने कहला भेजा है कि [illegible] आर्य [illegible] सब लोगों का धर्म भ्रष्ट करते हैं, इसलिए स[illegible] [illegible] किसी राज्य में घुसने न पावें। यह सुन[illegible]

नहीं हो सकता, क्योंकि आपके महाराव रामानुज-सम्प्रदायी हैं, हमारे यहां एकलिंगजी की पूजा होती है और जयपुर में गोविंद देवजी की पूजा है। इसी प्रकार औरों में भी एक न एक पूजा है। इस दशा में यदि प्रत्येक राजा, प्रजा को अपने अपने मत की अनुयायी बनाना चाहें तो वह किसकी मतानुयायी होगी। वास्तव में धर्म के मामले में कोई किसी को रोक नहीं सकता। आपके महाराव सा० तो बुद्धिमान हैं उन्होंने ऐसा प्रस्ताव कैसे किया ?

× × × ×

जिस समय मैं सोलह वर्ष की अवस्था में शुक्रनीति पढ़ रहा था, गुरुजी से समाधान न होने पर मैंने एक दिन कविराजा साहब से, जिनको मैं अपने रिश्ते से बाजीसाहब कहता था, पूछा कि एक ही ग्रंथकार अपने एक ही ग्रंथ में विरुद्ध सिद्धान्तों का कैसे प्रतिपादन कर सकता है ? शुक्राचार्य ने सरल, शुद्ध और सत्य से प्रतिष्ठित नीति को ही मुख्य माना है परन्तु वे कूटनीति भी बता रहे हैं और उसका भी प्रतिपादन करते हैं-यह विरोध क्यों ? बाजी साहब ने फरमाया कि तू अपने पाठ्य विषय को ध्यान से पढ़ता है इससे मैं प्रसन्न हुआ। अभी तुम्हारी बुद्धि कच्ची है इसी से तुमको दोनों नीतियों में विरोध दीखता है। उदाहरणार्थ एक युद्ध शास्त्रकार तलवार की महिमा और प्रयोग बतलाता है और वही ढाल का प्रयोग भी बतलाता है जो दोनों भिन्न प्रतीत होते हैं। परन्तु जहां आक्रमण में तलवार की मुख्यता है वहां आत्मरक्षा में ढाल की महिमा है। इसी प्रकार नीति तो शुद्ध, सरल, और सत्यता लिये हुए ही श्रेष्ठ होती है और उसी का आचरण करना चाहिये। परन्तु संसार में प्रपंची, और दुष्ट पुरुषों की कमी नहीं। उनके आघात से अपने को, समाज और देश को बचाने के लिए कूटनीति ही काम देगी। अतः कूटनीति को केवल ढाल के तौर पर काम में लाओ, किसी को हानि पहुँचाने की नीयत से कदापि नहीं। केवल कूटनीति पर चलने वाले समाज को हानि ही पहुँचाते हैं। ऐसे लोगों को स्वार्थ साधन में सफलता हो जाने पर भी उनकी गिनती श्रेष्ठ पुरुषों में नहीं होती। श्रेष्ठ वही है जो श्रेय को प्रधानता दे कर प्रेय को प्राप्त करता है बल्कि प्रेय का भी त्याग कर देता है। श्रेय पर चलना ही शुद्ध नीति है।

× × × ×

महाराणा सज्जनसिंहजी के स्वर्गवास बाद कविराजाजी की प्रबल इच्छा थी कि वे संन्यास ले लें। उन्होंने अनेक बार कहा कि अब मेरे जीवन में दो ही काम बाकी हैं। एक तो "वीरविनोद" छप कर वितरित हो जाय और दूसरा

बाई कलजो (कविराजाजी की सबसे छोटी पुत्री जिसको वे बहुत प्यार करते थे। का विवाह हो जाय। वह विवाह स 1947 के फागुन में जोधपुर के कविराजा मुरारिदानजी के पुत्र गणेशदानजी के साथ ग्राम ढोकलिया में बड़ी धूमधाम से किया गया। यह भी एक अपूर्व समारोह था। अपूर्व इसलिये कि कविराजाजी के अनुपम प्रभाव और प्रेम का इस अवसर पर विशाल दर्शन होने के साथ ही लाखों रुपये खर्च करने पर भी जो नहीं हो सकता वह इसमें था। पैसे के जोर से हजारों व्यक्तियों का हुजूम, उनके लिये षटरस व्यंजन और दीपमालिका सा चाकचिक्य एवं बढ़िया से बढ़िया नृत्यगान कोई भी करा सकता है। इनमें से यहां किसी की विशेषता न थी, विशेषता थी इसकी कि मेवाड़ राज्य के प्रधानमन्त्री कोठारी बलवंतसिंहजी से लेकर प्रत्येक महकमे के बड़े ऑफिसर, सब जिलों के बड़े बड़े हाकिम और उमराव सरदार प्रेम भरे सेवा भाव से स्वेच्छानुसार हाथ में लिए हुए छोटे से छोटे काम को भी नम्रता की हँसी लिये हुए दौड़े दौड़े कर रहे थे। जान ही नहीं पड़ता था कि ये भी हजारों पर हकूमत करने वाले सम्माननीय पुरुष हैं कोई तैल्पात्र लिवाये डेरों डेरों जाकर दीपक सुलगवा रहे हैं, कोई भोजन बनवा रहे हैं, कोई भोजन करवा रहे हैं, कोई झूठी पत्तलें उठवा रहे हैं और कोई अपने अधीनों को सफाई का सबक अपने हाथ से सिखा रहे हैं। कोई भी विभाग ऐसा नहीं था जिसमें राज्य के स्तंभ स्वरूप व्यक्ति काम में तल्लीन न हो रहे हों। और कविराजाजी? कविराजाजी अपने स्थान पर निश्चित बैठे हुए बातें कर रहे हैं। समस्त मेवाड़ के प्रबंध करने वालों को महाराणा ने विवाह के उपलक्ष में छुट्टी दे दी है और उन्होंने सब भार स्वयं उठा लिया है। कविराजाजी को केवल अपने प्रभाव और प्रेम का निरीक्षण करते हुए सुख अनुभव करने के लिए छोड़ दिया। कौन कह सकता है कि कविराजा केवल महाराणा सज्जनसिंहजी की कृपा के बल से ही बलीमान थे। हुकूमत के साम्राज्य की अपेक्षा प्रेम का साम्राज्य ही महान् होता है और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण था कल्याणबाई का विवाह। ढोकलिया ग्राम का एक एक पत्थर मुस्कुरा रहा था।

इन मांगलिक आनंद भरी लहरों में एक घटना अप्रिय-सी हो गई। वह थी कविराजाजी के तत्रस्थ बांधवों की मूर्खता। ये ग्राम के पुश्तैनी छुटभाई सदा से ही कविराजाजी के विरुद्ध विद्रोह करते आ रहे थे। ये राज्य से हारकर भी अपनी उद्दण्डता का शमन न कर सके। उनके विपरीताचरण की शिकायत उदयपुर पहुंचने पर महाराणा सा का आदेश हुआ कि उनके बढ़ाये हुए घर फौरन गिरा दिये जावें। राजाज्ञा को कौन रोक सकता था? बीसों बुदा-

लियां एक साथ उठ गई और देखते ही देखते घर भूमिसात् हो गये। इधर के गायन वादन के साथ उधर का प्र न नाटक हनुवे म नमक का सा स्वाद बन कर अप्रियता की क्षीण लहर बन रहा था। कविराजा एक दिन इसी से उदास रहे। कोई कविराजा को वाघव विरोधी न कहे इस भ्रम का दूर करने के लिये ही कविराजाजी ने 'वारविनोद" म अपनी जीविका के प्रमाण पत्रा का स्वतन्त्र निबंध लिखा है और वह पुस्तिकाकार म अलग भी छपा है। इसकी भूमिका को पढ़ लेने के बाद कोई भी कह सकता है कि वे वाघव कितने मूर्ख थे जिन्होने उस उदार हृदय से लाभ न लेकर नाहक ही उसे सतप्त करने म अपनी वीरता समझी। परन्तु आखिर कर्मों का फल उनही को भोगना पड़ा और सब शात हुए।

× × × ×

मैंने प्रथम उल्लेख किया है कि महाराणा सज्जनसिंहजी के स्वर्गवास पश्चात् कविराजाजी ने एक प्रकार से राजनैतिक स यास ले लिया था केवल इतिहास कार्यालय, विद्याविभाग और महद्राज सभा की मबरी अपने हाथ मे रखा। महाराणा फतहसिंहजी को गद्दी पर बैठाते ही कनल वाल्टर रजिडेंट मेवाड़ ने गवर्मे ट की तरफ से कविराजाजी का हुकुम सुनाया कि जिस तरह महाराणा सज्जनसिंह जी की मौजूदगी म आप और महता प नालालजी काम करते रहे उसी मुआफिक अब आगे भी काम करते रहो। लेकिन कविराजाजी ने काम करने से इन्कार कर दिया और कहा कि महाराणा सज्जनसिंहजी के बिना हुकूमत करना मुझे अच्छा नही लगता अत तवारीख बनाने के सिवाय दूसरा काम करना मुझे मजूर नही।

परन्तु महाराणा फतहसिंहजी भी जानते थे कि कविराजाजी जसा व्यक्ति दूसरा नही अत कठिन कामो पर कविराजाजी का ही आगे करते थे। ऐसे प्रसगा म कोटा की सगाई का विषय एक है और वह अति सक्षेप म यो है—

सवत् 1945 के आषाढ म कोटा के महाराव शत्रुशालजी के स्वर्गवास और वर्तमान महाराव उम्मेदसिंहजी की गद्दीनशीनी के बाद ही कोटा म गृहकलह का तूफान उठा जिसे शांत करने के उपाय म कोटा के पोलिटिकल रजिडेंट रावट स और झालावाड़ के पोलिटिकल एजेन्ट मार्टिडल लग हुए थे। फिर भी अशाति बढ़ती ही जाती थी। अत व दोनो अफिसर तत्कालीन ए जी जी कनल वाल्टर को कोटा बुलाना चाहते थे। उस समय म महाराणा फतहसिंहजी ने कनल वाल्टर सा को लिखा कि मैं अपनी बड़ी राजपुत्री की

सगाई कोटा के महाराव उम्मेदसिंहजी से करना चाहता हूं आप इसमें मुझे मदद दें। मैं यहां से आपके मित्र और मेरे विश्वस्त मुसाहिब महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदासजी को राजतिलक का दस्तूर लेकर कोटे भेज रहा हूं और उनको सगाई की बातचीत तै करने का पूरा अधिकार भी देता हूं।

ए जी जी कर्नल वाल्टर ने कोटा के पोलिटिकल रेजिडेंट को सगाई के काम में कविराजाजी को पूरी मदद देने का आदेश भेजा और उधर महाराणा को लिखा कि टीका (तिलक) का दस्तूर चंद रोज बाद भेजा जावे तो भी कोई हर्ज नहीं मगर आप कविराजा श्यामलदासजी को बहुत जल्द कोटा रवाना करदें ताकि वे वहां राणियों आदि सबको समझा-बुझा कर शांति स्थापन करने में हमको मदद दें। इस पर महाराणा ने कविराजाजी को बरसते हुए श्रावण मास में कोटा रवाना किया। कविराजाजी पंद्रह दिन कोटा में रहे और उनके सहयोग से पोलिटिकल एजेंटों को संतोष हुआ। टीका महारावजी सा के नजर हो गया और सगाई की सब शर्तें तै हो गईं। कविराजाजी की इस सफलता में बाधा देने वाले कोटा के प्रधान कर्मचारियों ने भी अपने प्रपंच में कमी न रखी। और इसका कारण था, रिश्वतखोरी की खाट पर चढ़े हुए स्वार्थियों को इतने बड़े काम में जहां दो पांच लाख पर हाथ साफ करने की आशा थी एक पाई भी रिश्वत में न मिलना। इसी से भूखे भेड़िये के समान क्रुद्ध होकर उन्होंने कूटनीति की चालों से खूब ही ऐंचातानी मचाई यदि दूसरा होता तो जरूर घबरा जाता, परन्तु वहां तो मुकाबला था सच्चे स्वामिभक्त, निधड़क सत्यव्रती, निःस्वार्थी और सिंह समान तेजस्वी कविराजा श्यामलदासजी से।

जब कौंसिल के प्रपंची प्रधान व्यक्तियों ने देखा कि इसी समय इस सगाई के संबंध में ही कृष्णगढ़ और रतलाम के भले आदमी आए हुए हैं और हमने उनसे अपनी लेन देन की बातें तै भी करली है परन्तु पोलिटिकल एजेन्ट कविराजाजी की मुट्ठी में है अतः हमको भी जबानी हां में हां मिला लेनी होगी, फिर भी यदि तहरीर को टाल दी जाय तो बाद में बाजी हमारी होगी क्योंकि बारबार कविराजा थोड़े ही आवेंगे? यही आखिरी पासा फेंका गया। जिस दिन रेजिडेन्सी की कोठी पर कोटा कौंसिल के वे मेंबर और रेजिडेंट के साथ कविराजाजी एकत्रित हुए और कविराजाजी ने शर्तों को तहरीर में लाने का प्रस्ताव रखा उस समय एक मनचले स्वार्थी ने कहा कि ठीक है, शर्तें वगैर सब बातें हो ही चुकी हैं रही लिखा पढ़ी सो इसके लिये आप उदयपुर जाकर महाराणा सा का खरीता राज बाजाब्ता किसी अहलकार के साथ भेज दें तब

यहां से भी वे शर्तें तहरीर में करदी जायेंगी। कविराजा इस चाल को ताड गये और एजेंट सा से कहा कि ये लोग हैं पक्के रिश्वत के चटोरे, जो कुंजड़ियों की शाक तक छीन कर रोज रोटी खाते हैं, इतने बड़े काम को आपके हाथ से सूखा बन जाता देख दुःखी है और मौका टाल रहे हैं। ये लोग नहीं जानते कि मेरे मालिक ने अपनी वह छाप जो खास रुक्कों पर महाराणा के हस्ताक्षरों के रूप में लगाई जाती है, मेरे हाथ में दे दी है। इसीलिये मुझे खास रुक्का लिखने का पूर्ण अधिकार है वह लिख देता हूं। फौरन पोलिटिकल एजेंट ने मेंबरों को धमका कर कहा कि आप लोग नाहक धाधली करते हैं, कविराजा साहब का कहना बिलकुल ठीक है। अभी यही सब तहरीर होगी, आइंदा के लिये कुछ नहीं छोड़ा जावेगा। फिर किसकी मजाल थी कि चूं करते। कोटा कौंसिल के योग्य, निर्भीक और रिश्वत से दूर रहने वाले मेंबर पं शिवशंकरजी ने कविराजा साहब के प्रस्ताव का स्वागत किया और उसी समय तहरीर पर सब मेंबरों के दस्तखत हो गये।

इस सगाई कार्य की सफलता में जो जो कठिनाइयां उपस्थित हुई उनको स्वयं कविराजाजी ने सं 1946 भाद्रपद शु 3 के दिन लिखे हुए अपने पत्र में सविस्तार प्रगट की है। यह ऐतिहासिक पत्र मेरे पितृश्री बारहठ कृष्णसिंहजी के नाम और महाराणा फतहसिंहजी को सुनाने के लिये लिखा गया था और उसी का संक्षिप्त उपरोक्त है।

× × × ×

महाराणा फतहसिंहजी के समय काशी (बनारस) के "राणा महल" की जमीन पड़ौसियों ने दबा ली थी अतः महाराणा ने कविराजाजी को बनारस भेजा। उन्होंने जितनी जमीन "राणा महलों" की थी उसे फिर से कब्जे में ले हदबन्दी करादी और मामले को मुकदमे में नहीं पड़ने दिया वरना बहुत खर्चा होता। उस समय महाराजा बनारस कविराजाजी से मिले और बड़ा आतिथ्य किया एवं एक बहुत बड़ी खिल्लत देने का आग्रह किया। परंतु कविराजा साहब ने यह कहकर सादर अस्वीकार कर दिया कि मैं महाराणा के सिवाय किसी से कुछ नहीं लेता।

× × × ×

कविराजाजी की स्वाभाविक तेजस्विता ईश्वरीय देन थी और उसका दूसरा पर पड़ने वाला प्रभाव अनिवार्य परिणाम था। सत्य के कट्टर उपासक होने से उनकी निर्भय वाणी ने उस तेजस्विता और प्रभाव को अमोघ बना दिया इसीलिये नये व्यक्ति के लिये उनका हृदय टटोल लेना भी समस्या थी।

कविराजाजी का हृदय बहुत ही कोमल, क्षमाशील, दयार्द्र, और गंगा प्रवाह के समान शांत गंभीर और सरस था। मैंने उनको क्रोध करते कभी नहीं देखा। हां उनकी डांट-फटकार दूसरे को कंपा देती थी। फिर भी उनके चेहरे पर क्रोध के चिह्न कभी नहीं आये। डांट-फटकार के बाद ही उनकी क्षमा अपने आप ऊपर उभर आती थी। यही कारण है कि उनके हाथ से किसी ने हानि नहीं उठाई।

दो बातों से उनको महान् चिढ़ थी। प्रथम किसी रूप में भी स्वामी का विद्रोह द्वितीय स्वार्थवश सत्य का गला घोंट कर प्रपंच से असत्य की जय चाहना। कविराजाजी के स्वभाव स्वरूप को उन्हीं का एक दोहा स्पष्ट कर सकता है—

> सूक लेन[1] अरु स्वामि धन, हरन, करन छल ईस।
> तीन दाग कविराज ने, तज सु बिसवा बीस॥

रिश्वत लेना, स्वामी के धन को दबा लेना और मालिक से छल करना इन तीन बातों को दाग मान कर कविराजा ने बीस ही बिस्वा त्याग दी थी। ये दाग जहां भी होते वहां कविराजाजी की कभी नहीं पटता था। इसीलिये वैसे लोग कविराजा को अपना शत्रु समझते थे। वास्तव में ही कविराजा ने उनके साथ कभी मेल नहीं किया। उदाहरणार्थ, एक घटना का उल्लेख करेंगे।

महाराणा सज्जनसिंहजी के समय में मेवाड़ में दो ही प्रधान व्यक्ति[2] थे। महता पन्नालालजी, जो महाराणा शम्भूसिंहजी के जमाने से राज्य के प्रधान कर्मचारी बने हुए थे और मेवाड़ के रेजिडेंट आदि प्रत्येक अंग्रेज को सब प्रकार से प्रसन्न रख कर अपने अनुकूल बनाया रखते थे। संदेह नहीं अपढ़ होने पर भी वे बहुत ही होशियार मधुरभाषी दूरदर्शी और प्रबंध कार्य में दक्ष थे। किन्तु साथ ही वे परले सिरे के रिश्वतखोर। घर में लाखों रुपये संचित किए और इसी धन के जोर से महाराणा सज्जनसिंहजी व फतहसिंहजी के विरोध में भी अपने आप को बनाये रखा। दूसरे थे कविराजा श्यामलदासजी जो सत्य के

1 रिश्वत लेना।

2 उस समय राज्य प्रबंध के दो भाग थे। माल-महकमा महता पन्नालालजी के, और शेष प्रबंध न्याय, शिक्षा आदि का प्रधान मंत्री कविराजाजी के हाथ में था।

आधार पर नगी शमशीर थे, बेलाग थे और थे लल्लू-चप्पू से नफरत करने वाले, स्पष्ट वक्ता, प्रबन्ध को निभाने में ही नहीं बल्कि नवीन रूप देकर चलाने में चतुर, परम स्वामिभक्त और रिश्वत के दुश्मन।

इन पारस्परिक गुणावगुणों के कारण उपरोक्त दोनों प्रधान व्यक्तियों में न पटना स्वाभाविक था। महाराणा इसको जानते थे। अतः एक दिन उन्होंने अपने इन दोनों प्रधान व्यक्तियों को एकान्त में बुलाकर फरमाया कि मेरे घर में तुम दोनों ही असाधारण व्यक्ति हो परन्तु दोनों में अनबन है। यदि तुम दोनों ही एक दिल होकर, मित्र बन कर काम करो तो मेरे राज्य का कितना उत्तम हित हो। अनबन होने से जो हानि होती है वह भी मिट जाय। इसलिए मेरी इच्छा है कि तुम दोनों ही आज से मित्रता का पालन करो और मेरी गद्दी को स्पर्श करके प्रतिज्ञा करो कि एक दूसरे के विरुद्ध न जाओगे। प्रतिज्ञा कर लेने पर हमारी तरफ से गाबी (छानी) हुई अमल (अफीम) एक दूसरे के हाथ पीओ और दृढ़ मित्र बन जाओ।

तुरन्त ही पन्नालालजी ने आज्ञापालन में तत्परता बताई परन्तु कविराजाजी चुप रहे। जब महाराणा ने इस मौन का कारण पूछा तो कविराजाजी ने अर्ज की कि प्रतिज्ञा से पहले यह तो निर्णय करें कि हमारी अनबन का कारण क्या है? न मैंने पन्नालालजी के बाप को मारा न इनका घर छीना, न पन्नालालजी ने ही मेरे बापू को मारा, न मेरा घर छीना तो फिर यह अनबन क्यों? पहले इसकी जड़ पर ही कुठार रखना चाहिये फिर इस विरोध का नाश स्वतः हो जायगा। हुजूर उस जड़ (कारण) को पकड़ें और उसी के लिये प्रतिज्ञा लिवायें। महाराणा ने कारण पूछा तो पन्नालालजी ने कहा-मेरी तरफ से तो कुछ नहीं है कविराजा साहब ही इसे स्पष्ट करें। पूछने पर कविराजाजी ने अर्ज की-ये हैं पक्के रिश्वतखोर और अपना स्वार्थ साधन में सहज ही स्वामी के विरुद्ध हरामखोरी पर उतर आने वाले। इन दोनों बातों को हुजूर भी जानते हैं, मेवाड़ भर जानती है और राज्य के कागज तो जानते हैं। यदि ये आज गद्दी के हाथ लगा कर इन दो बातों को तिलांजलि दे दें तो मैं गई-गुजरी बातों को सर्वथा भूल कर इसी क्षण से इनको अपने सहोदर के समान मानकर प्रेम करूंगा, सम्मान करूंगा और सदा इन्हीं को आगे रख कर काम करूंगा। यदि मैं अभी लिहाज में आकर मैत्री की प्रतिज्ञा करलूं तो नतीजा यह होगा कि ये तो अपने स्वार्थमार्ग पर चलेंगे ही मैं बाधा दूंगा और हुजूर से भी सब कहूंगा। तब सभव है हुजूर के ध्यान में भी मैं ही दोषी ठहरूं

कि पन्नालालजी तो कभी कुछ नहीं कहते, श्यामलदास ही प्रतिज्ञा तोड़कर चुगली करता है। हुजूर का यह ख्याल भी ठीक नहीं कि हमारे विरोध से राज्य को हानि पहुंचती है या पहुंचेगी। अभी तो ये मेरे डर से दब दब के कदम उठाते हैं, मगर चुप हो जाऊंगा तो ये सारी मेवाड़ को चाट जायेंगे और हुजूर के अधिकारों पर भी जोफ पहुंचेगा। यदि ये उपरोक्त दोनों बातों की प्रतिज्ञा लेना चाहें तो हुजूर लिवालें। मैं जाता हूँ, क्योंकि सम्भव है मेरे दोषों को प्रकट करने में ये बनिया बुद्धि के कारण हिचकते हों। अतः हुजूर खानगी में पूछ लें और मुझे फरमा दें। मैं अपनी जो कोई वास्तविक कमजोरियां या दोष होंगे तो उन पर माफी मांगने और कथित प्रतिज्ञा करने पर तैयार रहूँगा और इनके ही सामने गद्दी स्पर्श करके मित्र बन जाऊँगा।

यह किस्सा स्वयं कविराजाजी का फरमाया हुआ है। यहां इसका उल्लेख किसी व्यक्ति की निन्दा करने की नियत से नहीं, केवल कविराजाजी की स्पष्टवादिता दिखाने के लिये किया है।

× × × ×

मेवाड़ में यह तो लोकविदित है कि महता पन्नालालजी ने कविराजाजी के साथ द्वेष अंत तक निभाया। किन्तु महाराणा फतहसिंहजी ने उस द्वेष का बुरा असर कविराजा पर उतना नहीं आने दिया क्योंकि वे भी कविराजाजी को अपना पूर्ण विश्वस्त स्वामिभक्त समझते रहे और यह भी जानते थे कि पन्नालाल कभी मुझे धक्का देगा। परन्तु दो लोभियों का एक मत कभी हो ही जाता है। और इसमें पन्नालालजी कुछ सफल हो ही गये, अर्थात्–

महाराणा सज्जनसिंहजी प्रायः प्रतिवर्ष ही कविराजाजी के ग्राम, बाग या हवेली पर पधारते थे और इन पधरावणियों में होने वाला खर्चा राज्य से दिये जाने का हुक्म भी हो जाता था क्योंकि महाराणा खूब जानते थे कि कविराजा के न तो ऐसी बड़ी जीविका है और न इतनी बड़ी तनख्वाह कि जिस पर यह खर्च का बोझा उठ सकता है। परन्तु चतुर महाजन पन्नालालजी उस खर्च को कविराजाजी के नाम उधार खाते में लगाते रहे क्योंकि हिसाब का महकमा उन्हीं के हाथ में था। इस खर्च के कागजों को उन्होंने दबाय रखा और जब सं 1944 में महाराणा फतहसिंहजी के गद्दी बैठे। उसके बाद दूसरे राजकुमार पैदा हुए उस खुशी में महाराणा ने खूब उदारता दिखाई जिसमें लेखक के पितृश्री को भी पांच हजार रुपये नकद और एक हाथी एवं मोतियों की बहुमूल्य कंठी व सिरोपाव बख्शे गये थे। इस प्रसंग पर महाराणा ने पन्नालालजी से

पूछा कि कविराजजी को क्या दिया जाय ? पन्नालालजी ने व पुराने कागजात पेश कर कहा कि कविराजजी म करीब बावन हजार रुपये बाकी निकलते हैं इनमे स कुछ माफ कर दिये जावें और दूसरी हवेलियां वाला के सरिस्ते एक हाथी, मोतियो की कठी व सिरोपाव दे दिया जाय। महाराणा न चाहा कि कुल रकम माफ कर दी जाय क्याकि वे इसकी असलियत को जानते थे। परन्तु पन्नालालजी न अर्ज की कि ठीक है, कविराजजी "वीर विनोद" बना रहे हैं उसक बन चुकन पर इनाम म बडी बख्शीश करनी पडेगी। यदि इस समय कुल कर्जा माफ हो गया तो उस समय गाव देन पडेंगे। मेरी राय से इस रकम म से कुछ वीर विनोद" क इनाम के लिये रखली जाय, फिर तो जो मालिकों की मर्जी। महाराणा को यह राय पसद आ गई क्याकि व इस पुत्र जन्मोत्सव क आनन्द की क्षणिक औदार्य लहर म आ गय थे। तो भी थे पक्के कजूस। मुझे इस समय ठीक स्मरण नही कि कितनी रकम माफ की और कितनी शेष रखी। जब कविराजाजी को यह सुनाया गया कि अमुक रकम उन्हें माफ की गई है तो उन्होंन एक अक्षर भी नही कहा कि यह रकम ही उनके नाम पर कर्जा बाकी रखी गई थी, मेरी कौनसी प्रार्थना थी जिस पर मुझे यह कर्ज दिया गया था ?

सच है हल्के हृदय का विरोधी मौका पाकर आर्थिक मार मार सकता है किन्तु सत्पुरुषा क उच्च गौरव और यश तक उसका हाथ नही पहुँचता।

× × × ×

स 1941 म जब महाराणा फतहसिंहजी गद्दी बैठे उससे प्राय एक वर्ष पूर्व उनके पुत्र भोपालसिंहजी (जो इस समय मेदपाटेश्वर है) का जन्म हो चुका था। अत वे महाराजकुमार की हैसियत स गद्दी पर आये। कम उम्र मे प्रत्येक बालक को गोदी म उठाये रहना स्वाभाविक है। परन्तु राजगद्दी की चारों दिशायें चापलूसा से भरी रहती ह जो हुजूरिया से छाई रहती हैं। वे औचित्य-अनौचित्य पर दृष्टि न देकर प्रत्येक चेष्टा एसी करते हैं, जिससे स्वामी की कृपा प्राप्त हो जाय। सतान सभी को प्यारी होती है और जो कोई सन्तान का प्यार करता है वह भी माता पिता का प्यारा बन जाता है। इसी लक्ष्य से जब से महाराजकुमार भोपालसिंह जी महलोम आये तब से ही लाग उनको एक की गोदी से दूसरे की गोदी मे बदलते रहते। भूमि-स्पर्श से उनको दूर ही रहना पडा। भीतर से लौंडियां गोदी म उठाये आती और बाहिर पुरुषो की गोद भर जाती। बाहिर का समय पुरुषो की गोद म समाप्त करके फिर से लौंडियो की गोद म जनाना आबाद हो जाता। गरीब घरा म छ मास क बच्चे जमीन को नापने लगते हैं। बडे घरा म भी गोदी की अवधि डेढ दो

वय से अधिक नही रहती। परन्तु भोपालसिंहजी तो बचपन की बडी उम्र म भी गादी मे घूमते रह। यह दृश्य देख कर एक दिन कविराजाजी ने महाराणा सा से अज की कि बच्चा तो राजा और रक दोनो ही को समान रूप मे प्यारा लगता है। परन्तु प्यारा लगने का यह अर्थ थोडा ही है कि वह जमीन ही पर न उतारा जाय। परमात्मा ने दो पैर जमीन पर चलने के लिये दिये है, परन्तु मालूम होता है कि हुजूर के ये खुशामदिया टट्टू महाराजकुमार को पगु बनाकर उनका भविष्य बिगाड देंगे। महाराजकुमार पन्द्रह से भी क्या गोद म ज्यादा इज्जत और बडप्पन घुसा हुआ है कि महाराजकुमार को जमीन पर भी नही उतारते जबकि इनकी उम्र इस समय घोडे पर चढने की है। इस समय इनका अधिक समय जनाने म घुसे रहना और वहा भी लौडियो की गोद म लज्जा की बात है। हुजूर को स्मरण रहे कि महाराणा स्वरूपसिंहजी भी पगु थे परन्तु वे गद्दी बैठने के बाद बीमारी से पगु हुए थे। ये अभी से पगु बना दिये जायेंगे और हुजूर को बुढापे में दुख पहुचेगा। राजकाज जितना ही महत्व महाराजकुमार पर ध्यान रखने का है। ये मूर्ख लोग नही जानते कि इस गोद म क्या क्या अनर्थ छिपे है किन्तु हुजूर को तो ध्यान देना चाहिये।

महाराणा ने फरमाया-कविराजजी! तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है परन्तु औरतें (अर्थात् महाराणी साहिबा) नही मानती, उनकी इच्छा से ऐसा होता है, क्या करें?

कविराजा ने कहा, औरत का दूसरा नाम बेगम भी है अर्थात् मनमानी और खास कर बडे घरो म तो बेगमे ही होती है। क्या राणी होने से ही प्रबल बढ जाती है? औरत की इच्छाओ की भी सीमा है। वे समझाई जा सकती है। फिर भी न समझें तो महाराजकुमार के बिस्तर सज्जननिवास बाग मे लगा दिये जा सकते है। जहा उन्हें कोई गोद मे न उठावे, और न अगुली पकडे।

महाराणा ने कहा कि ठीक है, अब गोद म नही लेने दिया जायगा। परन्तु लोगो ने अपनी आदत को नही छोडा, अलबत्ता कविराजाजी को आता देखकर महाराजकुमार को नीचे उतार देते थे। लोगो की चापलूसी और महाराणा सा की बेपरवाही का परिणाम वही हुआ जिसकी भविष्यवाणी कविराजाजी ने की थी।

× × × ×

महाराणा फतहसिंहजी का शिकार का शौक जगप्रसिद्ध है। शेर की खबर आने पर तो जीमण भी छूट जाता था। यह लेखक नित्य अठारह घटा की

हाजिरी देता हुआ नौ वर्ष महाराणा की सेवा में रहा है और शिकारों में तो अनिवार्य नहीं था। एक दिन खबर पहुंची - रात के बारह बजे कि शेर उदयपुर से अनतिदूर के पहाड़ में आ गया है। बस फिर क्या था? रात के तीन बजे मेरे यहाँ हरकारा पहुंचा और आज्ञा सुनाई कि चार बजे शिकारी कपड़े पहनकर हाजिर आओ। आज्ञानुसार पहुंचा। धीरे धीरे पुत्रोत्सव की सी खुशी से बड़े बड़े महकमों के अफसर भी जो उस समय कभी नहीं आते थे, जमा हो गये। शिकारी वेश में सरदार उमरावों का दरीखाना (दरबार) लग गया। आठ सौ नौकरियां (शिकार में हांका देने वाले भील) हाथों में बल्लम लिये शिकार के स्थान पर पहुंच गये और मगरा (पहाड़) घेर लिया। हाथी, घोड़े ऊंट की तय्यारियों से हलचल मच गई। सब तय्यार हैं। महाराणा भी नित्य कृत्य में निपट रहे हैं। उस समय कविराजाजी अपने समय पर नित्य के अनुसार आ पहुंचे। उनके बैठते ही महाराणा ने उत्साह भरे स्वर में बधाई के तौर से कहा-'कविराजाजी! आज शेर उदयपुर के पास ही आ गया।' कविराजाजी ने गंभीर स्वर में कहा-"वह हुजूर को खुश करने की नियत से तो आया है नहीं। जंगल का जानवर है भटकता हुआ आ निकला होगा। इसमें क्या आश्चर्य? आज इस समय न आने वालों का भी आना दिखाता है कि ये हुजूर की खुशी में खुशी मनाने को आये हैं। मगर इन खुशामदखोरों को मालूम नहीं कि मालिक को एक दुर्व्यसन से मना करने के बजाय उसमें धकेलने से वे राज्य का कितना अहित करते हैं। इधर इन्साफ के लिये मिसलों का ढेर लगा हुआ सड़ रहा है, गरीब प्रजा शीत धूप और भूख-प्यास का कष्ट उठाकर न्याय के लिये कोसों से आकर निराश लौट रही है और हुजूर को शिकार से फुरसत नहीं। मैं तो ऐसी शिकार में कोई बहादुरी भी नहीं देखता जिसमें दरख्त पर बीस हाथ ऊंचे छिपकर बैठकर सिर्फ अंगुली हिला कर शेर मार लें। इससे तो ये भील अच्छे जो जमीन पर से तीर मार कर सैंकड़ों शेर बघेर मार चुके हैं। बेचारे उस जंगली जानवर से तो ये बैठे हुक्काम ज्यादा खूंख्वार हैं जो मालिक की आंखों में धूल झोंक कर आपकी गरीब प्रजा का खून दिन दहाड़े चूस रहे हैं। राजा का धर्म पशु मारने में नहीं प्रजा के पालन में है। राज्य प्रबंध अव्यवस्थित हो रहा है उसकी शिकायतें वायसराय तक पहुंच रही हैं और पहुंचाने वाले भी ये ही बड़े हुक्म" कह कर जगत में आपको धकेलने वाले प्रपंची हैं। व्यसन उसी का नाम है जो बुद्धि पर पर्दा डाल दे। मुझे तो इस दश्य से खुशी नहीं, बल्कि दुःख हुआ। हुजूर तो जानते हैं कि जो आनन्द शिकार में आपको आता होगा। वही इन शिकारी सरदारों को आता होगा। परन्तु बात उलटी है। ये भय के मारे कह कुछ नहीं सकते। बड़े सरदार से लेकर एक नौकरियां तक के

दिल को पूछो, वे इस शिकार को आफत समझ रहे हैं। सब दुखी हैं। यह जेठ महीने की सिर फाड़ने वाली गर्मी है। हुजूर के साथ तो सुख के सब साधन हैं, परन्तु ख्याल तो फरमाया जाय-उन गरीबों की क्या हालत होगी जो भूख, प्यास, घाम सहते हुए पसीना बहाते हुए थक कर मौथ हो बिना किसी लाभ के रात को वापस अपने घर का मुँह देखेंगे। यह कष्ट भी एक दिन का नहीं, नित्य का है। इस गर्मी में कोई गरीब मर भी जाय तो उसका पुरसा हाल नहीं। व्यसन वाले को व्यसन की निन्दा बुरी लगती है अतः मेरी यह अर्ज भी बुरी हो लगेगी परन्तु सत्य को स्पष्ट अर्ज करना मेरा धर्म है।

चारों ओर सन्नाटा छा गया। पांच मिनिट बाद महाराणा ने आज्ञा दी-ठीक है, शिकार नहीं जावेंगे। हुकुम पहुँचा दो कि हाथी, घोड़ा के सामान उतार लिये जावें और नौकरिये वापस बुला लिये जावें। इस पर कविराजजी ने कहा-हुजूर जैसे गुणग्राही और सहन करने वाले मालिक हैं यह हमारा महाभाग्य है और श्यामलदास निभ रहा है। कोई असहिष्णु मालिक होता तो श्यामलदास को मेवाड़ के बाहिर ही जीवन बिताना पड़ता क्योंकि मैं अपने स्वभाव को बदलता ही कैसे ?

× × × ×

महाराणा फतहसिंहजी के जमाने में मिस्टर टामसन स्टेट इंजीनियर थे और दरबार में प्राइवेट तामीरात के मुखिया थे, भवानजी मुरड़िया। मुरड़ियाजी का विश्वस्त व्यक्ति भेरा गजधर पत्थर का सामान इकट्ठा करने पर तैनात था। एक दिन पत्थर की गाड़ियां आई उनको भेरजी ने शहर की तरफ रवाना की। वहीं स्टेट इंजीनियर का चपरासी भी था। उसने गाड़ियों को इंजीनियरी में ले जाना चाहा और कहा-प्राइवेट का काम धरा रहेगा, गाड़ियां, हमारे बड़े साहब के हुक्म मुआफिक जावेंगी। भेरजी ने गुस्से में आकर कहा देखा रे तेरा बड़ा साहब, है तो वलायत का भंगी। यहां आकर बड़ा साहब बन गया। पीछा वलायत जाने पर वे ही सड़कें और वे ही झाड़ू हैं, यहां से। अन्नदाता का काम नहीं रुक सकता। चपरासी ने पेट पकड़े साहब के पास जाकर कहा, हुजूर ! वह भेरा गजधर हुजूर को बड़ा सा[illegible] । व[illegible]
कहता है और गाड़ियां जबरन ले गया। ब[illegible]
साहब आगबबूला हो कर रेजीडेंसी पहुंचा [illegible]
एजेन्ट ने दीवान पन्नालालजी को लिखा [illegible]
काठी रेजीडेंसी पर भेज दो [illegible]
भेरजी गिरफ्तार कर लि[illegible]

का रास्ता फँटता है वहा भेरजी ने कासटेबलो को कहा कि कृपा कर बाजार को छोड़ इस रास्ते से ले चलो, पानी भी पी लूगा। उस रास्ते मे ज्योही कविराजाजी की हवेली आई, सलाम कर लेन के नाम से दरवाजे मे घुस गया। कविराजा साहिब वहा तख्ते पर बैठे हो थे, पाव जा पकडे और सब हाल सच सच कह दिया। वह उनकी आदत को जानता था कि सच कह देने पर क्षमा कर देते हैं। कविराजा ने कहा-मूर्ख ! ऐसे नही कहना चाहिये, ये लोग इस समय राज्य करने वाली जाति के हैं। भेरजी ने अर्ज की-अपराध हो चुका परन्तु बचाइये चपरासी ने श्री दरबार के नाम को तुच्छ समझा, इससे मुझे क्रोध आ गया था।

कविराजा साहब ने कासटबलो को कहा कि तुम लोग जाओ और अपने अफसर से कह दो कि भेरजी को यहा रोक लिया गया है। यद्यपि कविराजा उस समय महलो से आये ही थे तो भी तुरन्त म्याना से सवार हो वापस दरबार मे गये। भेरजी म्याना पकडे हुए साथ भागा गया। सिपाही देखते रह गये।

कविराजाजी को इतना जल्दी लौटते देख महाराणा को भी आश्चर्य हुआ, पूछा, कविराजाजी ! वापस कैसे आये ? कविराजा ने एकान्त मे अर्ज की, क्या हुजूर ने भेरा गजधर को गिरफ्तार करके रेजिडन्सी भेजने का हुक्म दिया है ? महाराणा को आश्चर्य हुआ क्योंकि वे कुछ नहीं जानते थे। उन्होने कहा, नही। कविराजाजी ने अर्ज की रेजीडेन्सी का बाला बाला हुक्म चलाना और उसे खुशामदखोर दीवान का बिना हुजूर को अर्ज किये मान लेना सरासर बेजा है। रेजिडेन्ट को यदि कुछ शिकायत है तो वह श्रीजीहुजूर को लिखें। इस तरह बाला बाला तामीलो का रिवाज आगे भयकर होगा। मेवाड पर हुकूमत आपकी है, रेजिडेन्ट की नही। यदि इस समय भेरा गुस्से मे भरे अगरेज के हाथ मे पकडा बेइज्जत होता तो वह बेइज्जती राज्य की होती उसकी नही। माना, वह उसकी मूर्खता है। वसे नही कहना चाहिये था। परन्तु जो कुछ कहा वह सत्य था और चपरासी की राजविरोधी गुस्ताखी पर क्रोध मे आकर कह दिया है। इसके लिये वह घर मे धमकाया जा सकता है, दण्ड पाने योग्य कोई अपराध नही।

उसी समय महता पन्नालालजी (दीवान) और पुलिस अफसर बुलाये गये और फटकारे गये। उन्हें लज्जित होकर क्षमा मांगनी पडी। रेजिडेन्ट के नाम पन्नालालजी से चिट्ठी का उत्तर लिखवा दिया गया कि मालूम हुआ है श्री जी

मेवाड़ के ग्राम बरवाड़ा के सौदा बारहठ शार्दूलसिंहजी की जमीन उदयपुर के एक धाभाईजी के यहा गिरवी थी। रहन की रकम हजारो रुपया की थी। उसकी अदायगी शार्दूलसिंहजी के लिये असम्भव हो रही थी। एक दिन उक्त धाभाईजी के यहा किसी विशेष समारोह म उदयपुर के अन्य प्रतिष्ठित लोगो के साथ सब चारण सरदार भी निमन्त्रित थे। बातो के सिलसिले म इस रहन का जिक्र आ गया। उपस्थित चारण सरदारो ने इस विषय म उदारता प्रदर्शित करने के लिये धाभाईजी से आग्रह किया। श्री मोडसिंहजी महियारिया ओनाडसिंहजी आसिया आदि के उत्साहप्रद शब्दो से प्रभावित हो धाभाईजी ने कह दिया कि यदि कल परसो तक शार्दूलसिंहजी सिर्फ पाच हजार रुपये ला दें तो बाकी सब रकम मैं छोडता हू। आग्रहकर्त्ताओ ने इसे गनीमत समझ धाभाईजी को धन्यवाद दिया और इस रकम को जुटाने के प्रयत्न का विचार करने के लिये धाभाईजी के यहा से विदा हो सीधे कविराजाजी की हवेली पहुचे क्योकि कविराजा साहब कारणवश धाभाईजी के यहा नही आ सके थे। आगन्तुको द्वारा सब हाल सुनकर कविराजाजी ने बडी प्रसन्नता प्रकट की और इस काम म अग्रसर हो गये। पर वे होते तो इतने से रुपये वे तुरन्त निकाल फेंकते परन्तु धन के पुजारियो से घृणा करने वाले के पास धन कहा? **न्याय और सत्य के सूखे मार्ग पर लक्ष्मी कभी कभी ही आती है।** अस्तु। कविराजा ने मुख्य मुख्य चारणो का डेप्युटेशन बना कर उमरावो म चन्दा प्रारम्भ किया। इस प्रकार ढाई हजार रुपये तो इकट्ठे हो गये और शेष ढाई हजार बाकी रहे। तब तक धाभाईजी की वह कथित अवधि समाप्त होने आ गई। अत कविराजाजी ने कुशल वक्ता आशिया आनाडसिंहजी (भैंसटिया) द्वारा अपने परम मित्र देलवाड़े राजराणा फतहसिंहजी को यह सब हाल सूचित करवाया। ओनाडसिंहजी द्वारा प्रभावपूर्ण शब्दो म सब हाल जानकर उदार शिरोमणि राजराणा ने कहा-कविराजा साहिब का फरमाना और वह भी एक चारण की गिरवी जमीन छुडाने का सिर्फ ढाई हजार रुपयो के लिये। आप लोगो ने पहिले चन्दा करने की तकलीफ क्यो की। खैर यह भी बडी कृपा हुई कि आप लोगो ने अब भी मुझे सेवा का अवसर दिया। शाम को सब चारण सरदारो को मैं अपनी हवेली पर निमन्त्रित करता हू। इस राजपूत के घर को अपना ही समझ देलवाड़े की ही हवेली सब सरदार भोजन करें। कविराजा साहब भी अवश्य कृपा करें, नाचेत् शार्दूलसिंहजी को तो अवश्य ही भेज दें।

सायकाल को राजराणा ने अपनी हवेली पर सब चारणो को गोठ जिमा कर थाल म ढाई हजार रुपये शार्दूलसिंहजी के सामने रख दिये और कहा यह

हुजूर के हुक्म की तामील करते हुए दरबार के मुलाजिम भैरा मजबूर को इंजीनियरों के मुख्य चपरासी ने सजा मञ्जा प्र पग प्रा कर रखा और इस पर बेवकूफ भैरा ने साहब इंजीनियर की शान के खिलाफ कुछ शब्द कह दिये। भैरा को इस बेवकूफी के लिए श्रीजी हुजूर ने उसे उचित दण्ड दे दिया है। यदि इसके अतिरिक्त दूसरा कोई अपराध उसने किया हो तो आप बाजाप्ता श्रीजी हुजूर की सेवा में लिखें अवश्य ध्यान दिया जायेगा। बस, मामला वहीं शान्त।

× × × ×

कविराजाजी के हृदय की विशालता का एक उदाहरण दूंगा। चारण जाति में उस समय कविराजा श्यामलदासजी के समान जोधपुर के महामहोपाध्याय कविराजा मुरारिदानजी भी असाधारण प्रतिभाशाली और आदरणीय महापुरुष विद्यमान थे और दोनों कविराजाओं में प्रेम भी असाधारण था। चारण जाति दोनों ही महापुरुषों को पाकर भाग्यशाली और गौरवान्वित थी। चारण जाति में इन दोनों में से एक था सूर्य और दूसरा था चन्द्र, अर्थात सबकी भावना में कविराजा श्यामलदासजी सूर्य थे और कविराजा मुरारिदानजी चन्द्र। वास्तव में यह तुलना यथातथ्य थी। दोनों में भेद भी इतना ही था। प्रस्तुत उदाहरण इसको स्पष्ट करेगा।

एक बार जब कि जोधपुर से कविराजा मुरारिदानजी राजकार्य के सिलसिले में उदयपुर आये हुए थे, कविराजा श्यामलदासजी की हवेली के दरवाजे में उस तख्ते पर जो आज भी वहीं पड़ा हुआ अपने युगाप के क्षणों में उस यौवन और सम्मान के क्षणों का मौन चिन्तवन करता हुआ आकाश को ताक रहा है और जीर्ण पायों की शिथिल संधियों से कभी कभी अपनी भाग्य परिवर्तन की मर्मवेदना चरड-चूं की करुणध्वनि रूप में अनात भाव से निकल पड़ती है जिसे वह स्वयं सुन कर कांप उठता है हां, उस तख्त पर, ये दोनों सूर्य चन्द्र बैठे हुए थे। अपनी जाति के बालकों को पढ़ाने की बातचीत चल रही थी। चन्द्र ने गम्भीर मुद्रा से कहा, 'कविराजा साहब! आप गलती कर रहे हो, यह जाति भलाई को मानने वाली नहीं ये लड़के पढ लिख कर किसी दिन यशकरणजी (कविराजाजी के दत्तक पुत्र) को धक्का देंगे सूर्य ने उत्तर दिया बेचारा यशकरण क्या चीज है मैं तो चाहता हूं कि ये बालक पढ़कर अपनी योग्यता के बल से खुद मुझे पीछे रख दें। मैं तो उस दिन को अपने सद्भाग्य का दिन समझूंगा। मुझे दुःख है कि आप जैसा व्यक्ति ऐसे विचार रखता है।' चन्द्र ने कंधा हिला कर दूसरी ही बात का प्रसंग छेड़ दिया। मेरे कानों में आज भी वे शब्द गूंज रहे हैं।

मेवाड के ग्राम बरवाडा के सौदा बारहठ शादूलसिंहजी की जमीन उदयपुर के एक धाभाईजी के यहा गिरवी थी। रहन की रकम हजारो रुपयो की थी। उसकी अदायगी शादूलसिंहजी के लिये असम्भव हो रही थी। एक दिन उक्त धाभाईजी के यहा किसी विशेष समारोह मे उदयपुर के अन्य प्रतिष्ठित लोगो के साथ सब चारण सरदार भी निमन्त्रित थे। बातो के सिलसिले मे इस रहन का जिक्र आ गया। उपस्थित चारण सरदारो ने इस विषय मे उदारता प्रदर्शित करने के लिये धाभाईजी से आग्रह किया। श्री मोडसिंहजी महियारिया ओनाडसिंहजी आशिया आदि के उत्साहप्रद शब्दो से प्रभावित हो धाभाईजी ने कह दिया कि यदि कल परसो तक शादूलसिंहजी सिर्फ पाच हजार रुपये ला दें तो बाकी सब रकम मैं छोडता हू। आग्रहकर्त्ताओ ने इसे गनीमत समझ धाभाईजी को धन्यवाद दिया और इस रकम को जुटाने के प्रयत्न का विचार करने के लिये धाभाईजी के यहा से विदा हो सीधे कविराजाजी की हवेली पहुचे क्योकि कविराजा साहब कारणवश धाभाईजी के यहा नही आ सके थे। आगन्तुको द्वारा सब हाल सुनकर कविराजाजी ने बडी प्रसन्नता प्रकट की और इस काम मे अग्रसर हो गये। घर मे होते तो इतने से रुपये वे तुरन्त निकाल फेंकते परन्तु धन के पुजारियो से घृणा करने वाले के पास धन कहा ? न्याय और सत्य के सूखे मार्ग पर लक्ष्मी कभी कभी ही आती है। अस्तु। कविराजा ने मुख्य मुख्य चारणो का डेप्युटेशन बना कर उमरावो से चन्दा प्रारम्भ किया। इस प्रकार ढाई हजार रुपये तो इकट्ठे हो गये और शेष ढाई हजार बाकी रहे। तब तक धाभाईजी की वह कथित अवधि समाप्त होने आ गई। अत कविराजाजी ने कुशल वक्ता आशिया ओनाडसिंहजी (मेगटिया) द्वारा अपने परम मित्र देलवाडे राजराणा फतहसिंहजी को यह सब हाल सूचित करवाया। ओनाडसिंहजी द्वारा प्रभावपूर्ण शब्दो मे सब हाल जानकर उदार शिरोमणि राजराणा ने कहा-कविराजा साहिब का फरमाना और वह भी एक चारण की गिरवी जमीन छुडाने का सिर्फ ढाई हजार रुपयो के लिये। आप लोगो ने पहिले चन्दा करने की तकलीफ क्यो की। खैर यह भी बडी कृपा हुई कि आप लोगो ने अब भी मुझे सेवा का अवसर दिया। शाम को सब चारण सरदारो को मैं अपनी हवेली पर निमन्त्रित करता हू। इस राजपूत के घर को अपना ही समझ देलवाडे की ही हवेली सब सरदार भोजन करें। कविराजा साहब भी अवश्य कृपा करें, नोचेत् शादूलसिंहजी को तो अवश्य ही भेज दें।

सायकाल को राजराणा ने अपनी हवेली पर सब चारणो को गोठ जिम्हा कर थाल मे ढाई हजार रुपये शादूलसिंहजी के सामने रख दिये और कहा यह

इस राजपूत की तुच्छ भेंट है देवीपुत्रों ने वाह-वाह, धन्य-धन्य शब्दों मे उदार क्षत्रिय का बधा लिया और अनेक कवितायें भेंट की।

× × × ×

एक बार महाराणा फतहसिंहजी के जमाने मे गोघूंदे के राजराणा मानसिंहजी को राजपूती अक्कड की तरग उठी कि मैं पगडी पर 'होकार की कलगी' लगाऊगा। यह एक ऐसा जेवर है जो उदयपुर में सिवाय महाराणा के कोई नही लगा सकता। राजराणा ने अपनी हवेली पर उदयपुर मे 'होकार की कलगी" बनवाना शुरू कर दिया। मालूम होने पर महाराणा ने बात न बढे इस अभिप्राय से कहलाया कि आप इसे नही लगा सकेंगे अत न बनावें। राजराणा से जवाब मिला कि जिसे जो जेवर पसद हो पहिन सकता है। मुझे यह जेवर पसद है। मालिक होने पर भी महाराणा को हमारी स्वतन्त्रता का ऐसी जरा जरा-सी बातो पर नही रौंदना चाहिये। पहिले उमराव-बख्शी पुरोहितजी को और फिर दीवान महता पन्नालालजी को भेजकर महाराणा ने कहलाया कि राज इस जिद को छोड दें। परन्तु राज अपनी आन पर अडे रहे और उत्तर दे दिया कि मैं तो कलगी लगाकर ही दरीखाने मे आऊगा महाराणा अपने हाथ से मेरे सिर से पगडी उतार सकते हैं। आखिर महाराणा ने कविराजाजी को बुलाकर कहा कि किसी तरह राज को समझा दो वे "होकार की कलगी" लगा कर हमारे दरीखाने मे न आवें। कविराजाजी ने अर्ज की कि गोघूंदे राज एक समझदार सरदार है वे कभी जिद नही करते। परन्तु मालुम होता है हुजूर ने धमका कर आदेश दिया होगा और उस पर राजपूत का अक्कड जाना स्वाभाविक है। ऐसी छोटी बातो पर हुजूर की जिद भी ठीक नही। खैर! मैं उन्हे समझाने जाऊगा। परन्तु इस समय व मेरी बात भी नही माने तो उस हालत मे जो कुछ फैसला कर आऊ उसे हुजूर स्वीकार करने मे तयार हो तो मैं गोघूंदे की हवेली जाऊ। क्या निर्णय होगा यह अभी अर्ज नही कर सकता। महाराणा ने स्वीकार कर लिया कि तुम जो कुछ निर्णय करोगे वह हम मजूर होगा। कविराजाजी राज साहब के पास उनकी हवेली पहुचे। राज साहब कविराजाजी से बहुत ही आदर के साथ प्रेम रखते थे। वे हवेली के बाहर तक दौड कर आ मिले और कहने लगे कि आपके आने का रहस्य मैं समझ गया खैर इसी बहाने मेरा स्थान पवित्र हुआ। शांति से बैठ कर बात होने से पहिले ही राज ने कहा कि मैं आपका भक्त और अनुग्रहीत हू परन्तु यह स्पष्ट कह देता हू कि आप कृपा कर मुझे होकार की कलगी" के लिये कुछ न कहें। कविराजाजी ने उनको अनेक प्रकार से उनके पूर्वजो की स्वामिभक्ति का वर्णन करके मालिक से ऐसी तुच्छ बात के लिये जिद न करने के लिये कहा। परन्तु यही

उत्तर मिला कि आपकी आज्ञा न मानने से मुझे बहुत ही दुःख है लज्जित-सा हूँ किन्तु इस बार तो अपनी यह जिद रखूंगा ही। महाराणा ने समझ लिया कि राजपूत मर गये और मोम के पुतले हो रह गये। उनका यह भ्रम आज मिट जावेगा। कविराजाजी ने कुछ सोचकर कहा, खैर आपकी मर्जी। मैने भी निश्चय कर लिया है कि आप इस बड़े दरीखाने के प्रसंग पर जरूर ही कलंगी लगा कर आवें। आपकी पगड़ी आप ही के सिर पर रहेगी। महाराणा उसे नहीं उतारेंगे। परन्तु इस जिद से पछताना आपको अवश्य पड़ेगा।

प्रेमपूर्वक साग्रह रहस्य पूछने पर कविराजाजी ने कहा कि इस कलंगी में इज्जत थोड़ी ही घुसी हुई है। यह इज्जत तो महाराणा की मानी हुई चीज है। महाराणा के घर में बीसों ऐसी कलंगियां हैं। यह कलंगी इज्जत के दायरे से निकाली जाकर चोबदार, छड़ीदार, घोट वालों की पोशाक का जेवर मानी जायगी और आप इन सब के सिर पर 'होकार की कलंगी' देखेंगे। तब मुझे भी इतिहास में लिखना पड़ेगा कि गोधून्द राज की मूर्खतापूर्ण जिद से यह कलंगी बड़ी इज्जतों में से निकाली जाकर राज्य के तुच्छ नौकरों के सिर पर पहुंची। यह सुनकर राज स्तब्ध रह गये। बहुत देर सोच विचार के बाद कहा कि आप अपने मित्र को इस ढंग से बेइज्जत करना चाहते हैं और क्या महाराणा इस बात को मान लेंगे? कविराजाजी ने कहा कि मित्र अपनी जिद से खुद ही बेइज्जती का रास्ता लेना पसंद करता है। महाराणा से यह सब तै कर आया हूँ। जो कह रहा हूं वही होगा, इसमें लेश मात्र संदेह नहीं। राज सा ने कहा, आपसे हार गया। यह कलंगी नहीं लगाऊंगा, आप मुझे पीढ़ियों तक बदनाम न करें। कविराजाजी ने कहा, पहिले राजपूतों के वाक्य अटल होते थे परन्तु अब बदलते देर नहीं लगती। अगर आप सच्ची प्रतिज्ञा करो तो महाराणा अपने उस निर्णय को पलट देंगे। राज ने शपथ लेकर कहा कि क्या मैं आप से झूठ बोलूं और महाराणा के सामने आपको भी झूठा बनाऊं। इतना अधम नहीं हूं आप निःशंक हो अर्ज कर दें कि मानसिंह ने कलंगी लगाने का संकल्प छोड़ दिया। यही नहीं दो दिन बाद पूरी तैयार हो जाने पर यह कलंगी मैं महाराणा साहिब की सेवा में नजर (भेंट) कर दूंगा, आप विश्वास रक्खें।

× × × ×

महाराणा सज्जनसिंहजी के देहान्त के बाद कविराजाजी को नेत्रों की पीड़ा हुई और जब देखा कि उदयपुर में इलाज होना कठिन है तो इन्दौर गये जहां महाराजा तुकोजी राव ने बड़ा आतिथ्य किया। इन्दौर के इलाज से नेत्रों की पीड़ा तो मिट गई परन्तु नेत्र ज्योति सदा के लिये मन्द हो गई। मोटे-मोटे

अक्षरों में हस्ताक्षर करते थे और कोई व्यक्ति आता तो न पहिचान सकने के कारण पूछना पड़ता "कौन है ?"

× × × ×

कविराजाजी सदा से हाथी की सवारी के शौकीन थे । घर से महल जाते या मेवाड़ का दौरा करते या कहीं भी जाते, हाथी की सवारी से । राज्य से उनकी पसन्द की तेज चलने वाली एक हथनी तैनात रहा करती थी । दूर से हथनी के घंटे की आवाज ही सूचना दे देती कि कविराजा आ रहे हैं ।

× × × ×

कविराजा साहब कहा करते कि मैं म्याने में सवार होने वाले अफीम खाने वाले और दूसरे के हाथ पर हाथ रखकर चलने वाले (मेवाड़ में प्राय बड़े आदमी अपने महत्व ज्ञापन के लिये किसी कृपापात्र के हाथ पर हाथ रखकर चलते हैं) का उपहास किया करता था । परन्तु ईश्वर ने ये तीनों ही बातें मुझ से करवा दी । नेत्र ज्योति कम होने पर हाथी छोड़ म्याने की सवारी पकड़ी पैदल चलने पर किसी के हाथ का सहारा लेना पड़ा और असह्य पीड़ा काल में अफीम से कुछ चैन मिलने से वह भी लेनी पड़ी । किसी का उपहास न करना ही अच्छा है ।

कविराजाजी आंखों के इलाज के लिये इन्दौर गये उससे पूर्व एक बार इन्दौर के बुद्धिमान और तेजस्वी महाराजा तुकोजी राव ने महाराणा से इच्छा प्रकट की कि वे चित्तौड़ का सुप्रसिद्ध किला देखना चाहते हैं । वास्तव में इस इच्छा के पारस्परिक प्रेम के सूत्रपात की पुष्टि मात्र थी । परन्तु सरकार हिन्द कब चाह सकती थी कि यों राजपूत और मरहठों का मिलन हो जाय । अतः नीतिविचक्षण तुकोजी राव ने चित्तौड़ जैसे ऐतिहासिक क्षेत्र को देखने मात्र की इच्छा की । महाराणा उदयपुर ने भी उचित समझ कर स्वीकृति दे दी और तुकोजी राव जैसे राजा के चित्तौड़ में स्वागत का भार वैसे ही प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति कविराजाजी पर रखा । कविराजाजी ने अर्ज की कि यद्यपि तुकोजी राव बुद्धिमान हैं परन्तु वे टर्रे मिजाज के भी हैं । और मेरा मिजाज टर्रेपन को सहन करने वाला नहीं है अतः सम्भव है वे किसी बात को लेकर अप्रसन्न हो जायं । इसलिये स्वागत के लिये किसी दूसरे को भेजा जाय तो अच्छा है । महाराणा ने कहा कुछ पर्वाह नहीं तुम ही को जाना होगा । कविराजाजी चित्तौड़ पहुंचे और स्वागत की सब व्यवस्था कर दी । परन्तु रेल्वे स्टेशन पर स्वयं न जा कर अन्य राज कर्मचारियों सहित अपने प्राइवेट

सैक्रेटरी दशोरा ब्राह्मण दुल्भरामजी को इस आदेश के साथ भेज दिया कि वह महाराजा इन्दौर से अर्ज करदें कि कविराजा को हिन्दूसूर्य मेदपाटेश्वर के घर में पूरी ताजीम (देखते ही खड़े हो जाना), बाँह पसाव (बगल में हाथ डाल कर मिलना) आदि की इज्जत है अतः आप भी वैसी ही इज्जत का बर्ताव करें तो कविराजाजी डेरे पर हाजिर होकर मिलेंगे। महाराजा तुक्कोजी ने रेल से उतरते ही यहा प्रधान व्यक्ति कौन है? दशोरा दुलभरामजी ने आगे बढ कर सब अर्ज कर दी। पूछा तुम कौन हो? उत्तर मिला कविराजा साहब श्यामलदासजी का प्राईवेट सैक्रेटरी। पूछा, क्या श्यामलदासजी महाराणा साहब के खास खानदान में है? उत्तर मिला नहीं, वे चारण है। तुक्काजीराव ने कहा अहो, तब यह इज्जत हम कैसे दे सकते है। तुक्काजी राव डेरा में दाखिल हुए और दुल्भरामजी ने सब हाल कविराजा साहब से जा कहा कविराजा साहब ने दुल्भरामजी को आज्ञा दी कि तुम अभी महाराजा इन्दौर के पास जाओ और जो कुछ कहलाता हूं स्पष्ट कह दो- श्यामलदास आपकी महत्ता और सुकीर्ति से खूब परिचित हूँ, परन्तु आपने जाति का प्रश्न उठाया है अतः मुझे स्पष्ट कर देना चाहिये कि चारण जाति के महत्व को विश्ववन्द्य राजपूत जाति ही जानती है गडरिया की जाति क्या जानेगी? जिनके अग्रपुरुष कमल दिवाकर के घर में सम्मान प्राप्त है वह एक गडरिये से सम्मान पाने की इच्छा ही क्या करने लगा, फिर वह कहीं का राजा ही क्यों न बन गया हो! आप चारण जाति को नहीं जानते परन्तु मैं आपकी जाति को खूब जानता हूं क्योंकि मेरी खुद की जागीर में भी बहुत से गडरिये आबाद हैं। मैंने महाराणा साहब की आज्ञानुसार आपके लिये सब प्रबन्ध कर लिया है। मेरा सैक्रेटरी चित्तौड़ के ऐतिहासिक वृत्त का जानकार है वह आपके साथ रहकर सब बता देगा।'

दशोरा दुलभरामजी भी उतना ही निधड़क बोलने वाला व्यक्ति था। इसलिये वह कविराजाजी की कृपा और विश्वास का भाजन हो रहा था। उन्होंने महाराजा तुक्कोजीराव के सम्मुख उपस्थित होकर विनम्रता से सब कह सुनाया। सुनते ही महाराजा ने कहा मालूम होता है कविराजाजी स्वाभिमानी व्यक्ति हैं। अच्छा, जाओ, कह दो हम जरूर मिलेंगे और सब इज्जत देंगे।

तुक्काजीराव ने उसी दिन कविराजाजी को बुलाया और दरीखाना कर के मिले। हां, ताजीम के लिये बुढ़ापे के बहाने धीरे धीरे उठने लगे तब कविराजाजी ने अपने हाथ का सहारा देकर खड़े कर लिये और बांह पसाव किया।

फिर तो दोनों की दो घंटा तक बातचीत होती रही और गुणग्राही महाराजा इतने प्रभावित और मुग्ध हुए की कविराजाजी का हाथ पकड़े हुए बग्गीतक पहुँचाने आये। दोनों ओर खूब आनन्द और प्रेम रहा। महाराजा तुकाजी ने महाराणा को पत्र लिखा उसमें कविराजाजी की भूरि भूरि प्रशंसा की और चित्तोड़ से रवाना होते समय कविराजाजी को इन्दौर आने का आग्रह पूर्वक निमन्त्रण दिया। जब सं १९३९ में अनायास कविराजाजी की आँखें कमजोर होकर दुखने लगी, असह्य वेदना बढ़ी और उदयपुर में आंखों का ठीक इलाज होने की आशा न रही तब कविराजाजी इलाज के लिये इन्दौर गये जहां महाराजा तुकोजी ने बहुत आदर सम्मान से रखा और नेत्रों का इलाज करवाया जिसका उल्लेख पहिले हो चुका है।

× × × ×

कविराजाजी को समय समय पर जो राजसम्मान प्राप्त हुए वे संक्षेप में इस प्रकार हैं –

संवत १९२८ में महाराणा शम्भूसिंहजी ने उदयपुर में हवेली बख्शी और पहले इनकी बैठक दरीखाने में चारणों की पंक्ति में छठे नम्बर पर थी उसके बजाय तीसरे नम्बर की बैठक दी।

सं १९३२ आषाढ कृष्ण ८ के दिन महाराणा सज्जनसिंह जी इनकी हवेली पधारे और इन्हें ताजीम चांदी की छड़ी बख्शी।

सं १९३३ में इनको बांह पसाव (हाथ बढ़ा कर अर्थात बगलगीर होकर मिलने) की इज्जत बख्शी और "चारण शरण" की बड़ी छाप (मुद्रा) प्रदान की।

सं १९३३ में महाराणा सज्जनसिंहजी इनकी हवेली पर महमान हुए।

सं १९३४ में इनको पैरों में सोने के लंगर दिये गये।

सं १९३५ के चैत्र में महाराणा सज्जनसिंहजी इनकी हवेली पर फिर महमान हुए।

सं १९३५ के चैत्र शुक्ला २ के दिन उक्त महाराणा कविराजाजी के ग्राम ढोकलिया पधारे और इनको कविराज पदवी, जुहार का , पगड़ी में माझा और पैरों में सोने के तोड़े (पग साकला) बख्शे

सं 1937 के चैत्र में महाराणा सज्जनसिंहजी इनकी हवेली पर फिर महमान हुए।

सं 1937 के वैशाख में मेवाड के मगरा जिले के भीलो ने बलवा किया उसको कविराजाजी ने बड़ी होशियारी बुद्धिमता और बहादुरी से पूर्ण शांत कर दिया। इस उपलक्ष्य में महाराणा सज्जनसिंहजी ने इनके पैरो में सोने के दोहरा लंगर प्रदान किये।

सं 1938 चैत्र सुदी 2 को महाराणा इनकी हवेली पर महमान हुए।

सं 1939 के ज्येष्ठ में महाराणा सज्जनसिंहजी ने उदयपुर के हाथीपोल दरवाजे के बाहिर बाग के लिये जमीन बख्शी।

इसी संवत् के भाद्रपद में उपरोक्त बाग में महाराणा की पधरावणी हुई।

इसी संवत् के आश्विन शुक्ल 1 को उपरोक्त बाग में श्री करनीमाता की स्थापना की गई।

इसी आश्विन शुक्ल 5 के दिन उपरोक्त बाग में फिर पधरावणी हुई। तब महाराणा ने कविराजाजी के नाम पर इस बाग का नाम श्यामलबाग ❀ रखा।

इसी संवत् के माघ मास में महाराणा के महाराजकुमार उत्पन्न हुए उस खुशी में महाराणा ने कविराजाजी के छोटे भाई स्व गोपालसिंहजी के पुत्र को कविराजाजी के गोद रखकर उस बालक का "यशकरण" नाम बख्शा और यशकरणजी के पैरो में सोने के लंगर पहिनाये।

संवत् 1940 में करनी माता का मंदिर बनवाया जिसके लिये ओरण (अरण्य) की जमीन और कविराजाजी को हवाला की जमीन महाराणा ने बख्शी।

सं 1941 चैत्र शुक्ला 14 के दिन महाराणा सज्जनसिंहजी, जोधपुर नरेश महाराजा यशवन्तसिंहजी और कृष्णगढ के महाराजा शार्दूलसिंहजी तीनों ही रईस कविराजाजी के बाग (श्यामलबाग) में महमान पधारे और कविराजाजी ने बहुत बडी दावत दी।

❀ वास्तव में थोड़े ही काल में श्यामलबाग उदयपुर में अति मनोरम दर्शनीय स्थान बन गया था और आगे जाकर इससे 1200/-रु की सालाना आमदनी हो जाती थी।

सं 1941 श्रावण शु 5 के दिन महाराणा सज्जनसिंहजी श्यामलबाग में फिर महमान हुए।

इसी संवत् के आश्विन कृ 12 के दिन उक्त महाराणा फिर कविराजाजी के बाग मे महमान हुए।

महाराणा सज्जनसिंहजी ने कविराजाजी को प्रधानमन्त्री का पद प्रदान किया और मेवाड की सर्वोपरि कौंसिल महद्राजसभा-का मुख्य मेम्बर बनाया इसका उल्लेख यथा-स्थान हम कर चुके है।

कविराजाजी की चतुर्मुखी प्रतिभा पर मुग्ध होकर और मेवाड तथा गवर्मेंट हिन्द की मैत्री को दृढ करते हुए राज्य को उन्नत गति में ले जाने के कौशल पर प्रसन्न होकर गवर्मेंट हिन्द ने भी इनको

सं 1935 मे कैसर हिन्द का स्टार और

सं 1944 माघ कृष्णा 2 को 'महामहोपाध्याय' का खिताब दिया।

कविराजा अपनी उत्तम विद्वता के कारण निम्नलिखित संस्थाओं के फेलो (मेंबर) थे –

(1) रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयर्लैंड।
(2) रायल हिस्टोरिकल एशियाटिक सोसाइटी-बंगाल।
(3) रायल एशियाटिक सोसाइटी बंबई।
(4) एन्थ्रोपोलोजिकल सोसाइटी, बम्बई।
(5) एशियाटिक सोसाइटी आफ इटली।

× × × ×

राज्य कार्य से अवकाश ग्रहण कर लेने पर कविराजाजी की दिनचर्या प्रायः यह थी—

पिछली रात को चार बजे शय्या से उठ जाना नित्यकर्म से निवृत हो पहिले हाथी और बाद में म्याना में सवार होकर कुछ कुछ अंधेरा रहते महलों में जाना। कविराजाजी की लकड़ी का खटका सुनते ही महाराणा फतहसिंहजी समझ जाते कि कविराजा आ रहे हैं। उस समय महाराणा दतुअन करते हुए मिलते। उनको दूर से देखते ही स्वयं महाराणा कहते "आओ कविराजजी ताकि

कविराजाजी को मालूम हो जाय कि दरबार कहा बिराजते हैं। कविराजा सलाम करके दरबार के पास हो बैठ जाते। कभी नसीहत की बातें होती और कभी एकान्त सलाह होती रहती। करीब एक घटा ठहरते और फिर रुखसत हो हवेली पर चले आते वहा खपरल के दरवाजे मे लकडी के तख्ते पर, जो अब तक मौजूद है-बैठ जाते। मिलने जुलने वाले या सलाम करने वाले आते जाते रहते। आठ या साढे आठ बजे नियमपूर्वक अपनी ज्येष्ठ सहोदरा के पास भीतर जा बैठने और बातें करते हुए वही भोजन करते। भोजनोत्तर म्याना मे सवार हो अपने 'श्यामलनिवास बाग'' मे चले जाते। बगीचे का बहुत शौक होने से बाग का चक्कर लगाते और बागवान को उपवन-विज्ञान समझाते हुए हिदायतें देते। इसी बाग मे इतिहास कार्यालय था, अत मध्याह्न मे प्राय पौन घटा सोकर उठने पर पडितो से अंग्रेजी फारसी, अरबी, सस्कृत आदि के इतिहास ग्रथ सुनते रहते। सूर्यास्त होते होते शहर मे हवेली आते। कुछ देर बाहिर बैठकर भीतर अपने शयनागार मे जो तीसरी मजिल पर था-चले जाते। परन्तु भाई बहिन मे अनन्य प्रेम होने के कारण जनाने मे घुसते ही यह पूछना कभी नही भूलते कि बाईजी। आपकी तबीयत कैसे है? और यह उत्तर मिलने तक ठहरे रहते कि 'भाई सावलजी! जगदम्बा की दया से सब ठीक है। फिर भोजन करके सो जाते।

× × × ×

स 1949 आषाढ शुक्ला 11 के दिन कविराजाजी को फालिज की बीमारी शुरु हुई थी परन्तु डाक्टरो के इलाज से उस समय यह बीमारी मिट गई थी। फिर इसी सवत् की माघ शुक्ला प्रतिपदा को उसी पक्षाघात रोग ने दूसरा आक्रमण किया जिससे दाहिना हाथ और पैर शून्य हो गये और स्मृति भी जाती रही। जब तक शरीर मे शक्ति रही तब तक तो अट सट कुछ बोलते रहे, परन्तु चार चार छ ■ मास का अन्तर देकर इस बीमारी के दौरे बराबर होते रहे जिससे ताकत कम पडती गई। और दिमाग गीला (नरम) होता गया। फलत आदमी की पहिचान और बोलने की शक्ति बद हो गई। ※ आखिर दस्त और कै के साथ प्रबल ज्वर होकर सवत् 1951 ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या, रविवार मुताबिक सन् 1894 ता 3 जून के सूर्योदय समय चारण जाति के परम हितैषी, मेवाड ही नही राजस्थान की एक विभूति कविराजा श्यामलदासजी इस ससार को छोडकर 56 वर्ष 11 मास 13 दिन की आयु पा परलोकवासी हो गये।

※ कविराजाजी की इस रुग्णावस्था मे ही उनके दत्तक पुत्र यशकरणजी का विवाह मारवाड के सोढावास ग्राम के ठाकुर करनीदानजी महडू की पुत्री के साथ सवत 1951 वैशाख शुक्ला 2 को कर दिया गया था।

सत्य की जांच के लिए सुख पूछने के नाम से स्वयं दो बार कविराजाजी को देखने के लिए वे आये। विपक्ष के किसी व्यक्ति के आने पर हम लोग सम्हल जाते, बात यह थी कि कविराजाजी का दिमाग तो अवश्य ही विचलित हो चुका था परन्तु दो विषय उनके मस्तिष्क के मज्जातंतुओं में ऐसे अद्भुत रूप से समा चुके थे कि उनमें से किसी एक को छेड़ देने पर एक एक घंटे तक उनकी धाराप्रवाह नहीं रुकती और चुने हुए शब्दों की शृंखला किसी को भी यह भान नहीं होने देती कि दिमाग विचलित है। वे विषय थे इतिहास और स्वामिभक्ति। जब कभी कोई सन्दिग्ध व्यक्ति आता हम दो चार मिनिट पहिले किसी ऐतिहासिक विषय पर प्रश्न छेड़ देते कि यह बात किन किन प्रमाणों से "वीर विनोद" में सिद्ध की गई है। बस, फिर क्या था वही प्रमाण-जाल परिपूर्ण अस्खलित महज स्रोत। आने वाला चकित हो दूसरा ही अनुभव लेकर घर लौटता।

× × × ×

कविराजाजी की रुग्णावस्था में आराम पूछने के लिये महाराणा फतहसिंहजी कई बार हवेली पधारे। जब प्रथम बार पधारे, पलंग के पास ही कुर्सी पर विराज गये। उस समय मैंने ही कविराजा साहब को कहा-बाजी साहब! अपने मालिक श्रीजी हुजूर खुद आपका आराम पूछने पधारे हैं। कविराजाजी ने पलंग पर बैठे हुए दोनों हाथों से मुजरा किया और कहा 'मैंने शम्भूसिंहजी की सेवा की सज्जनसिंहजी की सेवा की परन्तु आपकी वैसी न कर सका इसका खेद है। यदि मैं भी धन कमाने में लगता तो आज मेरे घर में दस बीस लाख रुपयों से कम की सम्पत्ति नहीं होती। परन्तु हुजूर खुद देख लें मेरे घर में बारह हाथ का बांस फिरता है (अर्थात सब घर खाली है)। मैंने तो सिर्फ इसी को धन समझा कि मेरा मालिक मुझे ठोस स्वामिभक्त और सच्चा सेवक समझे। बस यही मेरी कमाई है और इसी से सुखी हूं। बाल बच्चों का पेट तो मालिक खुद ही भरते रहेंगे, इसकी चिन्ता न मैंने पहिले की और न आज है। महाराणा की आंखों में पानी भर आया कुछ फरमाना चाहते थे किन्तु गला भर जाने से न फरमा सके। महलों में पधारने पर मुझे फरमाया कि तुम तो कहते थे दिमाग ठीक नहीं किन्तु हमने तो वैसा नहीं देखा। तब मैंने असली रहस्य कह दिया। वह सुनकर फरमाने लगे ऐसे पुरुष होना दुर्लभ है, अब जब कभी हम आवें, उन्हें कुछ मत छेड़ो।

इसी प्रकार मेवाड़ के पोलिटिकल रेजिडेंट कर्नल माइल्स भी कई बार आराम पूछने आये।

× × × ×

जब से कविराजा साहब बीमार हुए, खेमपुर ठा चमनसिंहजी उनकी सेवासुश्रुषा मे दिलोजान से लग रहे।

× × × ×

कविराजाजी के स्वास्थ्यकाल म ही महाराणा फतहसिंहजी और उनक प्रधान महता पन्नालालजी म द्वेष चल चुका था। कविराजाजी के रोगकाल म यह द्वेष चरम सीमा तक पहुच कर दोना ओर से राजनैतिक घात प्रतिघात चल रहे थे। महाराणा की स्वामिभक्त पार्टी के महान स्तभ कविराजा रोग शय्या पर विकृत दशा मे थ अत इस पार्टी का कुल भार मेरे पितृश्री बारहठ कृष्णसिंह जी पर आ चुका था। जब स महाराणा सज्जनसिंहजी ने कवि राजाजी को प्रधान मन्त्रित्व के भार स हलका कर इतिहास निर्माण पर प्रवृत किया और उनके स्थान पर मेरे पितृश्री को मुसाहिब बनाया तब से ही पन्नालाल जी मेरे पितृश्री को भी अपनी मनोकामना सिद्धि के घोर बाधक समझते थे। महाराणा की स्वामिभक्त पार्टी म मुख्यतया सिर्फ तीन व्यक्ति रह गये थे जिनसे महाराणा विश्वास के साथ गुप्त मन्त्रणा कर सकत थे। प्रथम मेरे पितृश्री, द्वितीय कोठारी बलव तसिहजी, जिनका उनकी नाबालगी से लेकर जवानी तक राजनतिक शिक्षा देकर प्रधानमत्री का भार उठा लेने योग्य बनाया और उनक घर को भी सम्हाला। इस प्रेम सम्ब ध के नाते कोठारीजी भी हमारे परिवार- सदस्य से थे और कविराजाजी को पिता ही मानत थे। महाराणा फतहसिंहजी पन्नालालजी को हटाकर इन कोठारीजी को ही प्रधान मत्री बनाना चाहत थे और हमारा सकल्प भी यही था। तीसरे व्यक्ति जो महाराणा के विश्वासपात्र थे, वे थे उनक सहोदर ज्येष्ठ भ्राता शिवरती ठिकान के महाराज गजसिंहजी। इनके अलावा प्राय सभी अपने लोगो से महाराणा का विश्वास उठ चुका था क्योंकि वे जानते थे कि प नालालजी की कूटनीति के कारण घर के लोग और पोलिटिकल एजेंट कनल माइल्स सहित जितने भी अंग्रेज उदयपुर म थे, व आबू के ए जी जी और वायसराय का पोलिटिकल डिपार्टमेंट सब मिलकर उनके विपक्ष को प्रबलतम बना चुके हैं। ऐसी परिस्थिति म स 1948 के प्रारभ मे म भी महाराणा की सेवा मे दाखिल हुआ और इसी चक्र मे फँस गया। अत पितृश्री के साथ साथ मुझे भी इतना अवकाश कहा था कि कविराजाजी की रोगशय्या के पलग का पाचवा पाया बनकर बैठ सकता। पन्नालालजी के दिल पर कविराजाजी का बहुत बडा आतक था। जब वे सुनत कि कविराजाजी न दिमाग खो दिया तो शाति का श्वास लेते परन्तु जब हमारे पक्ष की दूसरी खबर सुनते कि दिमाग ठीक है, तो सहम जात।

सत्य की जाच के लिय सुख पूछने के नाम से स्वय दो बार कविराजाजी को देखने के लिए वे आये। विपक्ष पे किसी व्यक्ति के आने पर हम लोग सम्हल जाते, बात यह थी कि कविराजाजी का दिमाग तो अवश्य ही विचलित हो चुका था परन्तु दो विषय उनके मस्तिष्क के मज्जातंतुओं में ऐसे अद्भुत रूप से समा चुके थे कि उनमें से किसी एक को छेड़ देने पर एक एक घंटे तक उनकी धाराधारा नहीं रुकती और चुने हुए शब्दों की शृंखला किसी को भी यह भान नहीं होने देती कि दिमाग विचलित है। वे विषय थे इतिहास और स्वामिभक्ति। जब कभी कोई संदिग्ध व्यक्ति आता हम दो चार मिनिट पहिले किसी ऐतिहासिक विषय पर प्रश्न छेड़ देते कि यह बात किन किन प्रमाणों से "वीर विनोद" में सिद्ध की गई है। बस, फिर क्या था वही प्रमाण-जाल परिपूर्ण अस्खलित मंडल स्रोत। आने वाला चकित हो दूसरा ही अनुभव लेकर घर लौटता।

× × × ×

कविराजाजी की रुग्णावस्था में आराम पूछने के लिये महाराणा फतहसिंहजी कई बार हवेली पधारे। जब प्रथम बार पधारे, पलंग के पास ही कुर्सी पर बिराज गये। उस समय मैंने ही कविराजा साहब को कहा-बाजी साहब! अपने मालिक श्रीजी हुजूर खुद आपका आराम पूछने पधारे हैं। कविराजाजी ने पलंग पर बैठे हुए दोनों हाथों से मुजरा किया और कहा 'मैंने शम्भूसिंहजी की सेवा की सज्जनसिंहजी की सेवा की परन्तु आपकी वैसी न कर सका इसका खेद है। यदि मैं भी धन कमाने में लगता तो आज मेरे घर में दस बीस लाख रुपया से कम की सम्पत्ति नहीं होती। पर तु हुजूर खुद देख लें मेरे घर में बारह हाथ का बांस फिरता है (अर्थात सब घर खाली है)। मैंने तो सिर्फ इसी को धन समझा कि मेरा मालिक मुझे ठोस स्वामिभक्त और सच्चा सेवक समझे। बस, यही मेरी कमाई है और इसी से सुखी हू। बाल बच्चों का पेट तो मालिक खुद ही भरते रहेंगे, इसकी चिन्ता न मैंने पहिले की और न आज है। महाराणा की आंखों में पानी भर आया कुछ फरमाना चाहते थे किन्तु गला भर जाने से न फरमा सके। महलों में पधारने पर मुझे फरमाया कि तुम तो कहते थे दिमाग ठीक नहीं किन्तु हमने तो वैसा नहीं देखा। तब मैंने असली रहस्य कह दिया। यह सुनकर फरमाने लगे ऐसे पुरुष होना दुर्लभ है, अब जब कभी हम आवें, उन्हें कुछ मत छेड़ो।

इसी प्रकार मेवाड के पोलिटिकल रेजिडेन्ट कर्नल माइल्स भी कई बार आराम पूछने आये।

× × × ×

कविराजाजी की वाक्शक्ति समया जाने वाली थी उससे कुछ दिन पहिले मैं अपने पितु श्री की आज्ञा से महाराणा का दबती हुई पार्टी को फिर से बलवान बनाने के लिये भारत के सुप्रसिद्ध व्यक्ति श्यामजी कृष्ण वर्मा बैरिस्टर-एट-लॉ को महाराणा का मुसाहिब करके उदयपुर से आया। श्यामजी उदयपुर पहुँचते ही कविराजाजी के पास पहुँचे। उस समय मैंने कहा श्यामजी आये हैं। श्यामजी न भी कहा महाराणा ने मुझे बुलाकर रख लिया है। परन्तु शत्रु प्रबल हैं, आप आशीर्वाद दीजिये। यह सुनते ही कविराजा ने अट्टहास किया और कहा "श्यामजी! तुम आ गये, अच्छा किया। ये शत्रु तो पहिले भी मच्छर ही थे और अब भी मच्छर ही हैं। मैं चाहता तो कभी मसल देता। परन्तु मच्छर को मसल देने म कौनसी बहादुरी? पाप ही लगता। ये बेचारे आप मर जावेंगे। तुम तो इनस प्रबल हो। स्वामिद्रोही थोड़े ही दिन पनपता है तुम खैरख्वाह रहना। कविराजाजी की यही स्मृति-तरंग और वाणी अंतिम थी।

× × × ×

कविराजा साहब ने अपनी तंदुरुस्ती की हालत मे मेरे पितु श्री, ठा चमन-सिंहजी और कोठारी बलवंतसिंहजी आदि आत्मीयो को कह दिया था कि मुझे जब कोई खतरनाक बीमारी हो तो मुझे संन्यास लिवा देना और मेरे बाग म बीच के चक्कर की जगह मेरा भूमिदाह करना। अत उनकी इच्छानुसार देहान्त के दो दिन पूव उनको आतुर संन्यास दे दिया गया। जिस दिन संन्यास दिया उस दिन महाराणा सा फतहसिंहजी ने मुझे फरमाया कि इच्छा तो है कि इस समय कविराजाजी के दशन हम भी करें परन्तु हम से यह दृश्य देखा नही जावेगा अत तुम ही हमारी तरफ से प्रणाम कर लेना।

× × × ×

जब से संन्यास हुआ तब से कठोर हृदय करके मैं ही सेवा में रहा क्योंकि मेरे पितु श्री और ठा चमनसिंहजी दीवार पर कान लगाये दरवाजे के तख्ते पर बैठे रहते। उसके पास की कोठरी म सच्चिदानन्द शवासन से लेटे हुए थे। कविराजा साहब सदा छोटी रुद्राक्ष की माला पर "सो ह का जाप जपा करते। उसी मानसिक अजपा जाप के साथ अगुलिया माला के मणियो को घुमा रही थीं। ज्योंही यह माला छूट पडी, समझ लिया हंसा उड गया। ईश्वर की विभूति ईश्वर ने उठा ली। चारण जाति का भानु अस्ताचल की ओट में चला गया।

× × × ×

कविराजा श्यामलदास की जी

देहान्त के बाद 'डोल' में बिठा कर गाजे बाजे के साथ पुष्प, गुलाल उछालते हुए सरे बाजार सवारी निकली। करीब दस हजार आदमी 'डोल' के साथ थे। शहर में दुकानों, मकानों और मकानों की छतों पर खड़े हुए नर नारी निश्वास छोड़कर अश्रु-अंजलि चढ़ा रहे थे। सवारी श्यामलबाग में पहुँची और उसी आदेश स्थान पर भूमिदाह हुआ। मिट्टी की मुट्ठियां डालते समय एक साथ हाहाकार से आकाश भी कांप उठा।

बाद में वहीं पं श्यामजीकृष्ण वर्मा ने एक मर्मस्पर्शी स्पीच दी जिससे हजारों नेत्रों में अश्रुसागर का ज्वार उमड़ पड़ा। उस समय समस्त शत्रु भी मित्र रूप में आ चुके थे। प्रत्येक के मुख से यही बँधे हुए शब्द निकले थे कि कविराजा बड़े सत्यवक्ता न्यायकारी, क्षमशील, निर्लोभी, देशहितैषी, पूरे ईमानदार और सच्चे स्वामिभक्त थे। मेवाड़ में यही एक पुरुष थे जो इतना राज्याधिकार पाकर न कभी अभिमान से फूले, न किसी का बुरा किया और न कभी किसी से रिश्वत ली न धन जोड़ा। इतने ऊंचे पद पर पहुँच कर भी आप निर्धन रहे—यहां तक कि अपने घर को कर्जदार ही छोड़ा।

× × × ×

कविराजा श्यामलदासजी ने जिस आत्मीयता के साथ कोठारी बलवन्त-सिंहजी की निरन्तर उन्नति की उसका आभार प्रदर्शन कोठारीजी ने भी कविराजाजी के देहावसान पर स्वयं मुण्डन होकर विशेष रूप से किया। मेवाड़ राज्य के प्रधानमन्त्री का इतरजातीय व्यक्ति के देहान्त पर मुण्डन होना एक अभूतपूर्व घटना थी। कोठारीजी की जाति वालों ने इस पर ऐतराज भी किया परन्तु कोठारीजी ने स्पष्ट उत्तर दे कर अपनी अनुपम कुलीनता का परिचय दिया कि कविराजा साहब ने मुझ पर पिता से भी अधिक वात्सल्य रख कर मुझे इस पद तक पहुँचाया। अतः मैं यदि मुण्डन होने में भी संकोच करता तो मुझसा कृतघ्न और कौन गिना जाता?

× × × ×

कविराजाजी के देहान्त के पन्द्रह दिन बाद आषाढ़ कृ० 1 सं० 1951 को महाराणा फतहसिंहजी कविराजाजी की हवेली पर मातमपुर्सी के लिये पधारे और जो जो कारखाने* कविराजाजी के नाम पर थे वे उनके दत्तक पुत्र यशकरणजी के नाम पर बहाल रखे। इज्जत तो चारणों की मिली हुई मौरूसी होती ही है।

---

* विभाग (डिपार्टमेंटस)